तीर्थंकरों का इतिहास

लेखक
डॉ० कुंवरलालजैन व्यासशिष्य

इतिहासविद्याप्रकाशन
दिल्ली-४१

प्रथम संस्करण

मूल्य—100 रुपयामात्र

प्रकाशनवर्ष—1992

प्रकाशक—इतिहासविद्याप्रकाशन
बी-26—धर्मकोलोनी,
नांगलोई, दिल्ली-41

मुद्रक : नवीन प्रिंटर्स, दिल्ली-41

क्रांतिकारी मौलिक इतिहासकार व साहित्यकार
डा० कुँवर लाल जैन व्यास शिष्य (डी० लिट०)
को प्राप्त पुरस्कार

	पुरस्कृत कृति	पुरस्कार प्रदाता संस्था	वर्ष	राशि
१.	भारतीय इतिहास पुनलेखन क्यों ?	श्री हनुमान मंदिर कलकत्ता	१९८६	५,०००रू.
२.	पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम	उ० प्र० हिन्दी संस्थान	१९८९	३,०००रू.
३.	आर्ष यज्ञ विद्या	उ० प्र० संस्कृत अकादमी	१९८७	२,०००रू.
४.	पुराणों में इतिहास	दिल्ली हिन्दी अकादमी	१९९०	११,०००रू.
५.	आर्ष यज्ञ विद्या	राजभाषा विभाग बिहार सरकार	१९९०	११,०००रू.
६.	वैदिकी यज्ञ विद्या	राजस्थान संस्कृत अकादमी		६,०००रू.





बिहार सरकार : राजभाषा विभाग

अखिल भारतीय ग्रन्थ पुरस्कार योजना 1988-89 के अन्तर्गत
.................भारतीय संस्कृति..................... विषय पर
...............डॉ० कुँवर लाल व्यासशिष्य.................. के ग्रन्थ
...............आर्य यक्ष विद्या.......................... को दस हजार
रुपये की राशि से पुरस्कृत किया जाता है ।

(signatures)

निदेशक सचिव मंत्री मुख्यमंत्री

(4)

राजस्थान-संस्कृत-अकादमी, जयपुरम्

आचार्य-नवलकिशोरकाङ्कर-वेदवेदाङ्ग-पुरस्कारः

(अखिलभारतवर्षस्तरीयः)

अस्मिन् 1991 ईसवीय-संवत्सरे आचार्यप्रवर- [डा.] कुँवरलालजैन 'व्यासशिष्यै' प्रणीतः "वैदिकीय-यज्ञविद्या" नामको वेदग्रन्थो विशेषज्ञैर्वेदवेदाङ्गविषयकः सर्वोत्कृष्टः प्रमाणितः ।

अतो राजस्थान - संस्कृत - अकादमी षट्सहस्ररूप्यकात्मकेन "आचार्य-नवलकिशोरकाङ्कर - वेदवेदाङ्ग - पुरस्कार - समर्पणेन नवदिल्ली - वास्तव्यान् विश्रुतनामधेयान् [डा.] कुँवरलालजैन 'व्यासशिष्यान्' सबहुमानं सभाजयति ।

चैत्र कृष्णा एकादशी, रविवासरः 2048
दि. 29 मार्च, 1992

डा० प्रभाकरः शास्त्री
निदेशक

राधाकृष्ण दीक्षितः
अध्यक्ष

विषयानुक्रमणी

प्राक्कथन

इस लघुपुस्तक 'तीर्थकरों का इतिहास में, मैंने जैनों में व्याप्त अनेक भ्रान्तियों के निराकरण की चेष्टा की है। जैन इतिहास पर बहुत अधिक कार्य नहीं हुआ है और हिन्दी में यह अपने विषय का संभवत:प्रथम ग्रन्थ है और भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार सर्वथा मौलिक प्रमाणों को उपस्थित किया गया है।

जैन इतिहाससम्बन्धी अनेक भ्रान्तियाँ एक सहस्रवर्ष से अधिक पुरानी हैं और कालगणना के सम्बन्ध में—विशेषत महावीरनिर्वाणकालसम्बन्धी भ्रान्ति देवर्द्धि क्षमाश्रमण (पाँचवी शती) के समय ही होगई, जब जैनाचार्यों ने अपने आगमों का माथुरी और वलभी वाचनाओं के नाम से पुनःसंग्रह किया। यथार्थनिर्वाणकाल का विवेचन मैंने चतुर्थ अध्याय (पृ० १०३ से १४६ तक) में विस्तार से किया है। प्राङ्मौर्यतिथियाँ एवं हर्षपूर्व की तिथियाँ चन्द्रगुप्तमौर्य एवं गुप्तकाल के निर्णय पर आधारित हैं।

साम्राज्यवादी पाश्चात्य (अंग्रेज) लेखकों का उद्देश्य भारत का सच्चा इतिहास लिखना था ही नहीं और नही वह उद्देश्य उनका हो सकता था। क्योंकि चिरन्तन कूटनीति के अनुसार उनका मुख्य उद्देश्य भारतीय गौरव एवं एकता को नष्ट करना था और मैकाले की षड्यन्त्रपूर्ण शिक्षापद्धति के माध्यम से यही कार्य मैक्सम्लर, मैक्डोनल, कीथ, विन्टरनीत्स के द्वारा किया गया। मिथ्या इतिहास की आधारशिला विलियम जोन्स ने रखी, जबकि उसने सिकन्दर को चन्द्रगुप्त के समकालीन मान लिया। इसी आधार पर महावीरकाल और बुद्धकाल आदि निश्चित किये गये। यह बहुत लम्बी कथा है, इसका विवेचन मैंने चतुर्थ अध्याय में सम्यग्रूप से किया है। तदनुसार चन्द्रगुप्तमौर्य का समय १२०० वर्ष बाद में सिद्ध किया गया और फ्लीट ने

अलबेरूनी के एक कथन का उल्टा अर्थ निकालकर गुप्तकाल का आरम्भ २४० वर्ष पश्चात् (३७५ ई० वि० सं० में) माना, जबकि १३५ वि० सं० में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य द्वितीय (साहसांक) ने शकों का अन्त करके शकान्त (शक) संवत् चलाया। यह विषय भी मैंने चतुर्थ अध्याय में स्पर्श किया है। अतः महाभारतयुद्ध की तिथि (जो परम्परा में मान्य है) ३०८० वि० पू०, चन्द्रगुप्तमौर्य की तिथि १४०० वि० पू० और चन्द्रगुप्त साहसांक (विक्रमादित्य) की तिथि १३५ विक्रमसम्वत् में थी। पाश्चात्यों और उनके अनुगामी भारतीय लेखकों ने इस विषय में अनेक मिथ्या कल्पनायें की हैं। इतिहास (इति+ह+आस=ऐसा निश्चयपूर्वक घटित हुआ) में मिथ्याकल्पनाओं का कोई मूल्य नहीं है। सच्चे इतिहास की सिद्धि ही मेरी इस तथा अन्य पुस्तकों का उद्देश्य है।

पाश्चात्य द्वारा प्रवर्तित मिथ्या इतिहास के परिणामस्वरूप आज भारत में फूट का जो भयंकररूप प्रकट हो रहा है, वह किसी से छिपा हुआ नहीं है। सभी सम्प्रदाय हिन्दू, बौद्ध, जैन, सिख और सभी जातियाँ इससे प्रभावित है। पाश्चात्यों ने यहाँ की असभ्य जातियों (जंगली जातियों) को **'आदिवासी'** संज्ञा प्रदान की, जबकि उनका प्राचीन नाम **'वनवासी'** था, यह नाम इतिहासपुराणों में यत्र क्वचित् आया भी है। सम्प्रदाय, जाति और वनवासियों के आधार पर भारत में अनेक राष्ट्रों की दुष्कल्पना करके देश को विखण्डित करने की चेष्टा की जा रही है। पृथक्तावादी आन्दोलन इसके प्रमाण हैं और ये मिथ्या इतिहास के फल हैं।

अंग्रेजों ने भारत में अपनी सत्ता वैध सिद्ध करने के लिये 'आर्य'-'अनार्य' 'आदिवासी' आदि जातियों की कल्पना की और इन सबको भारत से बाहर का आया हुआ बताया गया। अन्य भारतीयों के समान जैनमनीषी भी इससे पूर्णतःप्रभावित हुये। उदाहरणार्थ, इसी भ्रान्त धारणा की अभिव्यक्ति श्रीबलभद्रजैन ने "जैनधर्म का प्राचीन इतिहास" पृष्ठ, ३२६ पर की है, जिसका सप्रमाण खण्डन, मैंने पृष्ठ १०४—१०६ पर, संक्षेप में किया है।

'आर्य' किसी जाति का नाम नहीं था और 'अनार्य' भी कोई जाति नहीं थी। 'श्रेष्ठपुरुष' को ही 'आर्य' कहा जाता था, इसके विपरीत ही 'अनार्य' था। यदि 'आर्य' शब्द जाति या विद्विषों (वैरियों) का नाम होता तो जैन शास्त्रों में 'अर्हन्तों' के साथ 'आर्यों' को नमस्कार नहीं किया जाता।

आर्य-अनार्य—सभी पुरुष स्वायम्भुव मनु की सन्तान हैं तथा श्रमण और वैदिक—उभयसंस्कृति एक ही प्राचीनतम भारतीय सनातनपरम्परा की दो धारा हैं। सभी २४ तीर्थंकर अपने जीवन के पूर्वकाल में क्षत्रिय राजा (आर्य) थे, जीवन के उत्तरकाल में निवृत्ति (विरति=वैराग्य) होने पर भिक्षु (श्रमण) या तीर्थंकर बन गये।

वैदिकसंस्कृति के मूलप्रवर्तक ब्रह्मामारीचकश्यप पंचजनजातियों (असुर, देव, गन्धर्व, नाग और सुपर्ण) के जनक थे। कश्यपब्रह्मा का समय १४००० वि०पू० था और ऋषभदेव श्रमणसंस्कृति के प्रवर्तक थे, जिनका समय २७००० वि० पू० (कश्यप से १३००० वर्षपूर्व) था। वर्तमान—वेदों का मुख्यांश विश्वामित्र, वसुमानवासिष्ठ, भरद्वाज, वामदेव आदि द्वारा दृष्ट है, जो ७००० वि०पू० अर्थात् अबसे ९००० वर्ष पूर्व हुये। वेदों का २८ वेदव्यासों ने संस्करण किया, जिनमें ब्रह्माकश्यप प्रथम (१४००० वि०) और अन्तिम व्यास कृष्णद्वैपायन (३००० वि०पू०) थे। अतः वैदिकसंस्कृति **'सनातन'** **नहीं, 'चिरन्तन'** अवश्य है और श्रमणसंस्कृति और अधिक प्राचीनतर है तथापि सभी संस्कृतियाँ परिवर्तनशील रही हैं। प्राङ्महाभारतकाल में दोनों संस्कृतियों का समन्वितरूप था। ऋग्वेद का वातरशना सप्तर्षिसूक्त, अथर्ववेद का व्रात्यकाण्ड और उपनिषद् इस तथ्य (समन्वितरूप) के साक्षी है। उस समय **'व्रात्य'** शब्द, तीर्थंकर और उनके अनुयायियों का वाचक था। इसीलिये 'व्रात्यकाण्ड' में व्रात्य को प्रजापति को दीक्षित करनेवाला और ईश्वरतुल्य-पूज्य बताया गया है। वातरशना ऋषियों में प्रधान ऋष्यश्रृंग काश्यप थे, जिन्होंने दशरथ का पुत्रेष्टियज्ञ कराया। शनैः शनैः दोनों संस्कृतियों में भेद बढ़ता गया। यह महावीरनिर्वाण (१७०० वि० पू०) से लगभग डेढ़ दो हजार वर्षों पश्चात् हुआ, संभवत कालकाचार्य और विक्रम के समय से।

विद्यमान जैनवाङ्मय में 'तीर्थंकरक्रम' भी अस्तव्यस्त है, उसको मैंने व्यवस्थित करने की चेष्टा इस पुस्तक में की है। आशा है जैनमनीषी एवं अन्य विद्वान् शोध की दृष्टि से इस पुस्तक का स्वागत करेंगे और सत्य के प्रति श्रद्धालु होंगे। इत्यलं बहुना।

विदुषां वशंवदः

दि० १-४-१९९१; **डा० कुंवरलालजैन व्यासशिष्य**

सरसरी दृष्टि में इस ग्रन्थ की विशेषतायें :

मिथ्या दृष्टि का खण्डन

१. श्रमणसंस्कृति, वैदिक संस्कृति से १८००० वर्षों से अधिक पुरानी—कुछ वेदमन्त्र केवल १४००० और अधिकांश ६००० वर्ष पुराने।

२. ऋषभ का समय—२७००० विक्रमपूर्व सिद्ध।

३. वेदों में श्रमण और वैदिक संस्कृति का समन्वित रूप—भेद केवल विक्रमकाल के पश्चात् बढ़ा।

४. सभी मानव—आर्य-अनार्य—स्वायम्भुवमनु की सन्तान

५. भारत से ही मनुष्य जाति का पृथिवी पर विस्तार।

६. भरतकाल में वर्णव्यवस्था और राज्यसंस्था का अभाव।

७. इक्ष्वाकुवंश और ऋषभवंश में भेद।

८. २४ तीर्थंकरों का अस्तव्यस्तक्रम, व्यवस्थितक्रम बाँधने की प्रथम चेष्टा।

९. वातरशना सप्तर्षि—तथ्य उद्घाटन।

१०. व्रात्य का पूज्य-यथार्थरूप—प्राङ्महाभारतकाल में अथर्ववेद से प्रकट।

११. अनेक मिथ्यावादों एवं मिथ्यदृष्टि का निराकरण

१२. पार्श्व का समय २००० विक्रमपूर्व निश्चित।

१३. महावीर का समय १७५० विक्रमपूर्व।

१४. चन्द्रगुप्तमौर्य का समय १४०० विक्रमपूर्व।

१५. चन्द्रगुप्त साहसांकविक्रमादित्य ही शकसंवत् (१३५ विक्रमसंवत् में) प्रवर्तक।

१

ऋषभचरित और श्रमणसम्प्रदाय

श्रमणसम्प्रदाय की प्राचीनता

आदितीर्थंकर ऋषभदेव का श्रमणधर्म या श्रमणसम्प्रदाय से अनन्य सम्बन्ध है; इस दृष्टि से श्रमणधर्म वैदिकधर्म (सम्प्रदाय) से अधिक प्राचीन-तर, आदिम किंवा सनातन है। विद्यमान या उपलब्ध वैदिक मन्त्रों के द्रष्टा (रचयिता)-विश्वामित्र, गृत्समद, भरद्वाज, कण्व, गौतम, वामदेव, वसुमान् वासिष्ठ आदि आज से नौसे दश सहस्र वर्ष हुये पूर्व थे। वर्तमान (उपलब्ध) वेद का स्वरूप सनातन नहीं है। महाभारत के सनत्सुजातीय पर्व में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि "अज्ञान के कारण एक ही वेद के अनेक रूप (अनेक वेद) बन गये।" जिस प्रकार जैनागमों के विषय में प्रसिद्ध है कि अन्तिम तीर्थंकर महावीर से देवर्द्धि क्षमाश्रमण तक द्वादशांगों का विभिन्न कारणों से लोप हुआ और समय-समय पर उनका आचार्यों ने उद्धार किया, उसी प्रकार तथाकथित सनातन[1] वेदों का अनेकों बार लोप हुआ[2] और विभिन्न समय में विभिन्न ऋषियों ने समय-समय पर वेद मन्त्रों की रचना की और कम से कम २८ बार २८ वेदव्यासों[3] ने वेदों का संकलन और संग्रह किया। वेदों के प्रथम सम्पादक परमेष्ठी कश्यप मारीच ऋषि थे, इनके समय (१४००० वि० पू०) में मधुकैटभ असुरों ने "प्राक्कश्यप वेदों" का अपहरण किया, तब "हयग्रीव" नाम के महापुरुष ने मधुकैटभ का वध करके वेदों का (कश्यप के माध्यम से) उद्धार (मधुकीड) किया।[4] तदनन्तर एक बार नवम व्यास अपान्तरतमा सारस्वत ने पुनः संग्रह किया,[5] इसी प्रकार "दत्तात्रेय" ऋषि ने वेदों का उद्धार किया।[6] उपलब्ध वर्तमान वेदसंहिताओं के मन्त्रों का संकलन, अबसे ५२०० वर्ष पूर्व कृष्णद्वैपायन पाराशर्य व्यास (२८ वें व्यास)

ने किया ।[१] तदुपरान्त पाराशर्य व्यास की परम्परा में भी वेदमन्त्रों का पाठान्तर होता रहा, जिससे चार वेदसंहिताओं की ११३१ शाखायें बन गईं । अतः वेदसंहिताओं का वर्तमानरूप सनातन या सृष्टिकाल से एकरूप मानना महाभ्रान्ति हैं । इनकी सनातनता का खण्डन वैदिकग्रन्थों से ही होता है । वर्तमान वैदिकसम्प्रदाय का स्वरूप सनातन नहीं है, इसी तथ्य की पुष्टि में उपर्युक्त प्रमाण प्रस्तुत किये गये हैं । यद्यपि १० सहस्र वर्षों में वैदिकसम्प्रदाय का स्वरूप बहुत कुछ बदलता रहा है, तथापि वेदधर्म के प्रवर्तक, पंचजनों के पिता "परमेष्ठी कश्यप' माने जा सकते हैं, जिनका समय आज से १६००० वर्ष पूर्व था । वेदों के उपलब्ध मन्त्र ५५०० वर्ष पूर्व (देवापि-शन्तनु) से कश्यप (१४००० वि० पू०) तक के हैं, परन्तु ऋग्वेद के मन्त्रों का अधिकांश भाग, जिनके रचयिता वासिष्ठ, विश्वामित्र भरद्वाज, कण्व आदि थे, उनका समय, अधिकतमरूप से, (९०००) नौ सहस्रवर्ष पूर्व था । उस समय तक भी जातिप्रथा नहीं थी, वर्णव्यवस्था ही थी, परन्तु दाशरथिराम (५००० वि० पू०) के समय तक जातिव्यवस्था सुदृढ़ हो गयी थी ।

ऋषभ और श्रमणधर्म की चर्चा करते हुये, मैंने वेदों की चर्चा पहिले की इसका कारण—यह प्रदर्शित करना है कि वेदधर्म या वैदिकसम्प्रदाय सनातन या आदिम या प्राचीनतम नहीं है और उसका वर्तमानरूप तो दो ढ़ाई हजार वर्ष पुराना ही है । इसके विपरीत ऋषभदेव और श्रमणसम्प्रदाय अब से ३०००० वर्ष पुराना है । परमेष्ठी कश्यप से पन्द्रहसहस्रवर्षपूर्व । तथापि श्रमणसम्प्रदाय या जैनधर्म का विद्यमानरूप भी दो हजार से अधिक प्राचीन नहीं है और जैनागम (उपलब्ध पाठ) तो और भी अर्वाचीन है, लगभग डेढ़सहस्रवर्ष के जैनशास्त्र ही उपलब्ध हैं ।

वैदिकग्रन्थों में ऋषभ और श्रमणों का उल्लेख

ऋग्वेदादि में ऋषभ, वातरशनामुनि, व्रात्य, केशी आदि पदों एवं उपनिषदादि में निर्वाण, मोक्ष, वीतराग, श्रमणादि पदों की उपलब्धि के आधार पर अनेक जैनशोधविद्वान्, उनका सम्बन्ध "ऋषभ" और जैनधर्म से जोड़ते हैं, यह कहाँ तक समीचीन और इतिहाससम्मत है, इस विषय की यहां समालोचना करेंगे, जिससे यथार्थ तथ्यों का निश्चय हो सके । उदाहरणार्थ आचार्य श्री हस्तीमलजी महाराज ने स्वलिखित "जैनधर्म का मौलिक इतिहास" (प्रथम भाग) में लिखा है—"ऋग्वेद में भगवान् ऋषभ का उल्लेख अनेक स्थलों पर हुआ है, किन्तु टीकाकारों ने साम्प्रदायिकता के कारण अर्थ

में परिवर्तन कर दिया, जिसके कारण कई स्थल विवादास्पद हो गये। जब हम उन ऋचाओं का साम्प्रदायिक पूर्वाग्रह का चश्मा उतारकर अध्ययन करते हैं, तब स्पष्ट ज्ञात होता है कि यह भगवान् ऋषभदेव के सम्बन्ध में ही कहा गया है" (पृष्ठ ५७)।

जहाँ तक टीकाकारों या भाष्यकारों की साम्प्रदायिकता का प्रश्न है, ब्राह्मणों के लिये भी ऋषभदेव उतने ही पूज्य थे, जितने जैनों के लिये। अतः ऋषभदेव के सम्बन्ध में टीकाकारों पर साम्प्रदायिकता का आरोप निरर्थक है, क्योंकि वैष्णव और शैव दोनों ही "ऋषभ" को अपने इष्टदेव "विष्णु" और "शिव" का अवतार मानते थे, यह सर्वविदित है। श्रीहस्तीमलजी तथा अन्य जैनशोधक ऋग्वेद के जिन तीन चार मन्त्रों का उद्धरण देते हैं, कम से कम उनमें "ऋषभदेव का उल्लेख नहीं है, यथा—

(१) चत्वारि शृंगाः······ (ऋग्वेद)[७]

(२) ककर्दवे वृषभो······मुद्गलानीम् (ऋ० १०/१०२/६)[८]

(३) केश्यग्निः केशी······ज्योतिरुच्यते ११ (ऋ० १०/१३६/१)[९]

इत्यादि।

प्रथम "चत्वारि शृंगा" मन्त्र में "ऋषभदेव" का उल्लेख या संकेत नहीं है, यद्यपि महोदेव (महादेव-महान्देव) शब्द से कुछ भ्रान्ति होती है। वैदिक विद्वानों के अनुसार यह "अग्नि" देव के स्वरूप का ही वर्णन है कि "सप्तहस्त" शब्द की सात विभक्तियां आदि हैं।

द्वितीय मत "ककर्दवे··मुद्गलानीम्" (ऋ० १०/१०२/६) में "पांचाल-राज" मुद्गल के युद्ध का वर्णन है, उसका सारथि या रथ का बैल "केशी (केशवाला) था। जैसा कि प्रसिद्ध ऋग्भाष्यकार सायणाचार्य ने स्पष्टीकरण दिया है कि "मुद्गल का सहायक सारथि केशी-केशवाला था या बड़े बालों वाला बैल उसका सहायक था, जो युद्ध में गर्जा।"[१०]

कम से कम इस मन्त्र में भी "ऋषभदेव" का उल्लेख या संकेत नहीं। यहां पर "मुद्गल" के सारथि केशी (जटाधारी) को "ऋषभदेव" मानना ही आदितीर्थंकर के लिये घोर अपमानजनक है, भला ऋषभदेवकेशी, मुद्गल के सारथी हो सकते हैं? पुनः, मुदगल, अबसे लगभग ८००० वर्ष पूर्व का राजा था और महान् तीर्थंकर ऋषभदेव अबसे लगभग ३०००० वर्ष पूर्व हुये, अतः किसी भी युक्ति से इस मन्त्र में "ऋषभदेव" का संकेत मानना संभव नहीं कि

मुद्गल से २२००० वर्ष पूर्व होने वाला महापुरुष उस राजा का केशी-सारथी बने ।

"ऋषभ" शब्द एक सामान्य शब्द है, जिसके अनेक अर्थ हैं—श्रेष्ठ पुरुष, बैल, शब्द, गतिवान् इत्यादि ।

कपिल—यद्यपि, ऋग्वेद में, ऋषभदेव का उल्लेख, असम्भव या आश्चर्य-जनक नहीं, जबकि उनके समकालिक "कपिल" (सांख्यप्रवर्तक) परमर्षि, जो जैनशास्त्रों के अनुसार आर्षभ भरतपुत्र मरीचि के शिष्य थे, का उल्लेख ऋग्वेद (१०/२७/१६) में है—

"दशानाम् ये कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ।
गर्भं माता सुधितं वक्षणा स्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ।।"

इस पर भाष्य करते हुये सायणाचार्य ने लिखा है—"एकं मुख्यं कपिल-मेतन्नामानं प्रसिद्धमृषिम्" श्वेताश्वतरोपनिषद् में भी परमर्षि कपिल का उल्लेख है ।"[११]

वातरशना केशी=जैनमुनि—

ऋग्वेद में "ऋषभदेव का स्पष्ट या निर्विवाद उल्लेख नहीं है, परन्तु, ऋग्वेदोल्लिखित "वातरशना" मुनि, निश्चय ही श्रमणधर्म या जैनमत (प्राङ्महाभारतकालीन पूर्वरूप सम्प्रदाय) के अनुयायी थे । यह पहिले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि वैदिक या आर्हत (श्रमण) दोनों का सनातन या समानरूप कभी भी नहीं रहा । निर्ग्रन्थ या जैनमत का जो रूप पार्श्व-नाथ के समय में (चातुर्यामधर्म) था, वह महावीर के समय में वही रूप नहीं था, यह जैनगण, कम से विद्वान तो जानते ही हैं और जो रूप महावीर के समय या डेढ़ दो हजार वर्ष पूर्व था, वह आज नहीं है, अमोघवर्ष और कुमारपाल के समय तक क्षत्रियगण और ब्राह्मण ही जैनमत के अधिक अनु-यायी होते थे, यद्यपि वैश्य भी इस धर्म के अनुयायी होने लगे थे ।

ऋग्वेद एवं तैत्तिरीयारण्यक में श्रमणधर्मा वातरशना मुनियों का स्पष्ट उल्लेख है, इस विषय की यहां समीक्षा करते हैं ।

सूक्त के द्रष्टा सप्त वातरशना मुनि—

ऋग्वेद (१०/१३६) के सूक्त के सात मन्त्रों के द्रष्टा सात वातरशना[१२] मुनि थे—जिनके नाम हैं—(१) जूति (२) वातजूति (३) विप्रजूति

(४) वृषाणक (५) करिक्रत (६) एतश और (७) ऋष्यश्रृंग । ये मुनि नाम सामान्य वैदिक ऋषियों से पृथक् हैं, संभवतः उस समय (५००० वि० पू०) की प्राकृतभाषा के नाम हों । इनमें से अन्तिम नाम—"ऋष्यश्रृंग" मुनि का नाम "इतिहासपुराणों, विशेषतः रामायण में विख्यात है, जिन्होंने, राजा दशरथ का "पुत्रेष्टियज्ञ" कराया था । यह पहिले भी संकेत किया जा चुका है कि "महावीरकाल" और उससे पूर्व तथा पश्चात् भी दीर्घकाल तक, कम से कम विक्रम समकालिक कालकाचार्य के समय तक ऋषियों और मुनियों में साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं था । महावीर के शिष्य इन्द्रभूति गौतमादि पहिले वैदिक आचार्य ही थे । ऋग्वेद में वातरशना मुनियों के सूक्त (मन्त्र) सम्मिलित किये गये, इससे प्रकट है कि वाल्मीकि (५००० वि० पू०) और पाराशर्य व्यास (३००० वि० पू०) में साम्प्रदायिक भेदभाव नहीं था ।

सप्त मुनियों में अन्तिम वातरशना मुनि ऋष्यश्रृंग यदि वही है, जिन्होंने दशरथ का पुत्रेष्टियज्ञ कराया तो उनका समय आज से ७००० वर्ष पूर्व था । काश्यपगोत्रीय विभाण्डक ऋषि के पुत्र 'ऋष्यश्रृंग' थे, जिसका पूर्णतः जंगल (निर्जनवन) में पिता ने पालन किया, उसने जन्म से यौवनकाल तक राष्ट्र, नगर, स्त्री और पुरुष का दर्शन नहीं किया था, वह वनचरमुनि पूर्ण ब्रह्मचारी[१३] था, यह भी जैन या श्रमणधर्म का उस समय प्रमुख लक्षण था ।

उपलब्ध वैदिक उपनिषदों में प्रायः श्रमणधर्म का ही विस्तार से व्याख्यान है । जैमिनीयोपनिषद् में ऋष्यश्रृंग की शिष्यपरम्परा मिलती है—जिनमें अन्तिम 'गुप्त लौहित्य' संभवतः वैश्य था ।

ऋग्वेद के इस केशी सूक्त में 'केशी' (जटाधारी मुनि) को द्यावापृथिवी का पालन, स्वर्गद्रष्टा और विश्वज्योति कहा गया है । ये वातरशनामुनि मैले-कुचैले रहते थे, वे मौन रहते थे, वे शरीर की परवाह नहीं करते थे, अन्तरिक्ष में भ्रमण करते हुये विश्व को देखते थे, वे देवप्रेषित मुनि थे, वे समुद्र के किनारों पर निवास करते हुये तपश्चर्या करते थे, वे ज्ञान के समुद्र (केशी केतस्य विद्वान्) थे, वे रुद्र के समान पात्र से विषपान करते थे, समुद्र तट पर रहते हुये—अप्सराओं और गन्धर्वों तक मृगों (पशुओं) द्वारा सेवित दोनों समुद्रों और जंगलों में विचरण करते थे—

"उभौ समुद्रावा क्षेति यश्च पूर्व उतापरः ।
अप्सरसां गन्धर्वाणां मृगाणां चरणे चरन् ॥"

(ऋग्वेद १०/१३६/५-६)

तैत्तिरीयारण्यक में श्रमणों का उल्लेख—

इस वैदिकग्रन्थ में श्रमण ऋषियों के 'केतु' 'अरुण' और 'वातरशना' संज्ञक संघों[१४] का उल्लेख है, जिस प्रकार महावीरोत्तरकाल में जैनमुनियों के अनेक प्रकार के गण, संघ और गच्छ थे, उसी प्रकार महाभारतकाल से पूर्व उपर्युक्त प्रकार के 'श्रमणमुनिसंघ' थे।

उपर्युक्त 'श्रमणसंघों' के मुनियों को 'अप्रमादी' कहा गया है—अर्थात् वे मुनिगण अपनी तपश्चर्या में किसी प्रकार का शैथिल्य नहीं आने देते थे, नित्य नियमों का पालन करते थे। वे कठोर ब्रह्मचारी (ऊर्ध्वरेता) थे।[१५]

निर्ग्रन्थ—[१६]

तैत्तिरीयारयक (१०/६३) भाष्य में सायण ने किसी प्राचीन 'संवर्तश्रुति' का उद्धरण दिया है, जिसमें निर्ग्रन्थों को 'कन्था, कौपीन, आसनादि से रहित और प्राकृत=नैसर्गिकरूप (नग्न=दिगम्बर) में रहने वाला बताया गया है। 'निर्ग्रन्थ' का अर्थ है किसी 'ग्रन्थि' (बन्धन) को न मानने वाले 'मुक्त' (निर्मुक्त) साधु। मुण्डकोपनिषद् में 'अविद्याग्रन्थि' के छेदनकर्ता से ही 'निर्ग्रन्थ' का अभिप्राय: है—

(१) सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सौम्य। (१/१/१०)

(२) भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टेपरावरे॥ (१/२/८)

अनुमानतः श्रमणों या जैनों के लिये 'निर्ग्रन्थ' शब्द का प्रयोग न्यूनतम ५००० वर्ष पुराना अवश्य है, जबकि उपनिषद् का विशेष प्रचार प्रसार हो रहा था।

व्रात्य (अथर्ववेद में)—

ऋग्वेद के एक मन्त्र (३/५३/१४) में 'कीकट' (मगध) के राजा 'प्रमगन्द'[१७] का उल्लेख है, संभवतः यह 'मगन्द' शब्द ही उत्तरकाल में 'मगध' बन गया। ऐक्ष्वाक सुदास और गाथी विश्वामित्र के समय कीकट का राजा 'मगन्द' था। आरम्भ से ही इस प्रदेश के निवासी 'व्रात्य' और अनार्य'[१८] माने जाते थे, जो न तो यज्ञार्थ दूध दुहते थे और न यज्ञ करते थे। जैनों के २४ तीर्थंकरों में २२ ने इसी प्रदेश में विहार एवं निर्वाण प्राप्त किया—'सम्मेदशिखर' की ऐसी मान्यता है। विदेह माथव (मिथि-जनक) ने इस प्रदेश को बसाया था, ऐसा शतपथब्राह्मण[१९] से ज्ञात होता है।

संभवतः व्रतशील श्रमणमुनियों या तीर्थंकरों को अथर्ववेद (पंचदशकाण्ड) में 'व्रात्य' कहा गया है और उनकी अपार महिमा गाई गई है तथा स्तुतियां हैं। मूलमन्त्र[20] परिशिष्ट में द्रष्टव्य है। यहां पर 'व्रात्य' (तीर्थंकर) को महान् व्रतशील और प्रजापति को भी प्रेरणा देने वाला बताया गया है। प्रजापति ने उसकी प्रेरणा से सुवर्ण (हिरण्य) को बनाया। वह व्रात्य बढ़ा और महान् हो गया, वही महादेव बन गया। उसके पुंश्चली, हास्य, मागध, विज्ञान वस्त्र, उष्णीष, कलमलिमणि और कुण्डल थे। वह सबका स्वामी, अहिंसक, सभी अन्तरदेशों में रहने वाला, शर्व, और भव का स्वामी है। वह न पशुओं का मारता है।......ऋत, सत्य, सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र 'व्रात्य' की पीछे चलते हैं। वह व्रात्य विद्वान् राजा के घर अतिथि के रूप में आता है वह राजा उस व्रात्य को अपने से श्रेष्ठ मानकर उसका बहुत सम्मान करता है—इत्यादि।

निर्वाण, वीतरागादिपद—

मुण्डकोपनिषद् में प्राप्त अनेक शब्द[21] श्रमणों का आभास देते हैं—मूल में श्रमण और ब्राह्मण पृथक् जाति या पृथक् नस्ल के नहीं थे, सभी तीर्थंकर पहिले क्षत्रिय राजा ही थे—प्रवृत्तिमार्गी (यज्ञधर्म-वेदमार्ग) को मानते थे, जीवन के यौवन या पश्चिमकाल वृद्धावस्था में ही प्रायः वे परिव्राजक (सन्यासी), भिक्षु या श्रमण बनते थे—तब निवृत्तिमार्गी होकर वेदान्त (उपनिषद्-वेद के अन्तिमभाग)—अध्यात्मधर्म का पालन करते थे। उपलब्ध या प्रचलित जैनदर्शन और उपनिषद्र्शन में अभी भी पर्याप्त साम्य है,[22] जैसा कि महावीर ने इन्द्रभूति को आत्मज्ञान दिया। ब्राह्मणों, क्षत्रियों और वैश्यों को ही 'आर्य' कहा जाता था और वैश्य के विशेषण थे—'अर्य' 'श्रेष्ठी' (सेठ) साधु (साहू) और साधुकार (साहूकार) स्वामी। अतः जैन श्रमण और ब्राह्मणों को पृथक्-पृथक् जाति या नस्ल के मानना सर्वथा मिथ्याधारणा और निराधार कल्पना है—२४ तीर्थंकरों, विशेषतः अजितनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ और महावीर का जीवनचरित अवलोकनीय है। इनके कुटुम्बी क्रमशः ऐक्ष्वाक, यादवादि क्षत्रिय ही थे।

निर्वाण, ब्रह्मनिर्वाण—

इस पद का प्राचीन प्रयोग श्रीमद्भगवद्गीता[23] में उपलब्ध होता है, इसी को मोक्ष, परिमोक्ष, मुक्ति इत्यादि भी कहते हैं। सांख्य में केवलज्ञान, केवली, मोक्ष, निर्वाण आदि शब्द मिलते हैं। महाभारत में 'मोक्ष' पद का बहुधा प्रयोग हुआ है। 'निर्वाण' शब्द का सम्बन्ध सन्यासियों यतियों और

श्रमणों से ही था, इस विषय पर विशेष तर्क या उहापोह की आवश्यकता नहीं है। जैन और ब्राह्मणग्रन्थों में यह शब्द एक ही मूल से लिया गया और दोनों सम्प्रदायों के वाङ्मय में समानरूप से पाया जाता है, अतः 'निर्वाणादि' पदों को किसी एक सम्प्रदाय से जोड़ना दुराग्रहमात्र है, जिस प्रकार आज कल 'ज्ञानी' शब्द प्रायः सिख पुजारियों के लिये प्रयुक्त होता है, परन्तु यह (ज्ञानी) शब्द उपनिषदों और गीता में इसी अर्थ बहुधा प्रयुक्त हुआ है। अतः इस शब्द को केवल सिखों से जोड़ना भ्रान्तिमात्र ही होगी। यही बात 'बुद्ध' शब्द के सम्बन्ध में समझनी चाहिये। महाभारतकाल (३००० वि०पू०) से हजारोंवर्ष पूर्व 'ज्ञानी' को 'बुद्ध' या प्रतिबुद्ध कहा जाता था, प्राचीन उपनिषदों में यह शब्द इसी अर्थ में बहुधा प्रयुक्त हुआ है, अतः गौतम बुद्ध ही संसारमें प्रथम बुद्ध नहीं थे, उनसे पूर्व असंख्य 'बुद्ध' या 'प्रतिबुद्ध' हो चुके थे, जिनमें से २५ ज्ञानियों को बौद्धसाहित्य में गौतम से पूर्वकाल का 'बुद्धावतार' माना गया है। गीतोक्त (२/४९) बुद्धियोग[२४] के अनुयायी ही 'बुद्ध' थे।

यही बात 'वीतराग' आदि पदों पर लागू होती है, उपनिषदों और गीता[२५] में अनेकत्र यह शब्द प्रयुक्त हुआ है, जैनतीर्थंकरों, विशेषतः महावीर के सम्बन्ध में यह 'वीतराग' शब्द बहुधा प्रयुक्त होता है, परन्तु, इसका मूल बहुत प्राचीन है। वैदिक शब्द (संज्ञा और विशेषण) 'वीतहोत्र' या 'वीतहव्य' से इसकी तुलना द्रष्टव्य है।

रामायण में श्रमण (श्रमणकुमार)—

वाल्मीकीय रामायण में एकाधिक बार 'श्रमण' शब्द का प्रयोग हुआ है। दाशरथि राम (५००० वि० पू०) से लगभग ५० पीढ़ी पूर्व, उनके पूर्वज सम्राट मान्धाता मानव ऐक्ष्वाक ने (८००० वि० पू०) किसी 'श्रमण'[२६] को पाप करने के कारण दण्ड दिया था, यह तथ्य, राम बाली को बताते हैं। इस प्रसंग से सिद्ध होता है कि मान्धाता के समय (८००० वि० पू०) भी 'श्रमण' होते थे।

वाल्मीकि रामायण के एक अन्य प्रसंग में वैश्यपुत्र मुनिकुमार[२७] की चर्चा है, यद्यपि वाल्मीकि के पाठ में इसके लिये 'श्रमण' या श्रमणकुमार (श्रवण कुमार ?) शब्द का प्रयोग नहीं है, परन्तु, उत्तरकालीनग्रन्थों में इस संज्ञा का प्रयोग हुआ है। इससे ज्ञात होता है कि उस समय (५००० वि० पू०) वैश्य भी ऋषि, मुनि, और श्रमण होते थे। उस समय शूद्र भी तपश्चर्या करते थे, जैसाकि शम्बूकवध[२८] से ज्ञात होता है। मान्धाता के अनुकरण पर राम ने

श्रमण (शूद्रमुनि) का वध करके दण्ड देकर तथाकथित अधर्म (?) से मुक्ति पाई, जैसा, उन्होंने वालि से स्वयं कहा था—

अन्यैरपि कृतं पापं प्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ।
प्रायश्चित्तं च कुर्वन्ति तेन तच्छाम्यते रजः ।।
(रा० ४/१८/३४)

"दूसरों के पाप करने पर वह पाप प्रमत्त (आलसी) राजाओं को ही लगता है और प्रायश्चित करने पर वह पाप समाप्त हो जाता है ।"

राम के समय में धर्म और पाप की परिभाषा बड़ी अद्भुत और विचित्र थी कि एक तपस्वी (शम्बूक) को मारने पर राम को पाप नहीं लगा और गृहस्थ ब्राह्मण पुत्र स्वयं मर गया था उसका पाप राजा राम को लगा तथा शूद्रतपस्वी के वध से राम के इस पाप का प्रायश्चित्त हो गया । धर्म के ठेकेदारों ने पाप और धर्म की कैसी कठोर परिभाषायें कर रखीं थीं, इसकी कोई तुलना नहीं ।

'शम्बूकवध' की कथा कितनी ऐतिहासिक है या मध्यकालीन कल्पना है, इसपर गहन अनुसंधान की आवश्यकता है ।

पुराणों में जिन और आर्हत के प्रसंग—

वेदबाह्य जिन (यति) धर्म (सम्प्रदाय) की प्राचीनता के लिये इतिहास पुराणों में उल्लिखित बृहस्पति (लौक्य), नहुषभ्राता देवेन्द्रर्जि स्यूमरश्मि-कपिल-संवाद (महाभारत-शान्तिपर्व २६७-२७० अध्याय) असुरसंहार, इन्द्र, ययातिपूवज भ्राता यति, शालावृक यति आदि की चर्चा आवश्यक है । विष्णुपुराण में अर्हत् को 'महामोह' और नग्न (दिगम्बर) बताया गया है । इन सभी ऐतिहासिक प्रसंगों की यहां संक्षेप में चर्चा और अनुसंधान करते हैं ।

लोकायत चार्वकदर्शन के प्रवर्तक यति-लोकपुत्र लौक्य बृहस्पतिः

कुछ शताब्दियों पूर्व, विशेषतः विक्रम की नवमी-दशमी शती में 'यति' शब्द जैनसाधुओं के लिये विशेषरूप से प्रयुक्त होना था । यथा 'तिलोकपण्णती (त्रैलोक्यप्रज्ञप्ति) के रचयिता 'यतिवृषभ' अति प्रसिद्ध है । इस 'यति' शब्द का प्रयोग वेदपुराणादि में भी बहुतायत से है । 'यति' और 'जित' (जिन) शब्द समानार्थक है—संयमीयाजितेन्द्रिय ।

देवासुरयुग (११००० वि० पू०) में शालावृक[२१] नाम के ६६००० यति

थे, जिनका इन्द्रादि देवों ने वध किया, इनमें से केवल तीन पृथुरश्मि, बृहद्-गिरा और रायोवाज[३०] नाम के तीन यति बचे थे।

उस देवासुरयुग में एक विशिष्ट 'यति' (जिन) या श्रमण हुये, जो 'लौक्य बृहस्पति' कहे जाते थे। 'बृहस्पति' शब्द यति के समान एक उपाधि थी, जो देवासुरयुग में अनेक ऋषियों मुनियों को प्राप्त हुई।

असद्‌वाद=शून्यवाद=लोकायतमत के प्रवर्तक **'लोक'** संज्ञक ऋषि के पुत्र **'लौक्य बृहस्पति'** थे, इनका 'असद्‌वाद' प्रवर्तकसूक्त ऋग्वेद (१०/७३) में सम्मिलित है, जिसमें उन्होंने 'असदवाद्' का प्रतिपादन किया है—

"देवानां पूर्व्ये युगे असतः सदजायत।
देवानां युगे प्रथम असतः सदजायत।"

"देवों से पूर्वयुग या प्रथमयुग में **'असद्'** (शून्य) से **'सद्'** (जगत्) उत्पन्न हुआ।"

इसी सूक्त (मन्त्र ७) में **'यति'** शब्द का भी प्रयोग हुआ है—'यद्‌देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत'। इस मन्त्र से प्रतीत होता है कि उस समय **'यति'** (जिन) धर्म की इतनी भरमार या प्रधानता थी कि ययातिनाहुष का अग्रज राजधर्म छोड़कर 'यति' बन गया और उसका नाम ही 'यति' प्रसिद्ध हो गया।

पुराणों में बृहस्पति (लौक्य) द्वारा जिनधर्मप्रवर्तन—

बारहवें देवासुरसंग्राम के अन्त में 'नहुषानुज' रजि देवेन्द्र बने। इन्द्र 'रजि' को पितृतुल्य मानता था और उसकी खूब चाटुकारिता करता था। रजि के ५०० पुत्र थे, यह बात रजिपुत्रों को अच्छी नहीं लगी। रजिपुत्रों ने अपने बलवीर्य पर इन्द्र का प्रभाव घटना प्रारम्भ कर दिया। तब इन्द्र ने लौक्य बृहस्पति की सहायता ली। लौक्य बृहस्पति ने अपने तर्कशास्त्र द्वारा रजि को जिनधर्म का उपदेश दिया जिससे वह राज्य छोड़कर यति (जिन) हो गया, रजिपुत्र भी इस यतिधर्म के अनुयायी हो गए और इस प्रकार इन्द्र का स्वार्थ पूरा हो गया। यह इतिहास स्वल्पशब्दान्तर के साथ हरिवंशपुराण[३१], मत्स्यपुराण, विष्णुपुराण और देवीभागवतपुराण में है।

यह घटना अब से लगभग १३००० वर्ष पूर्व की है, जब इन्द्र 'महेन्द्र' बन चुका था।

इस सम्बन्ध में पण्डित भगवदत्त का मत द्रष्टव्य है—

(१) इससे निश्चित होता है कि रजिपुत्रों के काल में अथवा मनु के वंशज ककुत्स्थ आदि के काल में पशुहिंसा के विरुद्ध भारत में एक भारी विप्लव उठा होगा, तभी से जैनधर्म का प्रादुर्भाव हुआ होगा। हिंसावाले पुरातन ब्राह्मणग्रन्थों के विधिविधानों के कारण हीं तब चार्वाकमत भी चला होगा। (भारतवर्ष का बृहद् इतिहास भा-१, पृ० ६७)।

पं० भगवद्दत्त के मत की सुपुष्टि महाभारत के दो प्रसंगों से भी होती है—(१) स्यूमरश्मिकपिल संवाद और (२) उपरिचरवसु—का उपाख्यान, इस द्वितीय उपाख्यान की चर्चा जैनपुराणों एवं बौद्धजातकों में भी है।

स्यूमरश्मिकपिलसंवाद[३२]—

परमर्षि कपिल (सांख्यप्रवर्तक) विश्व के आदिम (प्रथम) दर्शनप्रणेता एवं आदिसिद्ध थे, जो कर्दम और देवहूति के पुत्र एवं आर्षभि भरत के पुत्र मरीचि के शिष्य थे। उत्तरयुगों में, विभिन्न समयों में कपिलसंज्ञक व्यक्ति दृष्टिगोचर होते हैं, यथा ऐक्ष्वाक सगरकाल (७००० वि० पू०) तथा आसुरि (३५०० वि० पू०)काल में। प्रतीत होता है जिस प्रकार जिनमत के अनुयायी को जिन या जैन कहा जाता था, उसी प्रकार विभिन्न कालों में **कपिल के मत=(सांख्य) के अनुयायी आचार्य को कपिल कहा जाता था** अन्यथा मरीचि और ऋषभ समकालिक आदिविद्वान् परमर्षि कपिल, २५ सहस्र पश्चात् महाभारतकालतक जीवित नहीं रहे होंगे। ऐसे ही एक 'कपिल' या 'कापिल' आचार्य का, सम्राट् (देवेन्द्र) नहुष के समय 'स्यूमरश्मि' से संवाद हुआ, जिसमें कपिलाचार्य ने जैनतुल्य निवृत्तिमार्ग परक यतिधर्म का प्रधानता से उपदेश दिया है। इस संवाद में गार्हस्थ्य (संसार) धर्म और श्रमण (संन्यास=यति) धर्म दोनों को यथाकाल श्रेयस्कर बताया गया है।

यज्ञों में हिंसा का प्रवर्तन-इन्द्र द्वारा—उपरिचर वसूपाख्यान :

जैनपुराणों एवं जैनग्रन्थ वसुदेवहिण्डी में उपरिचर वसु का कथानक मिलता है, तदनुसार 'क्षीरकदम्बक' नाम गुरु के नारद और पर्वत तथा वसु (राजकुमार) शिष्य थे। बौद्धजातक=चेतिय(चेदि)जातक (सं १६२२) में भी यज्ञ में वसु का हिंसा का समर्थन करने के कारण रसातल में जाने का उल्लेख है।

उपर्युक्त इन्द्र समकालिक वसु (उपरिचर) को जैन, बौद्धसाहित्य तथा महाभारत में चैद्य (चेदिराज) बताया गया है परन्तु ब्रह्मांडपुराण (१/६३) एवं महाभारत (शान्तिपर्व) के सम्यक् परिशीलन से यह भ्रान्ति दूर होती है—'खेचर'—(उपरिचर) वसु का सम्बन्ध इन्द्र, बृहस्पति, एक, द्वित, और त्रित ऋषियों के काल (समय) से था। इन्द्र के 'हिंसामययज्ञ' का मध्यस्थ ऋषियों ने इसी 'खेचर' वसु को बनाया था। महाभारत के नारायणीयोपाख्यान (शान्तिपर्व अ० ३३६ से ३३७) में इसी को उपरिचर वसु को कहा गया है।

एक 'वसु' पुरूरवा ऐल के पुत्र 'अमावसु' की दशमीपीढ़ी में कुशिक के भ्राता थे। इनकी तीसरी या चौथी पीढ़ी में विश्वामित्र गाथी हुए, अतः वसु उपरिचर वसु का समय ऐक्ष्वाक पुरुकुत्स के समकालिक ८०००-६००० वि० पू० के मध्य था। विश्वामित्र और उनके पूर्वज सभी दीर्घजीवी थे, प्रत्येक पीढ़ी अनेक शताब्दियों जीवित रही, इसीलिए दो हज़ार वर्षों के अन्तराल में केवल १० पीढ़ियाँ हुई।

अतः उपरिचरवसु, चेदिराष्ट्र का राजा नहीं, चेदिराज वसु से न्यूनतम ५००० वर्ष पूर्व का सम्राट् था। जैनग्रन्थों में वसु के गुरु का नाम 'क्षीर-कदम्बक' है, महाभारत में उसका नाम 'बृहस्पति आंगिरस' है।[33] उपरिचर-वसु के यज्ञ में आप्ति के पुत्र एक, द्वित, त्रित एवं बृहस्पति पुरोहित थे, इसी समय शालावृक यति (असुर) हुए जो अरुरु के वंशज थे। इसी युग में अरुरुपुत्र धुन्धु असुर का संहार ऐक्ष्वाक राजा कुवलाश्व ने किया था।

खेचर वसु को ऋषियों ने और देवों ने मध्यस्थ (न्यायाधीश) बनाया कि यहाँ 'अज' का क्या अर्थ है ? देवों का पक्ष था कि 'अज' बकरे को कहते हैं और ऋषियों का पक्ष था कि त्रैवार्षिक 'बीजों' को अज कहते हैं। राजा वसु ने स्वार्थ के कारण देवों का पक्ष लिया, हालाँकि उसका बाद में अहिंसामय यज्ञ हुआ।[34]

महाभारत के अन्य प्रसंगों में कहा गया है कि हिंसामय (मांसादियुक्त) यज्ञों का प्रवर्तन अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए धूर्तों ने किया है,[35] वेदों में इसका (मूलवेदों) में विधान नहीं था।

नारायणीय (वैष्णव ?) धर्म में अहिंसा-देवी-आसुरी सम्पद्चर्चा—

बड़ी विडम्बना की बात है कि देवयुग में अदिति में पुत्र वामन विष्णु

और उत्तरकालों में उनके तथाकथत वैष्णव अवतारों—परशुराम दाशरथि-राम और वासुदेव कृष्ण ने अनेक महासंग्रामों में करोड़ों मनुष्यों का संहार (वध) किया। उन्हींको या वैष्णवसम्प्रदाय में 'अहिंसाधर्म' का प्रवर्तक या अनुयायी या पुजारी माना गया। ये ऐतिहासिक तथ्य स्वयं रामायण, महाभारत और पुराणों में विख्यात हैं, किसी प्रमाण या उद्धरण की आवश्यकता नहीं, फिर क्या कारण है कि घोर हिंसा करने वाले वैष्णव अवतारों को 'अहिंसा का प्रवर्तक माना गया ?'

अहिंसा के महान् उपदेष्टा नारायण साध्य[३६]—(१४००० वि०पू०)

सचाई यह है कि वामन विष्णु से दो सहस्राब्द पूर्व नारायण (साध्यदेव) और उनके शिष्य नारद (देवर्षि) ही 'अहिंसाधर्म' के महान् उपदेष्टा थे। यह माना जा सकता है कि परम्परा से इसका ज्ञान नारायण ने आदि-तीर्थंकर ऋषभदेव से प्राप्त किया होगा।

साध्यदेव नारायण ने ही देवर्षि नारद को भक्ति और अहिंसा (नारायणीय धर्म) का उपदेश दिया, उत्तरकाल में इस अहिंसामय भक्ति (पांचरात्रधर्म) का सम्बन्ध वामनविष्णु, दाशरथि और विशेषतः वासुदेव कृष्ण से जोड़ा गया, यद्यपि जीवन के अधिकांश भाग में तीनों ही घोर युद्धों (हिंसा) में संलग्न रहे, तथापि जीवन के अन्तिमभाग में कृष्ण ने 'अहिंसा धर्म' का भी समर्थन और प्रवर्तन किया। अतः वैष्णवों का अहिंसा से मूल सम्बन्ध साध्यदेव नारायण और नारद के कारण था। जैनग्रन्थों में भी नारद 'अहिंसा' का समर्थन करते दृष्टिगोचर होते हैं तथा बौद्धशास्त्रों में भी नारद को २५ बुद्धावतारों में सम्मिलित किया गया है।

दैवी-आसुरी सम्पद्द्वयी—

श्रीरघुनन्दनशर्मा ने अपने ग्रन्थ 'वैदिकसम्पत्ति' में इस सम्बन्ध में अनेक असत्य और इतिहासविरुद्ध बातें लिखी हैं, बहुत थोड़ी बातें आंशिक रूप से सत्य भी हैं। प्रथम, उनके कुछ उद्धरण द्रष्टव्य हैं—

(१) 'हम इससे पूर्व बतला आए हैं कि आस्ट्रेलिया से लंका होते हुये एक दल आकर मद्रास प्रान्त में आबाद हो गया था। इस आगत दल का राजा रावण था।...अनार्य अपने को हिन्दू कहने लगे और ऋषि पुलस्त्य तथा रावण का सिलसिला (वंशपरम्परा) जोड़कर कुछ लोग ब्राह्मण भी बन गये तथा अपने को आर्य बताने के लिए आर्यजाति के पुरुष वैवस्वत मनु को द्रविड़ बनाया। भागवत में लिखा है कि—

योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षिर्द्रविडेश्वरः।
स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीदिति श्रुतम् ॥

...इसके अतिरिक्त रावण ने अपने राक्षसी सिद्धान्तों को आर्यों में प्रचलित करके दोनों को एक करने का भी प्रयत्न किया। उसने वेदों का भाष्य किया और उस भाष्य में वेदों का अभिप्राय बदलकर आसुरी सिद्धान्तों का प्रक्षेप किया...वह हिंसामय यज्ञ सुरापान, मांसभक्षण, व्यभिचार, बलि, लिंगपूजन आदि धर्म को मानता था, जो कृष्णवेद के साहित्य में मिलते हैं—

(१) इस तैत्तिरीयकृष्णयजुर्वेद के विषय में नये और पुराने सभी विद्वानों ने कहा है कि यह मलिनबुद्धि से रचा गया है। इसलिए यह द्रविड़ों का रचा हुआ है।...चरक तो अनार्यजाति का आचार्य है। बृहदारण्यक उपनिषद् में लिखा है कि 'मद्रेषु चरकाः पर्यव्रजाम' अर्थात् चरक तो मद्रदेश के घूमने वाले हैं। कर्ण ने भी मद्रों की निन्दा की है।...अतएव चरक को महत्व देनेवाला यह तैत्तिरीय वेद निश्चय ही दुष्कर्मी विदेशियों का असुरों का रावण का—द्रविड़ों का बनाया हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। (पु० ३८०-३८२)।'

प्रस्थानत्रयी—

तदनन्तर शर्माजी ने प्रस्थानत्रयी (वेदान्तसूत्र, गीता और उपनिषद की छीछालेदर की है—वे लिखते हैं—हमारा दृढ़ विश्वास है कि यदि वेदों का कोई विरोधी है, यदि आर्यसभ्यता का कोई नाश करने वाला है और यदि आसुरीभाव फैलाकर जाति का कोई पतन करने वाला है तो वह प्रस्थानत्रयी का मिश्रण ही है। इसी की आड़ में देश में अनेकों सम्प्रदाय, अनेकों अनाचार और अनेकों भ्रम फैले हुए हैं (पृ० ३८३)।'

प्रस्थानत्रयी पर शर्माजी के कुछ टिप्पणियाँ द्रष्टव्य हैं—

(१) गीता तर्क से घबराती है। वह कहती है कि 'संशयात्मा विनश्यति...।'

(२) 'आर्यों का वैदिकसिद्धान्त अनिश्चित हो ही नहीं सकता। अतएव ये सिद्धान्त मिश्रण से ही उपनिषदों में आए, इसमें सन्देह नहीं।' (पृ० ३९१)।

(३) इन बातों के अतिरिक्त उपनिषदों में वैदिक यज्ञों की निन्दा है... (मुण्डक उपनिषद् के) चार मन्त्रों में यज्ञों पर विश्वास करने वालों को हजारों गालियाँ दी गई हैं।

आसुर उपनिषद्—

'छान्दोग्योपनिषद् में वर्णित उक्त विरोचन की कथा में लिखा है कि अपने आपको ब्रह्म माननेवालों की यह पहिचान है कि वे मुर्दों को वस्त्रालंकार से सजाकर गाड़ते हैं और इसी से दोनों लोकों की जय समझते हैं...'

'तस्मादस्यदेहाददानमश्रद्धानमयजमानमाहुरासुरो बतेत्यसुराणां ह्येषोपनिषत्तत् प्रत्यस्य शरीरं भिक्षयावसनेनालंकारेणेति संस्कुर्वन्त्येतेन ह्यमुं लोकं जेष्यन्तो मन्यन्त इति'। (छान्दोग्य० ८/८/५)।

(४) गीता में भी आसुरी सिद्धान्तों का मिश्रण है क्योंकि उसमें दुराचारियों को मोक्षभागी बनाया गया है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

इसके आगे शर्माजी ने बिना सोचे-समझे लिख मारा कि वेदों के विरुद्ध मद्रास (द्रविड़ों) ने भारी षड्यन्त्र किया—

'रावणादि का वाममार्ग, शंकराचार्य का शैवमत और वैष्णवों का भक्तिमार्ग द्रविड़ों से ही उत्पन्न हुआ।' (पृ० ४०६) अपने अज्ञान के कारण रघुनन्दनशर्मा अंग्रेजी षड्यन्त्र के शत-प्रतिशत शिकार हो गये। अंग्रेज यही चाहते थे कि उत्तर और दक्षिण भारत का पक्का भेद हो जाए, वह रघुनन्दन शर्मा जैसों के लेखों से हो ही गया।

शर्माजी को कितना भ्रम और अज्ञान था और इस अज्ञान से भारत का कितना अहित हुआ, आगे इसकी संक्षेप में समालोचना करते हैं।

यज्ञों में हिंसा का प्रवर्तक रावण नहीं, इन्द्र (देवराज)—

वाल्मीकीय रामायण के सम्यक् परायण किए बिना रघुनन्दनशर्मा ने व्यर्थ ही ऊल-जलूल लिख मारा है कि 'रावण का राक्षसदल मद्रास में आबाद हो गया' 'रावण ने ही कृष्णवेद में हिंसामययज्ञों का विधान किया' इत्यादि, शर्माजी को 'आर्य' 'अनार्य' का भेद ज्ञात ही नहीं था। आर्य और 'अनार्य' कोई जातियाँ नहीं थीं। वाल्मीकिय रामायण से ही ज्ञात होता है कि रावण अपने को 'आर्य' मानता था और विभीषण को 'अनार्य'।

वैदिकयज्ञों में हिंसा का प्रवर्तक स्वयं देवराज इन्द्र था, यह उपरिचर वसु के आख्यान से सिद्ध है। रावण को इस सम्बन्ध में घसीटना सिवाय

अज्ञान और कल्पना के कुछ भी नहीं है। रावण से न्यूनतम ६००० वर्ष पूर्व देवराज इन्द्र (तथाकथित आर्य) ने ही यज्ञों में हिंसा चलाई।

शर्माजी का कितना अज्ञान है कि रावण अपने को 'हिन्दू' कहता था। उस समय 'हिन्दू' शब्द था ही नहीं और 'आर्य' शब्द का वह अर्थ नहीं जैसा आर्यसमाजी विद्वान् समझते हैं। रघुनन्दनशर्मा ने वेदों के रावणभाष्य के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, सब कुछ उनकी कल्पना है, कोई प्रमाण नहीं, 'कृष्णवेद मलिनबुद्धि' से रचा गया, इसीलिए वह द्रविड़ों की रचना है।' शर्माजी ने द्रविड़ों को मनुष्य समझा ही नहीं, जो कुछ भी मलिन है, वह आर्य यानी उत्तरभारत की रचना नहीं हो सकती। उत्तर-दक्षिण भारत के पार्थक्य का बीज इसी दम्भ और अज्ञान से बोया गया। शर्माजी 'मद्र' जनपद को 'मद्रास' समझते हैं। यह उनका कितना घोर अज्ञान था कि आज प्रत्येक विद्वान् जानता है कि मद्र पंजाब की प्राचीनसंज्ञा थी। इसीसे समझा जा सकता है कि शर्माजी को कितना 'इतिहास' आता था। इसी प्रकार— उन्होंने प्रस्थानत्रयी के विषय में जो ऊलजलूल लिखा है वह सब निरर्थक अज्ञानमूलक और काल्पनिक है। प्रवृत्ति और निवृत्तिमार्ग को बिना समझे सब लिखा गया है।

(ऋषभदेव का इतिहास)

चौदहमनु, कालचक्र (कालक्रम) और कुलकर—

वैदिकपुराणों के अनुसार ऋषभदेव स्वायम्भुव मनु की पांचवीं पीढ़ी में हुये, जिसका कुछ विस्तृत वर्णन आगे किया जायेगा। इससे पूर्व जैनग्रन्थों में वर्णित 'कुलकर' और 'कालचक्र' की संक्षिप्त चर्चा करते हैं—

पुराणों की भांति (यथाकल्प में सर्ग, प्रतिसर्ग या कृतयुग, कलियुग) जैन ग्रन्थों में सृष्टिकाल को दो भागों में विभक्त किया है—(१) अवसर्पिणीकाल और (२) उत्सर्पिणीकाल। दोनों को पुनः उत्क्रम और व्युत्क्रम से छः भागों में विभक्त किया है—(१) सुषमा-सुषम (२) सुषम (३) सुषम दुषम (४) दुषम-सुषम (५) दुषम और (६) दुषमा-दुषम।[३७] दोनों मिलकर बीस कोटि-कोटि सागर वर्षों का होता है। यह कालगणना आधुनिक विद्वानों या इतिहासकारों की समझ से परे हैं। केवल पांचवा दुषम और छठा दुषम सुषम कालमान ऐतिहासिक हो सकता है—जो इक्कीस-इक्कीस हजार (कुल बयालीस हजार) वर्ष का होता है, इसका संकेत प्रसिद्ध ज्योतिषी आर्यभट ने भी किया है।[३८]

तीर्थंकरों की आयु—

विद्यमान जैनग्रन्थों में तीर्थंकरों का अन्तरकाल, आयु या राज्यकाल इतना दीर्घ बताया गया है कि उसका इतिहास में कोई उपयोग नहीं है, इसी प्रकार उनके शरीर का आकार (लम्बाई) उससे भी अधिक अविश्वसनीय है, उदाहरणार्थ ऋषभदेव का शरीरमान ५०० धनुष और २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का शरीरमान १० धनुष बताया गया है।

२४ तीर्थंकरों का आयुप्रमाण श्वेताम्बर और दिगम्बर संदर्भों में समान रूप से इस प्रकार बताया है—

क्रम सं०	तीर्थंकरनाम	आयुप्रमाण पूर्व या वर्ष
१.	ऋषभदेव	८४ लाख पूर्व
२.	अजितनाथ	७२ लाख पूर्व
३.	संभवनाथ	६० लाख पूर्व
४.	अभिनन्दन	५० लाख पूर्व
५.	सुमितनाथ	४० लाख पूर्व
६.	पद्मप्रभ	३० लाख पूर्व
७.	सुपार्श्वनाथ	२० लाख पूर्व
८.	चन्द्रप्रभ	१० लाख पूर्व
९.	सुविधिनाथ	२ लाख पूर्व
१०.	शीतलनाथ	१ लाख पूर्व
११.	श्रेयांसनाथ	८४ लाख वर्ष
१२.	वासुपूज्य	७२ लाख वर्ष
१३.	विमलनाथ	६० लाख वर्ष
१४.	अनन्तनाथ	३० लाख वर्ष
१५.	धर्मनाथ	१० लाख वर्ष
१६.	शान्तिनाथ	१ लाख वर्ष
१७.	कुंथुनाथ	९५ हजार वर्ष
१८.	अरनाथ	८४ हजार वर्ष
१९.	मल्लिनाथ	५५ हजार वर्ष
२०.	मुनिसुव्रत	३० हजार वर्ष
२१.	नमिनाथ	१० हजार वर्ष
२२.	अरिष्टनेमि	१ हजार वर्ष

२३. पार्श्वनाथ १०० वर्ष
२४. महावीर ७२ वर्ष

इनमें केवल पार्श्वनाथ और महावीर की आयु सत्य ऐतिहासिक तथ्य के रूप में वर्णित है क्रमशः १०० और ७२ वर्ष, शेष की आयुपरिमाण में कल्पना है, जिसे प्रत्येक विद्वान समझ सकता है। परन्तु २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि की आयु १००० वर्ष कथन से एक सूत्र हाथ लगता है, जिससे पूर्वोक्त २२ तीर्थंकरों की आयु का अनुमान लगाया जा सकता है। जब वासुदेव कृष्ण के नेतृत्व में जरासन्ध के भय से यादवों ने मथुरा से द्वारका की ओर प्रस्थान किया, तब कृष्ण की आयु लगभग बीस वर्ष की थी और उनकी कुल आयु १२५ वर्ष थी। यह तथ्य हमें इतिहासपुराणों से ज्ञात है। जैनग्रन्थों से ज्ञात होता है कि मथुरा से पलायन के समय अष्टिनेमि शिशु थे और उनकी आयु उस समय ४ वर्ष थी। जैनग्रन्थों में कृष्ण की आयु भी १००० वर्ष बताई गई है। अतः जैनग्रन्थों में कृष्ण और अरिष्टनेमि की आयु वास्तविक आयु से १० गुना बताई गई है, **तदनुसार अरिष्टनेमि की आयु १०० वर्ष या १२५ वर्ष ही थी**, । अरिष्टनेमि का कौमार्यजीवन ३०० वर्ष बताया गया है, निश्चय ही यह दश गुना अधिक है। पार्श्वनाथ और महावीर तथा अरिष्ट-नेमि—तीनों ही ३०-३० वर्ष की आयु में प्रव्रजित हुए। अतः अरिष्टनेमि की आयु कुल १०० या १२५ वर्ष सिद्ध होती है।

ऋषभदेव (१) से शीतलनाथ (१०) तक वर्ष को 'पूर्व' कहा गया है। जैनशास्त्रों के अनुसार 'पूर्व' कालमान असीमित होता है, परन्तु ऐतिहासिक कालगणना में वर्ष का पर्याय ही है।

आदिकाल में मनुष्य की दीर्घायु—

मैंने अपनी पुस्तक 'पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम' के पांचवें अध्याय 'दीर्घजीवीयुगप्रवर्तक महापुरुष' में आदिकाल में दीर्घजीवन पर विशद प्रकाश डाला है। उस काल में प्रजापतियों, ऋषियों और राजर्षियों की अत्यन्त दीर्घ आयु—लगभग हजारवर्षतक होती थी, यह तथ्य वैदिक प्रामाण्य के साथ सुमेरिया के पुरातत्व साक्ष्य, बैबीलन के बैरोसस, अवेस्ता और पुरानी बाइबिल के प्रामाण्य से पुष्ट होता है, ये प्रमाण और साक्ष्य मद्रचित पूर्वोक्त पुस्तक में द्रष्टव्य हैं। बाईबिल के साक्ष्य से प्रथम मानव-स्वायम्भुव मनु की आयु ९३० वर्ष और १३वें मनु वैवस्वत (१३००० वि० पू०) की आयु ९५० वर्ष थी। मनुस्मृति और महाभारतादि के साक्ष्य से

ज्ञात होता है कि कृतयुग और त्रेतायुग में सामान्य मनुष्य की आयु ४०० और ३०० वर्ष होती थी। परिणामतः उस समय राजाओं का राज्यकाल भी अधिक लम्बा होता था। इस कारण उत्तरकाल में, यथा बैबीलन में इतिहासकार बैरोसस (३०० वि०पू०), उत्तरकालीन वैदिक पुराणों, बौद्ध और जैनग्रन्थों में मनुष्य की आयु लाखों, किंवा करोड़ों वर्ष बताई जाने लगी, यहाँ तक कि अरबोंवर्ष, उदाहरणार्थ भागवतपुराण ने कल्पना की कि स्वायम्भुव प्रियव्रत ने ११ अरबवर्ष शासन किया और 'आदिदैत्यसम्राट् हिरण्यकशिपु ने एकअरब, बहत्तरलाख और अस्सीहजारवर्ष राज्य किया।[१]

अतः इस प्रकार के अतिशयोक्तिपूर्ण एवं काल्पनिक वर्णनों में कुछ भी ऐतिहासिकता नहीं है।

अतः ऐतिहासिकरूप से ऋषभादि तीर्थंकर दीर्घजीवी अवश्य थे, वर्तमान जैनग्रन्थों में उनकी आयु को युगानुसार १०, १०० और १००० गुना तक बढ़ाया गया है, अतः उनकी संभावित दीर्घायु इस प्रकार संभव है—

क्रम सं०	तीर्थंकर	आयुप्रमाण
१.	ऋषभदेव	८४० वर्ष
२.	अजितनाथ	७२० वर्ष
३.	संभवनाथ	६०० वर्ष
४.	अभिनन्दन	५०० वर्ष
५.	सुमितनाथ	४०० वर्ष
६.	पद्मप्रभ	३०० वर्ष
७.	सुपार्श्वनाथ	२०० वर्ष
८.	चन्द्रप्रभ	१०० वर्ष
९.	सुविधिनाथ	२०० वर्ष
१०.	शीतलनाथ	१०० वर्ष
११.	श्रेयाँसनाथ	८४ वर्ष
१२.	वासुपूज्य	७२ वर्ष
१३.	विमलनाथ	६० वर्ष
१४.	अनन्तनाथ	३०० वर्ष
१५.	धर्मनाथ	१०० वर्ष
१६.	शान्तिनाथ	१०० वर्ष

१७.	कुन्थुनाथ	६५ वर्ष
१८.	अरनाथ	८४ वर्ष
१९.	मल्लिनाथ	५५ वर्ष
२०.	मुनिसुव्रत	३०० वर्ष
२१.	नमिनाथ	१०० वर्ष
२२.	अरिष्टनेमि	१००/१२५ वर्ष
२३.	पार्श्वनाथ	१०० वर्ष
२४.	महावीर	७२ वर्ष

तीर्थंकरक्रम और अन्तराल—

विद्यमान जैनागमों या जैनपुराणों के अनुसार द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ, ऐक्ष्वाकसगर के समय (७००० वि०पू०) अब से लगभग ९००० वर्ष पूर्व था और ऋषभदेव **'ऐतिहासिकपरिवर्तयुगगणना'** के अनुसार अब से २९००० वर्ष पूर्व हुए—२७००० वि० पू०। महावीर का समय १७०० वि०पू० अर्थात् ३७०० वर्ष पूर्व, पार्श्वनाथ का समय अब से ४००० वर्ष पूर्व और अरिष्टनेमि का समय ५२०० वर्ष पूर्व था। अतः तीर्थंकरों में कोई एक निश्चित कालान्तर नहीं था, कहीं ढाईसौवर्ष, कहीं १००० वर्ष या अधिक भी था। अर्थात् कुल ५००० वर्ष (अजित से महावीरतक) में २३ तीर्थंकर हुए। लेकिन प्रथम तीर्थंकर ऋषभ और द्वितीय तीर्थंकर अजित में लगभग २०००० (बीस हजार) वर्षों का अन्तराल अबोध्यतुल्य है। अन्य तीर्थंकरों में २०० से १००० वर्ष तक का अन्तराल था, परन्तु प्रथम और द्वितीय तीर्थंकर का अन्तराल यदि बीससहस्रवर्ष था तो यह समझ में आनेवाली बात नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि विद्यमान जैनग्रन्थों में तीर्थंकरों का क्रम भी बदला गया है या भ्रम से व्युत्क्रम हुआ है। भागवतपुराण के निम्न उद्धरण से हमारे सन्देह की पुष्टि होती है, जहाँ 'सुमति' को द्वितीय तीर्थंकर बताया गया है, क्योंकि वे ऋषभ के पौत्र थे, यह सत्य प्रतीत होता है—

'भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित्पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति।' (भागवत ५/१५/१)='भरत के पुत्र सुमति को, कलियुग में कुछ पाखण्डी तीर्थंकर ऋषभ के मार्ग पर चलने वाला, जो वेदविरुद्धमत को माननेवाले अनार्य (जैनश्रमण) हैं, अपना देवता (तीर्थंकर) मानेंगे।'

अतः माथुरी और वल्लभीवाचना के समय जैनऐतिहासिकपरम्परा का बहुत कुछ विस्मरण हो गया था, उस समय अनेक अकालों के अन्तरायों से अनेक बार जैनशास्त्र छिन्न-भिन्न या नष्ट-भ्रष्ठ हुए, तब जैनसम्प्रदाय के विद्वान या यतिगण भिक्षुश्रमण शुंगकाल मौर्यकाल और महावीर की तिथि की सच्ची तिथियों को विस्मृति के गर्भ में डाल चुके थे—भूल गए, तब महावीर से भी दस और बीसहज़ारवर्ष पूर्व के तीर्थंकरों के क्रम को भूल जाना कोई असम्भव बात नहीं है। विद्यमान जैनग्रन्थों के अनुसार 'सुमति' पाँचवें तीर्थंकर हैं, परन्तु भागवतपुराण के अनुसार वे द्वितीय तीर्थंकर थे, क्योंकि सुमति भरत के पुत्र और ऋषभ के पौत्र थे, अतः यह बात तथ्य (सत्य) प्रतीत होती है।

१४ कुलकर = १४ मनु—

वैदिक पुराणों के वर्तमानपाठों में भी तथ्यों को बहुत कुछ उलटा-पलटा गया है, उदाहरणार्थ १४ मनुओं के क्रम और चतुर्युगगणना में बहुत सी भ्रान्तियाँ या कल्पनाएँ आ गयीं, जो इतिहास में बाधा उपस्थित करती हैं, इन दोनों मुख्य विषयों का मैंने अपनी क्रांतिकारी पुस्तक—'पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम' के तृतीय अध्याय—'भारतीय ऐतिहासिक कालमान तथा परिवर्तयुग' में विस्तार से विवेचन किया है; वहाँ १४ मनुओं का क्रम निश्चित किया गया है।

जैनग्रन्थों में १४ मनुओं को १४ कुलकर कहा गया है।

प्रारम्भिक महाभारतकालीन ऐतिहासिक कालगणना का मूलाधार परिवर्तयुग

प्राचीन इतिहास की अभूतपूर्व, अद्भुत, मौलिक और क्रान्तिकारी

निर्णायक खोज

तीनसौ साठ मानुष वर्षों का ऐतिहासिक परिवर्तयुग (दिव्यसंवत्सर) और चौदहमनुओं का कालक्रम—इतिहासपुराणों के पुरातनपाठों में स्वायम्भुवमनु से महाभारतयुद्धकालपर्यन्त की महत्वपूर्ण घटनाओं का उल्लेख 'परिवर्तयुग' या 'पर्याययुग'संज्ञक अतिविख्यात कालमान में किया जाता था। परन्तु, उत्तरकाल में इस कालमान किंवा युगमान का पुराणपाठों में, प्रायः लोप सा हो गया तथा 'दिव्यमानुषगणना' के सम्बन्ध में एक महती भ्रान्ति उत्पन्न हो गई, जिससे पुराणों में 'मन्वन्तरसम्बन्धी' ऐतिहासिकगणना पूर्णतः गड़बड़ा गई। ऐसी स्थिति में पाश्चात्य षड्यन्त्र से अभिभूत भारत में पाश्चात्य मिथ्या-

भिमानी और सच्चे इतिहासकार भी पुराणों के आधार पर प्राचीन (प्राङ्महाभारतकालीन) कालक्रम पर यथार्थ प्रकाश नहीं डाल सके और अनेक विद्वान युगों की मनमानी व्याख्या करते रहे, यथा डा० त्रिवेद ने २८ परिवर्तयुगों को ६० वर्ष का मानकर मनमानी व्याख्या की। श्री डी० आर० मनकड़ ने चतुर्युग में प्रत्येक (कृतत्रेतादि) को एक सहस्रवर्ष का माना। परन्तु, इन व्याख्याओं से कोई गुत्थी सुलझी नहीं। सत्य यह है कि इतिहास में कल्पना या मिथ्याकल्पना से कोई समस्या हल नहीं होती। 'इतिहास' सम्पूर्ण पद की व्याख्या है। 'इति हैवमासीदिति कथ्यते स इतिहासः' 'जो सत्य घटनाक्रम वास्तव में हुआ था, 'वही इतिहास है, शेष कल्पना…अनितिहास…मिथ्या होती है।

इन पंक्तियों के लेखक ने, किसी दिव्यशक्ति की कृपा से सत्य का वरण किया और प्राचीनपुराणपाठों के घोर अन्धकार में से 'परिवर्तयुग' का कालमान प्रकाशित किया है, जिसमें स्वायम्भुवमनु से वासुदेवकृष्णपर्यन्त महापुरुषों की तिथियां यथार्थरूप से निश्चित की जा सकती हैं। 'परिवर्तयुग' की कालगणना के रहस्योद्घाटन से पूर्व, इस सम्बन्ध में देशी-विदेशी कुछ अन्वेषकों की विवशता, इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य है—

सर्वप्रथम, इस सम्बन्ध में, विख्यात पाश्चात्य पुराण अनुसंधाता पार्जीटर का मत आलोच्य है, क्योंकि पार्जीटर के कोई पूर्वाग्रह नहीं थे, वह स्वबुद्धि से सत्य की खोज करना चाहता था, संभवतः इसीलिए वह कीथादि की भांति मैकालेषड्यन्त्र में सम्मिलित नहीं था, अतः वह, प्राचीनभारतीय इतिहास के सम्बन्ध में पुराणों के आधार पर कुछ सच्ची खोजें कर सका, तथापि विदेशी होने के कारण तथा युगप्रभाव के कारण, वह, पुराणोल्लिखित यथार्थ ऐतिहासिक कालगणना को नहीं समझ सका। २८ परिवर्तयुगों के सम्बन्ध में निम्न उद्धरण से पार्जीटर की अशक्ति और अज्ञान प्रकट होता है—

"It is unnecessary here to pursue this matter into the later fully developed theory of the yugas and Manvantaras, wherein 71 four age periods (chaturyugas) made up a Manvantara. It was a fenciful Brahmanical elaboration, and one feature in it is that the present time is the Kaliage is 28th fourage period of the Vaivasvata Manvantara, so the events of traditional history were sometimes distributed among those 28 periods. Thus a pretentious passage declares—Datta Atreya as Vishnu's fourth

incarnation and Markandeya lived in the tenth Tretayuga (i.e. in the Treta age of the 10th four age period). Mandhata, as his fifth incarnation and Utathya lived in the 15th Treta, Rama Jamadagnya, as his sixth and Vishvamitra lived in the 19th Treta. Dasaratha's son Rama, as his seventh and Vasudeva lived in the 28th age, Vyasa as his eighth with Jatukarnya, and Krisna as his ninth with Brahmagargya lived in the 28th Dwapara Such assignments sometimes observe some chronological consistency, often, they are erratic and in any case, being Brahmanical notions lacking the historical sense, as they are unreliable." (Ancient Indian Historical Tradition, p. 179).

पार्जीटर, इस सम्बन्ध में न तो सत्य को समझना चाहता था और न ही उसमें यह समझने की शक्ति थी, अतः उसकी आलोचना करना निरर्थक ही होगा। जबकि महान् वैदिक अनुसंधाता और सच्चे भारतीय इतिहासज्ञ पं० भगवद्दत्त कथित त्रेता (परिवर्त) युग सम्बन्धी अंश को नहीं समझ सके, जैसाकि उन्होंने स्वयं ही लिखा है—'वायुपुराण के बहुत से त्रेता एक त्रेता के अवान्तर विभाग हैं। वायु के अनुसार आद्यत्रेता से लेकर चौबीसवें त्रेता तक निम्नलिखित व्यक्ति हुए—

दक्ष प्रजापति	—	आद्य त्रेतायुग में
बारह देव (आदित्य)	—	आद्य त्रेतायुग में
करन्धम	—	त्रेतायुगमुख में
आवीक्षित मरुत्त	—	त्रेतायुगमुख में
तृणबिन्दु	—	तृतीय त्रेतायुग में
दत्तात्रेय	—	दशम त्रेतायुग में
मान्धाता	—	पन्द्रहवें त्रेतायुग में
जामदग्न्य राम	—	उन्नीसवां त्रेतायुग में
दाशरथि राम	—	चौबीसवें त्रेतायुग में

कालक्रम की दृष्टि से ये लोग थोड़े-थोड़े अन्तर पर, एक दूसरे के पश्चात् हुये। यदि ये पृथक्-पृथक् चतुर्युगों के पृथक्-पृथक् त्रेता में होते तो इनके मध्य में द्वापर, कलि और सत्ययुग के अन्य महापुरुष अवश्य गिने जाते। पर ऐसा किया नहीं गया। अतः वायु के अनेक एक त्रेता के अवान्तरविभाग हैं। यदि इन अवान्तर त्रेताओं की अवधि तथा आदियुग, देवयुग और त्रेतायुग आदि की अवधि जान ली जाये, तो भारतीय इतिहास का सारा कालक्रम

शीघ्र निश्चित हो सकता है । हम अभी तक इस बात को पूर्णतया जान नहीं पाए, (भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भा० १ पृ० १५९)

पं० भगवद्दत्त ने अन्यत्र सहस्रबाहु अर्जुन के सम्बन्ध में लिखा—'सहस्र-बाहु अर्जुन की मृत्यु जामदग्न्य राम के हाथों हुई । पुराणों के अनुसार जाम-दग्न्य राम त्रेता-द्वापर की सन्धि और उन्नीसवें त्रेता में हुआ । इन कथनों से प्रतीत होता है कि पुराणों में एक ही त्रेता के अनेक अवान्तरविभाग किए गए हैं । बहुत संभव है त्रेता तीन सहस्रवर्ष का हो और पुराणों ने उसका १२५ वर्ष का एक अवान्तर त्रेता माना हो' (भा० इ० भा० २, पृ० १०४).

पं० भगवद्दत्त की यह पूर्णतः भ्रान्ति है कि किसी त्रेतायुग के अनेक पुराणों के उत्तरकालीन भ्रष्टपाठों से ही उत्पन्न हुई है ।

पुराणों में युगगणनासम्बन्धी महती भ्रान्ति-भ्रष्टपाठ

यद्यपि, पार्जीटर २८ युगसम्बन्धी अंश की सही व्याख्या नहीं समझ पाया, परन्तु युग और मन्वन्तरसम्बन्धीगणना के सम्बन्ध में उसका यह कथन पूर्ण सत्य है—

"It is unnecessary here to pursue this matter into latter fully developed theory of the Yugas and Manvantaras, wherein 71 four age periods (Chaturyugas) made up a Manvantara. (p. 179).

युगगणनासम्बन्धी भ्रान्ति के दो मूल कारण

प्राचीनमूलपुराणपाठों में स्वायम्भुवमनु के ७१ परिवर्तयुगों और वैव-स्वत-मनु के २८ परिवर्तयुगों का उल्लेख पूर्ण सत्य कथन था । ये दोनों अंक इस प्रकार के हैं कि वे मिथ्या कल्पना नहीं हो सकते, परन्तु उत्तरकालीन पुराण प्रक्षेपकार और लिपिकर्ता 'परिवर्तयुग' के अर्थ और कालमान को भूल गये, अतः उन्होंने इस 'परिवर्तयुग' को मुख्यतः चतुर्युग समझ लिया, कहीं-कहीं वर्तमान पुराणपाठों में इसी परिवर्तयुग को त्रेता, द्वापर और कलियुग भी लिख मारा है । यही पुराणपाठत्रुटि पं० भगवद्दत्त की भ्रान्ति का कारण है तथा इसी त्रुटि से वर्तमान पुराणपाठों में 'मन्वन्तर' आदि का 'अयथार्थ कालमान' गढ़ा गया, जिसका इतिहास या सत्य से कोई सम्बन्ध नहीं ।

परिवर्तयुग के भ्रामकपाठों के उदाहरण

परिवर्तयुग का भ्रान्तनाम द्वापर

व्यासपरम्परा के सम्बन्ध में पुराणों में यह नाम बहुधा दुहराया गया है,

क्योंकि अन्तिम व्यास-कृष्णद्वैपायन ऐतिहासिक द्वापर के अन्त में हुये, अतः पूर्वव्यासों को भी द्वापरयुग में रख दिया गया—

अष्टाविंशतिकृत्वो वै वेदा व्यस्ता महर्षिभिः ।
वैवस्वतेऽन्तरे तस्मिन् द्वापरेषु पुनः पुनः ।।
द्वापरे प्रथमे व्यस्तास्स्वयं वेदाः स्वयम्भुवा ।
द्वितीये द्वापरे चैव वेदव्यासः प्रजापतिः ।।
(विष्णु० ३/३/६-१२)

इस पाठ की निरर्थकता इसी तथ्य से स्पष्ट है कि स्वयम्भू ब्रह्मा और प्रजापति कश्यप किसी द्वापरयुग में हुए ही नहीं, पुराणज्ञ इस बात को भलीभांति समझते हैं ।

परिवर्त का त्रेता नाम (भ्रामक)

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमेयुगे ।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ।।
त्रेतायुगे तु दशमे दत्तात्रेयो बभूव ह ।।
एकोनविंशे त्रेतायां सर्वक्षान्तकोऽभवत् ।
जामदग्न्यस्तथा षष्ठो विश्वामित्रपुरस्सरः ।।
चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।
अष्टमे द्वापरे विष्णुरष्टाविंशे पराशरात् ।।
(वायुपुराण)

अन्तिम श्लोक में अट्ठाइसवें परिवर्तयुग को पुनः भ्रमवश 'द्वापर' कहा गया है ।

युगनामभ्रान्ति के द्वितीय कारण के कथन से पूर्व परिवर्तयुगसम्बन्धी भ्रान्ति के एक तृतीय कारण का भी संकेत करेंगे । यह तृतीय कारण था कि महाभारतकाल से लगभग एक सहस्रवर्ष पूर्व चतुर्युगगणना प्रचलित हो गई थी । उत्तरकाल में 'परिवर्तयुग' के ३६० मानुषवर्षों को देवताओं का एक वर्ष मानकर तथा उसकी संज्ञा 'दिव्यसंवत्सर=(सौरसंवत्सर) होने से एक महती भ्रान्ति को जन्म दिया और 'परिवर्तयुग' का ऐतिहासिकमान प्रायः विस्मृत हो गया तथा चतुर्युग में ३६० का गुणा किया जाने लगा, जिससे चतुर्युग और परिवर्तयुग दोनों की ऐतिहासिकता नष्ट हो गई और ७१ परिवर्तयुग के अंक को किस प्रकार चतुर्युग और स्वायम्भुव मनु के साथ जोड़ दिया गया, यह आगे स्पष्ट करेंगे ।

परिवर्तयुग का भ्रामकनाम चतुर्युग

निम्न श्लोक में परिवर्तयुग का अधूरा नाम प्रयुक्त हुआ है—

चतुर्विंशे युग रामो वसिष्ठेन पुरोधसा ।

शनैः शनैः विस्मृति के कारण युग=(परिवर्तयुग) को चतुर्युग समझ लिया गया । उदाहरणार्थ मरुत्त आवीक्षित, वैवस्वतमनु से एकादश परिवर्त-युग पश्चात् (३६०-११=३९६० वर्ष) हुये, परन्तु वर्तमान पुराणपाठ में उसे एकादश चतुर्युग का एकादश द्वापर बना दिया गया—

चतुर्युगे त्वतिक्रान्ते मनोर्ह्येकादशे प्रभोः ।
अथावशिष्टे तस्मिंस्तु द्वापरे संप्रवर्तिते ।
मरुत्तस्य नरिष्यन्तस्तस्य पुत्रो दमः किल ।।

(ब्रह्माण्ड०)

जब यह भ्रान्ति दृढ़ हो गयी तब चतुर्युग के १२००० वर्षों में परिवर्तयुग के ३६० वर्षों को दिव्यवर्ष मानकर उनमें परस्पर गुणा किया जाने लगा । मानुष(सौर)वर्ष को मूलपुराणपाठों में 'दिव्यवर्ष' और परिवर्तयुग को 'दिव्यसंवत्सरयुग' भी कहा गया था । परन्तु 'परिवर्तयुग' पाठ का उत्तरकाल में प्रायः लोप हो गया और 'दिव्यसंवत्सरयुग' (जो ३६० मानुषवर्षों का था), उसे 'दिव्यवर्ष' मान लिया गया । पुराण के निम्नपाठ में मूलतः दिव्य-संवत्सरयुग (=परिवर्तयुग=३६० मानुषवर्ष) का स्पष्ट उल्लेख था—

त्रीणि वर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि च ।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।। (ब्रह्माण्ड० १/७/१६)

यहां निश्चय ही 'दिव्यसंवत्सरयुग' का उल्लेख है, जैसाकि सप्तर्षियुग को 'सप्तर्षिवत्सर' और उसके 'मानुषवर्षों' को 'दिव्यवर्ष' भी कहा गया है—

सप्तर्षीणां युगंह्येतद्दिव्यया संख्यया स्मृतम् ।।

(वायु० ९९/४/९)

त्रीणि वर्षसहस्राणि मानुषेण प्रमाणतः ।
त्रिंशत्यानि तु मे मतः सप्तर्षिवत्सरः ।। (ब्रह्माण्ड०)

अतः इस प्रसंग=ऐतिहासिकगणनासन्दर्भ में युग और संवत्सर तथा 'मानुष' और 'दिव्य' शब्द समानार्थक है, परन्तु उनको भिन्नार्थक समझने से ही भ्रान्ति उत्पन्न हुई ।

प्राचीन पुराणपाठों में छः प्रकार के प्रकाश (दिव्य) युगों का वर्णन था—

१. पंचसंवत्सरात्मक युग = पंचवत्सर = ५ वर्ष ।
२. षष्टिवत्सर = बार्हस्पत्ययुग = ६० वर्ष ।
३. परिवर्तयुग = दिव्यसंवत्सर = ३६० वर्ष ।
४. सप्तर्षियुग = सप्तर्षिवत्सर = २७०० या ३०३० वर्ष ।
५. ध्रुवयुग = ध्रुवसंवत्सर = ९०९० वर्ष ।
६. चतुर्युगसंवत्सर = देवयुग = १२०० मानुषवर्ष ।

स्पष्ट है युग और संवत्सर शब्द समानार्थक थे, अतः इसी भ्रान्ति से चतुर्युग के १२००० मानुषवर्ष दिव्यवर्ष माने जाने लगे और उनमें ३६० (वर्ष) का गुणा किया जाने लगा, तब १२००० मानुषवर्षों के चतुर्युग को ४३ लाख २० सहस्र वर्षों का 'काल्पनिकयुग' बना दिया गया । पुनः मन्वन्तर को ७१ 'चतुर्युग' का क्यों माना जाने लगा, यह आगे स्पष्ट करेंगे ।

'परिवर्तयुग' का भ्रामकनाम 'कलियुग'

वाक्य में अधूरे प्रयुक्तनाम से किस प्रकार भ्रान्तियां उत्पन्न होती हैं, इसका सर्वोत्तम उदाहरण 'परिवर्त' शब्द है । पुराणों के ही उत्तरकालीन प्रतिलिपिकर्ताओं ने उसे 'कलियुग' भी बना दिया—

तदाऽऽप्यहं भविष्यामि गंगाद्वारे कलेर्धुरि ।
ततोऽप्यहं भविष्यामि अत्रिर्नाम युगान्तिके ।।
(वायु० २३/१४४)

वायुपुराण के महेश्वरावतारयोगसंज्ञक २३वें अध्याय में प्रमुखरूप से २८ वेदव्यासों, और उनके शिष्यों का उल्लेख है । वहां पर 'मूलपरिवर्तयुग' शब्द को उत्तरकालीन वर्तमानपाठों में भ्रान्तिवश, 'कलि' 'द्वापर' 'त्रेता' और 'चतुर्युग' बना दिया है, तथापि मूलपाठ 'परिवर्तयुग' या 'पर्याययुग' ही अधिक सुरक्षित रह गया है—

ततस्तस्मिंस्तदा कल्पे वाराहे सप्तमे प्रभोः ।
मनुर्वैवस्वतो नाम तव पुत्रो भविष्यति ।।
तृतीये द्वापरे चैव यदा व्यासस्तु भार्गवः ।
चतुर्थे द्वापरे चैव यदा व्यासोऽङ्गिराः स्मृतः ।।
पंचमे द्वापरे चैव व्यासस्तु सविता यदा ।
परिवर्ते पुनः षष्ठे मृत्युर्व्यासो यदा प्रभुः ।।
सप्तमे परिवर्ते तु यदा व्यासः शतक्रतुः ।
तदाऽप्यहं भविष्यामि कलौतस्मिन् युगान्तिके ।।

जैगीषव्येति विख्यातः सर्वेषां योगिनां वरः ।
वसिष्ठश्चाष्टमे व्यासः परिवर्ते भविष्यति ।।
परिवर्तेऽथ नवमे व्यासः सारस्वतो यदा ।
दशमे द्वापरे व्यासस्त्रिधामा नाम नामतः ।।
ततोऽप्यहं भविष्यामि, अत्रिर्नाम युगान्तिके ।
त्रयोदशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमेण तु ।।
धर्मो नारायणो नाम व्यासस्तु भविता यदा ।
सुरक्षणो यदा व्यासः पर्याये तु चतुर्दशे ।।
तत्रापि मम ते पुत्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ।
ततः सप्तदशे चैव परिवर्ते क्रमागते ।।
तदा भविष्यति व्यासो नाम्ना देवकृतंजयः ।
ततस्त्वेकोनविंशे तु परिवर्ते क्रमागते ।।
व्यासस्तु भविता नाम्ना भरद्वाजो महामुनिः ।
परिवर्ते तुत्रयोविंशे तृणबिन्दुर्यदा मुनिः ।।
व्यासो भविष्यति ब्रह्मा तदाऽहं भविता पुनः ।
परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति ।।
तदाऽहं भविता ब्रह्मा कलौ तस्मिन् युगान्तिके ।
पंचविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते यथाक्रमम् ।।
वासिष्ठस्तु यदा व्यासः शक्तिर्नाम भविष्यति ।
षड्विंशे परिवर्ते तु यदा व्यासः पराशरः ।।
सप्तविंशतितमे प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते ।
जातूकर्ण्यो यदा व्यासो भविष्यति तपोधनः ।।
अष्टाविंशे पुनः प्राप्ते परिवर्ते क्रमागते ।
यदा भविष्यति व्यासो नाम्ना द्वैपायनः प्रभुः ।।

उपर्युक्त वायुपुराणपाठ में मूलपाठ पर्याप्त सुरक्षित है । ऐतिहासिक तथ्य प्रकट है कि क्रमशः प्रत्येक 'परिवर्तयुग' में एक 'व्यास' का प्रादुर्भाव हुआ, वही व्यास अपने-अपने युग का 'राष्ट्रकवि' या महर्षि था । मूलयुग का नाम 'परिवर्तयुग' ही था । शनैः शनैः पाठभ्रंशता उत्पन्न होने लगी और 'परिवर्त-युग' की संज्ञा कहीं 'द्वापर' कहीं 'कलि' और कहीं 'त्रेता' तथा 'चतुर्युग' बना दी गयी । जब 'परिवर्तयुग' को 'चतुर्युग' बना दिया गया, तो समस्त ऐति-हासिक गणना काल्पनिक बन गई ।

उपर्युक्त वायुपुराण सन्दर्भ से स्पष्ट है कि परम्परव्यासों में लाखों या करोड़ों वर्षों का अन्तर नहीं था, न ही उनके मध्य में कोई कृतयुग, त्रेता या द्वापर या कलियुग थे। प्रत्येक 'व्यास' अपने 'पूर्वव्यास' का शिष्य था। निश्चय ही उनकी आयु दीर्घ थी—अनेक शताब्दियों, वह आयु लाखों या करोड़ोंवर्षों की नहीं थी। उदाहरणार्थ चतुर्थव्यास बृहस्पति आंगिरस, तृतीयव्यास उशना, भार्गव (शुक्राचार्य) के शिष्य थे। पंचम व्यास-विवस्वान्, चतुर्थ व्यास बृहस्पति के शिष्य थे। षष्ठ व्यास वैवस्वत यम-अपने पिता विवस्वान् पंचम व्यास के शिष्य थे। सप्तम व्यास शतक्रतुइन्द्र, षष्ठ व्यास वैवस्वतयम के शिष्य थे। यही परम्परा २८ युग (परिवर्तयुग) पर्यन्त कृष्ण-द्वैपायन व्यास तक चलती रही और व्यास पीढ़ीदर पीढ़ी होते रहे। अतः गुरुशिष्य या पिता-पुत्र में चतुर्युग (१२००० वर्ष या ४३२०००० वर्षों) का अन्तर मानना कितनी भ्रष्ट, धृष्ट एवं असत्य कल्पना है, इसको कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति सोच सकता है।

अतः प्रत्येक व्यास एक परिवर्तयुग (३६० मानुषवर्ष) में हुआ न कि चतुर्युग में, जैसी कि वर्तमान पुराणपाठों से मिथ्या धारणा बनती है। प्रजापति कश्यप या उनके पौत्र वैवस्वतमनु से पाराशर्य व्यास तक २८ परिवर्तयुग (३६०=२८=१००८० वर्ष) व्यतीत हुये।

एक सप्ततिपरिवर्तयुग और स्वायम्भुव मनु और ऋषभ (तिथि) का समय परिवर्त या परिवृत्त ? (पाठत्रुटि)

यह परिवर्तयुगगणना स्वायम्भुव मनु से आरम्भ हुई थी, न कि वैवस्वत-मनु से। यह ध्यातव्य है कि मूलपाठ 'परिवर्त' था, उसको उत्तरकाल में 'परिवृत्त' बना दिया गया, यथा, पुराणपाठ द्रष्टव्य है—

स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते॥ (ब्रह्माण्ड० १/२/९)

यह मूलपाठ सही माना जा सकता है, परन्तु "परिवर्तयुग" को केवल 'युग' कह देने से अन्य पाठों में उसे चतुर्युग बना दिया गया—

एषां चतुर्युगानां तु गणना ह्येकसप्ततिः। (वायु० ५८/११५)

इस श्लोक के साथ (वर्तमानपाठों में) 'परिवर्त' का अशुद्ध पाठ 'परिवृत' भी मिलता है—

क्रमेण परिवृत्तास्तु मनोरन्तरमुच्यते॥ (वायु० ५८/११५)

परिवृत्ते युगस्तस्मिंस्ततस्ताभिः प्रणश्यति ।।
एषां चतुर्युगानां च गुणिता ह्येकसप्ततिः ।
क्रमेण परिवृत्तास्तु मनोरन्तरमुच्यते ।। (ब्रह्माण्ड० १/२/३२/११६)

लेकिन मूलपाठ 'परिवर्त' ही था, इनके साथ (आगे के) श्लोकों से भी यह सिद्ध है—

यथा युगानां परिवर्तनानि ।
चिरप्रवृत्तानि युगस्वभावात् ।।
तथा न संतिष्ठति जीवलोकः ।
क्षयोदयाभ्यां परिवर्तमानः ।। (ब्रह्माण्ड० १/२/३२/१२०)

सभी प्रकार विचार करने से स्पष्ट और सिद्ध होता है कि मूलपाठ 'एकसप्ततिपरिवर्तयुग' ही था, उसको पूर्वोक्त कारणों, भ्रमों से 'एकसप्तति-चतुर्युग' कल्पित किया गया । निश्चय ही स्वायम्भुवमनु से पाराशर्य व्यास-पर्यन्त ७१ परियुग (३६०×७१=२५५६०) या छब्बीस सहस्र मानुषवर्ष व्यतीत हुए थे, यह अंक ब्रह्माण्डपुराण (१/२/२९/१९) के निम्नपाठ में सुरक्षित रह गया है—

"षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु ।।"

प्राचीनमूलपुराणपाठों में ऐतिहासिकगणना मानुषवर्षों में ही थी, जैसा कि वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण में 'मानुषवर्ष' शब्द को बारम्बार दुहराया गया है ।

ब्रह्माण्डपुराण (१/२/३५/७३) के अनुसार स्वायम्भुवमनु से भगवान् प्रभु कृष्णद्वैपायनव्यासपर्यन्त ७१ परिवर्तयुग व्यतीत हुए थे । वैवस्वतमनु से पाराशर्यव्यास तक २८ परिवर्तयुग व्यतीत हुये थे और स्वायम्भुवमनु तथा वैवस्वत मनु में ४३ परिवर्तयुगों का अन्तर था अर्थात् लगभग सोलह सहस्र-वर्ष । अतः स्वायम्भुवमनु अब से लगभग ३१ या ३२ सहस्रवर्षपूर्व हुये । पुरानी बाईबिल में उल्लिखित स्वायम्भुव मनु (आत्मभू=आदम) और मनु-वैवस्वत (नूह) की आयु सत्य प्रतीत होती है, तदनुसार आदम ९३० वर्ष जीवित रहा—And all the days that Adam lived were nine hundred and thirty years.

(Holy Bible. p. 9)

अष्टाविंशयुगाख्यास्तु गता वैवस्वतेऽन्तरे ।

(वायुपुराण ३७/४५३)

अन्य प्रमाणों से भी ज्ञात होता है कि नहुष (जो मनु की पांचवी पीढ़ी में हुआ) से युधिष्ठिरपर्यन्त केवल दशसहस्रवर्ष व्यतीत हुये थे—

दशवर्षसहस्राणि सर्परूपधरो महान्।
विचरिष्यसि पूर्णेषु पुनः स्वर्गमवाप्स्यसि ।।

(उद्योगपर्व १७/१५)

अतः चतुर्युग केवल १२००० (द्वादशसहस्र) मानुषवर्षों के थे। चतुर्युग का प्राचीनतम उल्लेख अथर्ववेद में मिलता है—

'शतं तेऽयुतं हायनान् द्वे युगे
त्रीणि चत्वारि कृण्मः। (८/२/२१)

मूल में चतुर्युग १०००० (दशसहस्र) वर्ष के ही थे, परन्तु उत्तरकाल में उनमें सन्धिकाल (२००० वर्ष) जोड़कर उन्हें १२००० वर्षों का माना जाने लगा—

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां च कृतंयुगम्।
तस्य तावच्छती संध्या संध्यांशं संध्यासमः।
इतरेषु संसध्येषु ससंध्यांशेषु च त्रिषु।
एकापायेन वर्तन्ते सहस्राणि शतानि च।
तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
अत्र संवत्सराः सृष्टा मानुषेण प्रमाणतः ।।

(ब्रह्माण्ड० १/२/२९/२०-३०)

चत्वार्याहुः सहस्राणि वर्षाणां तत्कृतं युगम्।
तथा त्रीणि सहस्राणि त्रेतायां मनुजाधिप।
द्विसहस्रं द्वापरे तु शतं तिष्ठति सम्प्रति ।।

(भीष्मपर्व)

ब्रह्माण्डपुराण के वर्तमानपाठ में भी चतुर्युग के द्वादशसहस्रवर्षों को स्पष्ट ही मानुषवर्ष कहा गया है—

तेषां द्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता।
कृतं त्रेता द्वापरं च कलिश्चैव चतुष्टयम्।
अत्र संवत्सराः सृष्टा 'मानुषेण' प्रमाणतः ।।

(ब्रह्माण्ड० १/२/२९/१८)

चतुर्युग के द्वादशसहस्रवर्ष मानुष्वर्ष ही थे, इसका अकाट्य प्रमाण है, वायुपुराण का वह उल्लेख, जिसमें कहा गया है कि जिस प्रकार वेद चतुष्पाद है, युग चतुष्पाद है, उसी प्रकार पुराण चतुष्पाद है तथा पुराण (वायुपुराण) में १२००० श्लोक हैं उसी प्रकार चतुष्पादयुग में १२००० मानुषवर्ष होते हैं—

एवं द्वादशसाहस्रं पुराणं कवयो विदुः।
यथा वेदश्चतुष्पादश्चतुष्पादं यथा युगम्।
चतुष्पादं पुराणं तु ब्रह्मणा विहितं पुरा।।

ऋग्वेद में प्रजापति (कश्यप) रचित द्वादशसहस्त्र ऋचाएँ थीं तथा अग्निचयन अतियज्ञ में इतनी ही इष्टकाएँ रखी जाती थीं—

द्वादश बृहतीसहस्राणि एतावत्यो ह्यर्चा याः
प्रजापतिसृष्टाः। (शतपथब्राह्मण १०/४/२/२३)

प्राचीन यूनानी इतिहासकार हैरोडोट्स ने भी लिखा है कि मिस्री इतिहास के अनुसार मनु से सैथोस (हैरोडोटसकालिक) तक केवल ११३९० वर्ष व्यतीत हुए थे—

The priests told Herodotus that there had been 391 generations both of kings and High priests from Manos to Sethos and this he calculates at 11390 years. (The Ancient History of East by P. Smith, p. 59).

अतः लोकमान्य तिलक ने ठीक ही लिखा है—"In other works, Manu and Vyasa, obviously speak of a period of 10000 or including the Sandhyas of 12000 ordinary or human (not divine) years; from the beginning of Krita to the end of Kaliage. and it is remarkable that in the Atharvaveda, we should find a period of 10000 years apparently assigned to one Yuga (The Arctic Home in the Vedas. p. 350).

पारसीपरम्परा में भी चारयुग बारहसहस्त्रवर्ष के ही मान्य थे।

मैक्सिको की प्राचीन मयसभ्यता में प्रथमयुग (कृतयुग) ४८०० वर्षों का माना जाता था।

वैवस्वतमनु का समय

परिवर्तयुगगणना से वैवस्वतमनु का समय आज से लगभग १५ हजार वर्षपूर्व और महाभारतयुद्धकाल से दशसहस्र वर्षपूर्व निश्चित होता है। (परिवर्तयुग ३६० × २८ = १००८० वर्ष) अतः परिवर्तयुगगणना तथा चतुर्युग-गणना में पूर्ण सामंजस्य बैठ जाता है।

प्राचीनघटनाक्रम-परिवर्तयुग में उल्लिखित

पुरातन मौलिकपुराणों में प्राचीनतम (प्राङ्महाभारतीय) घटनाक्रम परिवर्तयुग में ही उल्लिखित होता था। इस समय केवल वायुपुराण और ब्रह्माण्डपुराण के प्राचीनअंशों में, केवल निदर्शनरूप में ही परिवर्तयुगों का उल्लेख अवशिष्ट रह गया है। इनमें सर्वाधिक विस्तृत निदर्शन वायुपुराण २३वें अध्याय में है, जहाँ माहेश्वरावतारयोग के सन्दर्भ में व्यासपरम्परा का वर्णन है और २८ परिवर्तयुगों के कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नाम उल्लिखित हैं। अन्यत्र, ब्रह्माण्डपुराण के निदर्शन द्रष्टव्य हैं यथा हिरण्यकशिपु आदिदैत्य सम्राट का नृसिंह द्वारा वध चतुर्थयुग (परिवर्तयुग) में हुआ—

चतुर्थ्यां तु युगाख्यामापन्नेषु सुरेष्वथ।
संभूतः स समुद्रान्ते हिरण्यकशिपोर्वधे॥

(ब्रह्माण्ड० २/३/७३/७३)

चरकसंहिता के अनुसार प्रजापति दक्ष और भद्र का संघर्ष द्वितीय परिवर्तयुग में हुआ था—

द्वितीये हि युगे शर्वमक्रोधमास्थितम्।
पश्यन् समर्थश्चोपेक्षां चक्रे दक्षः प्रजापतिः॥

(च० सं० ३/१५, १६)

पुराणों के अनुसार दैत्यासुरों का साम्राज्य एवं प्रभाव दशयुग (परिवर्तयुग) पर्यन्त (३६० × १० = ३६०० = १४००० वि० पू० से १०४०० विक्रमपूर्व तक) रहा—

युगाख्या दश सम्पूर्णा ह्यासीदव्याहतं जगत्।
दैत्यसंस्थमिदं सर्वमासीद् दशयुगं किल।
अशपत्तु ततः शक्रो राष्ट्रं दशयुगं पुनः॥
युगाख्या दश सम्पूर्णा देवानाक्रम्य मूर्धनि॥

(ब्रह्माण्डपुराण)

असुरसाम्राज्य वृषपर्वादानवेन्द्र के समय तक प्रायः अक्षुण्ण रहा, जब इन्द्र ने अपनी पुत्री जयन्ती का विवाह वृद्ध आचार्य शुक्र उशना (असुर-पुरोहित) से कर दिया। जयन्ती की पुत्री देवयानी का विवाह ययाति नाहुष के साथ हुआ और वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा भी ययाति की पत्नी थी। यह समय महाभारतकाल से लगभग नौ सहस्रवर्षपूर्व (या १२००० विक्रमपूर्व) था, यद्यपि इन्द्र का प्रभाव इससे एक युग पूर्व-सातवें परिवर्तयुग में बढ़ चुका था—

बलिसंस्थेषु लोकेषु त्रेतायां सप्तमे युगे।
दैत्यैस्त्रैलोक्याक्रान्ते तृतीयो वामनोऽभवत् ॥

(वायुपुराण)

इसी प्रकार पुराणों में दत्तात्रेय का समय दशमपरिवर्त में, मान्धाता का पन्द्रहवें परिवर्त में, परशुराम का उन्नीसवें परिवर्त में, दाशरथिराम का चौबीसवें परिवर्त में और कृष्णवासुदेव का अट्ठाइसवें परिवर्त में निर्दिष्ट है।

अतः 'परिवर्तयुग' की खोज प्राचीन इतिहास की अतिमहत्वपूर्ण मौलिक खोज है, जिससे महाभारतपूर्व के महापुरुषों का समय सरलता से निश्चित किया जा सकता है।

अतः पुराणों में १४ मनुओं के इतिहास का सार निम्न तालिका से प्रकट होगा—

क्रम सं०	मनु	सप्तर्षिगण	पुत्रगण	इन्द्र, देवगण	समय तिथि
१.	स्वायम्भुव मनु	मरीचि, अत्रि अंगिरा, पुलह क्रतु, पुलस्त्य और वसिष्ठ	आग्नीध्र अग्निबाहु मेधा, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य और सवन	यामा देवगण	३०००० वि०पू०

२.	स्वारोचिष मनु	और्व वासिष्ठ, स्तम्भ काश्यप, प्राण भार्गव ऋषभ अंगिरा दत्त पौलस्त्य निश्चल आत्रेय अर्वरीयान्- पौलह ।	चैत्र, किंपुरुष कृतान्त, विभूत रवि, नव, सेतु बृहदुक्थ, और ऋतु	तुषित पारावत वासिष्ठसंज्ञक देवगण इन्द्र विपश्चिद्	२९००० वि०पू०
३.	उत्तममनु (औत्तमि)	हिरण्यगर्भ वासिष्ठ के सात पुत्र सप्तर्षि,	इष, ऊर्ज, तनूज, मधु माधव, शुचिल शुक्र, सह, नभस्य, नभ	देवों के पंचगण सुधर्मा, प्रतर्दन शिव, सत्य और सुकर्मा इन्द्र-सुशान्ति	२९००० वि० पू०
४.	तामस मनु तामसमनु	काव्यआंगिरस पृथु काश्यप, अग्नि आत्रेय ज्योतिर्धाम भार्गव, चरक पौलह, पीवर वासिष्ठ और चैत्र पौलस्त्य देवबाहुपौलह	ऋषभ जानुजंघ शान्ति, नर भरतआर्षभ ख्याति, शुभ प्रियभृत्य, परीक्षित्, प्रस्थल दृढेषुधि कृशाश्व और कृतबन्धु	सत्य, सुरूप सुधी और हरिगण (पौलस्त्य) इन्द्रशिबि	२८००० वि०पू०
५.	रैवतमनु	सुधामा काश्यप हिरण्यरोमा- आंगिरस, वेद	महावीर्य, सुसंभाव्य, सत्यक, हरहा शुचि,	अमिताभ, भूताय वैकुण्ठ, सुमेधस वरिष्ठ,	२६००० वि०पू०

	श्रीभार्गव	बलवान्	इन्द्रविभु	
	ऊर्ध्वबाहु-	निरामित्र		
	वासिष्ठ	कम्बु, शृंग		
	पर्जन्यपौलह	और धृतव्रत		
	और सत्य	उरु, पुरु		
	नेत्र आत्रेय			
	उत्तम भार्गव			
६. चाक्षषमनु	हविष्मान्	शतशुम्न,	आद्य, प्रसूत, भाव्य	१८०००
	आंगिरस	तपस्वी,	पृथुक, महानुभाव	वि०पू०
	सुधामा	सत्यबाक्	और लेखासंज्ञक	१६०००
	काश्यप विरजा	भृति, अग्नि	देवगण	पर्यन्त
	वासिष्ठ	ष्टुत्, अति	(आरण्य आत्रेय)	
	अतिनामपौल-	रात्र, सुषुम्न	के पुत्र)	
	स्त्य सहिष्णु	और	महावीर्य इन्द्र	
	पौलह और	अभिमन्यु		
	मधु आत्रेय	(सभी नडवला		
		के पुत्र)		
७. रौच्य	आंगिरस, हव्यप	चित्रसेन,	सुत्रामा	
धृतिमान	पौलस्त्य तत्वदर्शी	विचित्र, नय,	सुधर्मा और	२६०००
मनु (कर्दम)	पौलह निरूत्सुक	धर्मभृत, धृत,	सुकर्मा-तीन	वि० पू०
	भार्गव निष्प्रकम्प	सुनेत्र, क्षत्र	प्रकार के	
			देवगण	
८. भौत्यमनु	आत्रेय	वृद्धि, सुतपा	इन्द्र-दिवस्पति	
	निर्मोह काश्यप	निर्भय और		
	सुतपा वासिष्ठ	दृढ़,		
	आग्नीध्र काश्यप	तरंगभीरुवप्र,	पंचदेवगण-	
	मागध पौलस्त्य	तरस्वान्, उग्र	चाक्षुष, कानिष्ठ	२५०००
	अग्निबाहुभार्गव	अभिमानी,	पवित्र, भाजर	वि०पू०
	शुचि आंगिरस	जिष्णु, संक्रंदन	और वाचावृद्ध	
सबलपौलस्य	मेधातिथि, धृष्ट	तेजस्वी	देवों के द्वादश	
	केतु पौलस्त्य			

९. मेरुसावर्णि	पंचहोत्र	वसु काश्यप	गण-मरीचि,	१४०००
	निराकृति	ज्योतिष्मान्	सुशर्मा	वि०पू०
(रोहित	पृथुश्रवा,	भार्गव	इत्यादि	
दाक्षायण)	भूरिधामा,	द्युतिमान्	इन्द्र-स्कन्द	
	ऋतवाक	आंगिरस	कार्तिकेय	
	अष्टहृत औरगय	सावन वासिष्ठ	(अद्भुत)	
		हव्यवाहन आत्रेय		
		और सप्त		
		पौलह सप्तर्षि		
१०. दक्षसावर्णि	हविष्मानपौलह	सुक्षत्र,	सुखमना और	१४०००
मनु	सुकृतिभार्गव,	उत्तम, भूरिषेण	निरुद्ध-दो	वि० पू०
	आपोमूर्तिआत्रेय	शतानीक,	प्रकार के	
	अष्टम वासिष्ठ	निरामित्र,	देवगण इन्द्र-	
	प्रमिति पौलस्त्य	वृषसेन, जयद्रथ,	शान्ति,	
	नभोगकाश्यप	सुवर्चा और		
	और सत्य	भूरिद्युम्न		
	आंगिरस			
११. रुद्र (रौद्र)	हविष्मानकाश्यप	संवर्तक, सुशर्मा	तीन प्रकार के	१४०००
सावर्णी	हविष्मान्भार्गव	देवानीक,	देवगण	वि०पू०
	तरुणआत्रेय,	पुरूद्वह	और	
	अनघवासिष्ठ	क्षेमधन्वा,	इन्द्र-'वृष'	
	उदधिष्ण्य	आदर्श		
	आंगिरस	पण्डक और		
निश्चर	पौलस्त्य और	मनु		
	अग्नितेजा पौलह			
१२. ब्रह्मसावर्णि	कृति वासिष्ठ,	देववान् उपदेव	पंचदेवगण-	१५०००
(कश्यप-	सुतपा आत्रेय,	देवश्रेष्ठ, द्वि	हरित, रोहित	वि०पू०
मारीच)	तपोमूर्ति आंगिरस,	रथ, मित्रवान्	सुमनस, सुकर्मा	१३०००
	तपस्वी, काश्यप,	मित्रविन्द	और सुपार	वि०पू०
	तपोअशयान	मित्रसेन,	इन्द्र-ऋतधामा	
	पौलस्त्य,	अमित्रहा,		

		तपोरति पौलह और तपोमति भार्गव	मित्रबाहु और सुवर्चा		
१३.	वैवस्वत मनु (श्राद्धदेव)	वसुमान्वासिष्ठ दत्तआत्रेय, काश्यप वत्सार गौतम, भरद्वाज, जमदग्नि और विश्वामित्र	इक्ष्वाकु, शर्याति नरिष्यन्त प्रांशु, करूष धृष्णु, पृषध्र, नभग, नाभानेदिष्ट और इला (कन्या)	देवगण- साध्य, रुद्र, मरुद्गण, वसुगण और आदित्यगण, इन्द्रशतक्रतु	१३००० वि०पू० से ११००० वि०पू० तक
१४.	वैववस्वत सावर्णमनु	गालव कौशिक, परशुराम भार्गव, पराशर या पाराशर्य शारद्वत (गौतम) दीप्तिमान् आत्रेय, ऋष्यशृंग काश्यप और भारद्वाज- (अज्ञातनामा, अश्वत्थामा, कृप, और द्वैपायन के भ्रष्टपाठभ्रामक)	वरीयान् अवरीयान सम्मत धृतिमान्, वसु चरिष्णु, अधृष्णु, वाज और सुमति	सुतपा, अमिताभ, और सुखसंज्ञक तीनगण, इन्द्र दैत्येन्द्र बलि वैरोचन	१३००० वि०पू० से ११००० वि०पू०तक सप्तर्षियों का समय (अष्टादश परिवर्त) ६५०० वि०पू० से ६००० वि० पू० तक

पुराणों के वर्तमानपाठों में यह मिथ्याधारणा बनाई गई है कि वैव-स्वतमनु के पश्चात् ६ भविष्य के मनु होंगे। मैंने सिद्ध किया है कि सभी १३ मनु-वैवस्वतमनु के पूर्वकाल में हो चुके थे, इस तथ्य की पुष्टि जैनपुराणों से भी होती है, जो प्रायः एक हजार वर्ष से ज्यादा पुराने नहीं हैं। अतः वैदिक पुराणों में ये भ्रांतियाँ १००० वर्ष पूर्व से अधिक पुरानी नहीं है। १४ मनुओं का यथार्थ क्रम, पौराणिकक्रम और जैनकुलकरक्रम द्रष्टव्य है—

क्रम सं०	पुराणों में क्रम	यथार्थक्रम	जैनकुलकरक्रम
१.	स्वायम्भुव मनु	स्वायम्भुव मनु	प्रतिश्रुति
२.	स्वारोचिष मनु	स्वारोचिष मनु	सन्मति
३.	औत्तमिमनु	औत्तमिमनु	क्षेमंकर
४.	तामसमनु	तामस	क्षेमकर
५.	रैवतमनु	रैवतमनु	सीमंकर
६.	चाक्षुषमनु	रौच्य मनु	सीमंधर
७.	वैवस्वत मनु	भौत्यु मनु	विमलवाहन
८.	मेरुसावर्णिमनु	चाक्षुष मनु	चक्षष्मान्
९.	दक्षसावर्णिमनु	मेरुसावर्णि मनु	यशस्वी
१०.	धर्मसावर्णि मनु	ब्रह्मसावर्णि मनु	अभिचन्द्र
११.	रौद्रसावर्णि मनु	धर्मसावर्णि मनु	चन्द्राभ
१२.	ब्रह्मसावर्णि	रौद्रसावर्णि मनु	मरुदेव
१३.	रौच्यमनु	वैवस्वत मनु	प्रसेनजित्
१४.	भौत्यमनु	सावर्णि मनु	नाभिराज

जैनग्रन्थों के अनुसार पाँचवें कुलकर सीमंकर (रैवतमनु) के समय तक कल्पवृक्षों का बाहुल्य था अर्थात् उस समय तक मनुष्यों का आहार वनों के फल ही थे। उससमय तक अपराधियों के लिये हाकारनीति पालन किया जाता था। वैदिक पुराणों में भी कल्पवृक्ष, मानुष, वन्य जीवनादि के सम्बन्ध इसी प्रकार के वर्णन है।

आठवां मनु कुलकर=चाक्षुष=चक्षुष्मान्—वर्तमानपुरांण पाठों में आठवाँ मनु मेरुसावर्णि है, परन्तु मेरे संशोधित क्रम से आठवाँ मनु चाक्षुष है, जो जैन ग्रन्थों का 'चक्षुष्मान्' है।

नामपरिवर्तन—

स्पष्ट है कि जैननाम परिवर्तित किये गये हैं, यथा 'स्वायम्भुव मनु' को जैनग्रन्थों में 'प्रतिश्रुति' कहा गया है, इसी प्रकार अन्य नाम परिवर्तित हैं। अन्तिम माधुरीवाचना के समय जैनमुनिगण कुलकरों या मनुओं का क्रम और कालक्रम भी भूल गये। अतः 'नाभि', जो प्रथम मनु-स्वायम्भु व की पांचवी पीढ़ी में हुये, उन्हें चौदहवां कुलकर बना दिया।

प्रथम मनु, प्रथम मनुष्य स्वयम्भू के पुत्र होने से ही 'स्वायम्भुव'म

कहलाये। 'स्वयम्भू' का एक अर्थ 'ईश्वर' भी होता है, यद्यपि उसका मूलार्थ यह नहीं है क्योंकि सूर्य या पृथ्वी भी स्वयम्भू (स्वयं बने) हैं, उसी प्रकार प्रथम मनु (मनुष्य) भी स्वयम्भू था, यह तथ्य अर्वाचीन जैनदर्शन के विरुद्ध भी नहीं है, परन्तु क्योंकि अर्वाचीन जैनदर्शन में ईश्वर की धारणा (मान्यता) नहीं है। अतः 'स्वयम्भू' के पुत्र 'स्वायम्भुव मनु' जिसके अर्थ में 'ईश्वर' की गन्ध आती है, को आर्वाचीनजैनशास्त्रकारों ने उसका नाम बदलकर 'प्रतिश्रुति' कर दिया और प्रथम कुलकर 'प्रतिश्रुति' की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, इसका संकेत भी जैनग्रन्थों में नहीं है।

इक्ष्वाकुवंश, क्योंकि तथाकथित द्वितीय तीर्थंकर अजित का सम्बन्ध इक्ष्वाकुवंशीय सगर से था, अतः जैनग्रन्थों में भ्रान्ति से ऋषभ, भरत आदि को भी 'इक्ष्वाकुवंशीय' कहा गया और इस सम्बन्ध में यह कथा घड़ दी—'इन्द्र के हाथ में इक्षुयष्टि देखकर ऋषभ ने उसे प्राप्त करने के लिए अपना प्रशस्त लक्षणयुक्त दाहिना हाथ आगे बढ़ाया। तब सर्वप्रथम इन्द्र ने इक्षुभक्षण की रुचि जानकर प्रभु के वंश का नाम 'इक्ष्वाकुवंश' रखा (आवश्यकनिर्युक्त गाथा १८६—जैनधर्म का मौलिक इति० पृ० १६)।

अयोध्या—'इक्ष्वाकु', वैवस्वतमनु का ज्येष्ठपुत्र था, जो, ऋषभ से कम से कम १५००० वर्ष पश्चात् हुआ। ऋषभ के समय न अयोध्या थी और 'इक्ष्वाकुवंश' का कोई भी अस्तित्व नहीं था। अयोध्या को सर्वप्रथम, जलप्रलय के नायक वैवस्वतमनु ने बसाया था[४०] (१२००० वि० पू० में) और ऋषभ या नाभि का समय २७००० वि०पू० या आज से २९००० वर्ष पूर्व अर्थात् वैवस्वत मनु से न्यूनतम १५००० वर्ष पूर्व था। जलप्रलय से पूर्व के किसी नगर का नाम, अस्तित्व या अवशेष अब तो क्या, वैवस्वतमनु के समय में भी नहीं था, अतः **ऋषभ के समय 'इक्ष्वाकुवंश' और अयोध्या की कल्पना केवल कल्पना और भ्रान्तिमात्र है। मनु के पूर्व मानवसभ्यता के सभी चिन्ह और अवशेष समुद्र में डूब चुके थे।**

गोत्र—क्योंकि वैवस्वतमनु और इक्ष्वाकु का गोत्र काश्यप[४१] था, पुनः जैन ग्रन्थों में ऋषभ का गोत्र भी पूर्वोक्त भ्रान्ति के कारण 'काश्यप' माना गया। देवासुरपिता परमेष्ठी काश्यप, जो वैवस्वतमनु के पितामह थे, वे ऋषभदेव से बहुत उत्तरकालिक व्यक्ति थे, अतः ऋषभ को 'काश्यपगोत्र' का मानना भी उत्तरकालिक भ्रान्तधारणा है।

(ऋषभदेव का जीवनचरित)

अब आगे जैन और वैदिक पुराणों में वर्णित 'ऋषभदेव के सम्पूर्ण जीवन चरित की इतिहास की दृष्टि से परीक्षा करते हैं कि उसमें कितना तथ्य और कितनी कल्पना का मिश्रण है ।

जन्म और वंश—आचार्य हेमचन्द्र के 'त्रिषष्टिशलाकापुरुष[६२] एवं अन्य जैनपुराणों में महाविदेह के क्षितिप्रतिष्ठ नगर, धन्ना सार्थवाह, आचार्य धर्मघोष, वसन्तपुर आदि के आख्यान में 'ऋषभदेव' के पूर्वभवों का वर्णन किया गया है । उनके नामों—धन्ना, वसन्तपुर आदि से ही आभास हो जाता है कि यह कथानक ऋषभदेव के पूर्वभव का पूर्ववर्ती वृतान्त नहीं हो सकता, किसी कथाकार की एक कल्पनामात्र ही है ।

ऐतिहासिक दृष्टि से '**ऋषभदेव**' स्वायम्भुव मनु की पांचवी पीढ़ी में हुये, वह मानव सभ्यता का उषाकाल था, इसपर, संक्षेप में, आगे प्रकाश डालेंगे । प्रथम उनकी वंशावली द्रष्टव्य है—

स्वायम्भुव मनु
|
प्रियव्रत
|
आग्नीध्र
|
नाभि
|
ऋषभ
|
भरत
|
सुमति

स्वायम्भुव मनु और ऋषभ का समय (तिथि)—वर्तमान वैदिकमतावलम्बी पुराणों की मिथ्याकालगणना के अनुसार ब्रह्माण्ड, सूर्य, पृथिवी और स्वायम्भुव मनु—सबका उत्पत्तिकाल, आज से लगभग २ अरब वर्ष पूर्व माना जाता है, जिसको इस काल में क्या आर्यसमाजी, क्या सनातनी एवं अन्य पोंगापन्थी समानरूप से मानते हैं । यह मिथ्या कालगणना, किस प्रकार उत्पन्न हुई, इसकी विस्तृत मीमांसा, मैंने अपने ग्रन्थ 'पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम' में की है, उस समस्त विवेचन को दुहराने की आवश्यकता नहीं है ।

ब्रह्माण्ड सृष्टि-उत्पत्तिकाल को छोड़ भी दिया जाये तब भी आधुनिक वैज्ञानिक अकाट्य प्रमाणों से सिद्ध है कि पृथिवी की आयु पांच अरबवर्ष से अधिक पुरानी है, यद्यपि अभी अन्तिम अंक निश्चित नहीं किया जा सका है, परन्तु, चार अरब वर्ष पुराने जीवाश्व पृथिवी पर मिल चुके हैं। अतः ब्रह्माण्ड या पृथिवी को केवल दो अरबवर्ष पुराना मानना मिथ्या है। यह समस्त भ्रान्ति 'परिवर्तयुग' को (३६० वर्ष) चतुर्युग १२००० वर्ष मानने और उसमें ३६० का गुणा करके ४३२०००० वर्ष और प्रत्येक मन्वन्तर में ७१ चतुर्युग मानने से हुई है।

'परिवर्तयुग' की ऐतिहासिकता को आज तक कोई भी विद्वान् नहीं समझ पाया। **सर्वप्रथम मैंने ही इसका रहस्यभेदन किया कि स्वायम्भुव मनु से** कृष्णाद्वैपायन पर्यन्त ७१ परिवर्तयुग व्यतीत हुये। 'परिवर्तयुग' ३६० वर्षों का होता था—[४१] (७१ × ३६० = २५५६०)। यह अंक ब्रह्माण्डपुराण[४४] में मिलता है कि स्वायम्भुव मनु से महाभारतकाल तक २६००० वर्ष व्यतीत हुये थे। 'परिवर्तयुग को पुराणों[८] एवं आर्यभट ने दिव्ययुग या दिव्यसंवत्सर कहा है। 'यह **दिव्यसंवत्सर' शब्द ही विद्यमान समस्त मिथ्या कालगणना का मूल है। 'पित्र्ययुग' का बारहगुना (३० × १२ = ३६०) 'दिव्यसंवत्सर' होता है। इसमें शंका के लिये कहाँ अवसर है—**

रविवर्षं मानुष्यं तदपि त्रिंशद्गुणं भवति पित्र्यम् पित्र्यं
द्वादशगुणितं दिव्यवर्षं समुद्दिष्टम् ॥
(आर्यभटीय का० कि० श्लोक ७)

अतः आर्यभट के समय तक 'दिव्यसंवत्सर' (= परिवर्तयुग = ३६० मानुष वर्ष) के सम्बन्ध में कोई भ्रान्ति नहीं थी। इस काल (पांचवी शती) के पश्चात् ही पुराणों की ऐतिहासिक कालगणना में भ्रान्ति उत्पन्न हुई।

ऋषभ की आयु :

अतः स्वायम्भुव मनु का समय अबसे ३१००० वर्ष पूर्व था (२६००० + ५००० महाभारतकाल = ३१००० वर्ष)। उस आदिमकाल में मनुष्यों की सामान्य आयु ५०० से १००० वर्ष थी। वैदिकप्रमाणों सुमेरिया-बैबीलन इतिवृत्त एव बाइबिलप्रामाण्य से इसकी पुष्टि होती है। जैनग्रन्थों के अनुसार ऋषभदेव ने ८३ लाख वर्ष तक गृहस्थधर्म का पालन किया और ८४ लाख पूर्व (वर्ष) में निर्वाण प्राप्त किया। अतः उनकी कुल आयु ८४० वर्ष थी। यह तथ्य हम पूर्व पृष्ठों पर भी स्पष्ट कर चुके हैं।

जन्म—

जैनपुराणों में, जैसाकि प्रसिद्ध है कि 'ऋषभदेव' से 'महावीर' तक २४ तीर्थंकरों की माताओं को, उनके जन्म से पूर्व (गर्भकाल में) १६ स्वप्न आते हैं, जिसमें वे मातायें 'इन्द्र' के ऐरावतादि हाथियों को देखती है। संभवतः यह तथ्य केवल वर्धमान महावीर की माता 'त्रिशला' के सम्बन्ध में सत्य तथ्य हो, कम से कम 'ऋषभ' की माता 'मरुदेवी' को ऐसा स्वप्न आना अशक्य है, क्योंकि कश्यपपुत्र देवराज इन्द्र का अस्तित्व (जन्म) और ऐश्वर्य ऋषभदेव के जन्म से न्यूनतम १६००० वर्ष पश्चात्, आज से १३००० वर्ष पूर्व ही संभव हुआ। अतः जैनपुराणों द्वारा 'ऋषभदेव' के समय (२७००० वि०पू०) में 'देवराज इन्द्र' की उपस्थिति दिखाना पूर्णतः (शत-प्रतिशत) काल्पनिक है।

अतः जैनग्रन्थों के अनुसार 'सौधर्म इन्द्र' ने ऋषभ जन्म 'आनन्द नाटक' खेलने आदि का विवरण काल्पनिक है। उस समय इन्द्रपूजा या इन्द्र का अस्तित्व ही नहीं था। ये बहुत उत्तरकालीन कल्पनायें हैं।

पत्नी—

जैनग्रन्थों के अनुसार कच्छ और महाकच्छ की दो भगिनियां सुनन्दा और संमंगला ऋषभदेव की पत्नियां हुईं। कुछ ग्रन्थों में 'सुनन्दा' के स्थान पर 'यशस्वती' नाम है।

भागवतपुराण (५/४/८) में ऋषभ की पत्नी एक मात्र **इन्द्रपुत्री 'जयन्ती'** कथित है, जिससे उन्होंने सौ पुत्र उत्पन्न किये।

भागवत का 'जयन्ती' नाम (ऋषभपत्नीहेतु) सर्वथा काल्पनिक है। भागवतपुराण के ऐतिहासिक कथन वायुपुराण एवं विष्णुपुराण की अपेक्षा हीनतर कोटि के हैं। भागवतपुराण भी अर्ध ऐतिहासिक बुद्धिवाले किसी अज्ञातनामा वैष्णव आचार्य (छठी या सातवीं शती) की रचना है, अतः उसके ऐतिहासिक वर्णन बहुत गंभीर नहीं है, उनकी परीक्षा आवश्यक है।

१०० ऋषभपुत्र—

ऋषभ से पांच पीढ़ीपूर्व ही पृथिवी पर प्रथम मनुष्य-स्वायम्भुव मनु (आदम) उत्पन्न हुआ था। अतः जनसंख्यावृद्धिहेतु, उस समय अधिक सन्तान उत्पन्न करना, अत्यावश्यक था। अतः वैदिकमतावलम्बी पुराणों एवं जैनपुराणों में ऋषभदेव के १०० पुत्रों का वर्णन ऐतिहासिक तथ्य है। मेरे

अनुमान से, ऋषभ के १०० पुत्र तो थे ही, उससे अधिक भी संभव है, क्योंकि ऋषभदेव अपनी सम्पूर्ण आयु ८४० वर्षों में से ८३० वर्ष गृहस्थ ही रहे। केवल एक शताब्दी (१०० वर्ष) योगी रहे।

ऋषभपुत्रों के नाम—काल्पनिक ?

जैनपुराणों में ऋषभपुत्रों के १०० नाम मिलते हैं और भागवतपुराण १९ नाम मिलते हैं। इनमें से केवल 'भरत' नाम को छोड़कर शेष नाम काल्पनिक प्रतीत होते हैं। जैनग्रन्थों में 'भरत' के अतिरिक्त 'बाहुबली' नाम भी सत्य तथ्य हो सकता है, शेषनाम निश्चय ही परिवर्तित हैं, इसके कारण वक्ष्यमाण हैं, प्रथमतः नामसूची द्रष्टव्य हैं—

क्र० सं०	भागवतपुराण में	जैनग्रन्थों में ऋषभपुत्रों के नाम
१	भरत	भरत
२	कुशावर्त	बाहुबली
३	इलावर्त	शंख
४	मलय	विश्वकर्मा
५	केतुभद्र	विमल
६	भद्रसेन	सुलक्षण
७	इन्द्रस्पृक्	अमल
८	विदर्भ	चित्रांग
९	कीकट	ख्यातकीर्ति
१०	कवि	वरदत्त
११	हरि	दत्त
१२	अन्तरिक्ष	सागर
१३	प्रबुद्ध	यशोधर
१४	पिप्पलायन	अवर
१५	आविर्होत्र	थवर
१६	द्रुमिल	कामदेव
१७	चमस	ध्रुव
१८	करभाजन	वत्स
१९	ब्रह्मावर्त	नन्द
२०		शूर

२१			सुनन्द
२२			कुरु
२३			अंग
२४			वंग
२५			कोसल
२६			वीर (सुवीर)
२७			कलिंग
२८			मागध
२९			विदेह
क्र० सं०	जैननाम	क्र० सं०	जैननाम
३०	संगम	५२	पुष्पयुक्त
३१	दशार्ण	५३	श्रीधर
३२	गम्भीर	५४	दुर्द्धर्ष
३३	वसुवर्मा	५५	सुसुमार
३४	सुवर्मा	५६	दुर्जय
३५	राष्ट्र	५७	अजयमान
३६	सुराष्ट्र	५८	सुधर्मा
३७	बुद्धिकर	५९	धर्मसेन
३८	विविधकर	६०	आनन्दन
३९	सुयश	६१	आनन्द
४०	यशः कीर्ति	६२	नन्द
४१	यशस्कर	६३	अपराजित
४२	कीर्तिकर	६४	विश्वसेन
४३	सुषेण	६५	हरिषेण
४४	ब्रह्मसेन	६६	जय
४५	विक्रान्त	६७	विजय
४६	नरोत्तम	६८	विजयन्त
४७	चन्द्रसेन	६९	प्रभाकर
४८	महासेन	७०	प्रभंजन
४९	सुषेण	७१	अरिदमन
५०	भानु	७२	मान
५१	कान्त	७३	महाबाहु

क्र० सं०	जैननाम	क्र० सं०	जैननाम
७४	दीर्घबाहु	८८	बल
७५	मेघ	८९	वीर
७६	सुघोष	९०	शुभपति
७७	विश्व	९१	सुमति
७८	वराह	९२	पद्मनाभ
७९	वसु	९३	सिंह
८०	सेन	९४	सुजाति
८१	कपिल	९५	संजय
८२	शैलविचारी	९६	सुनाम
८३	अरिंजय	९७	नरदेव
८४	कुंजरबल	९८	चित्रहर
८५	जयदेव	९९	सुखर
८६	नागदत्त	१००	दृढ़रथ
८७	काश्यप		

कुरु, अंग, वंग, कलिंग, सुवीर, सुराष्ट्र, विदेह, मगध आदि नाम द्रष्टव्य हैं, ये ऋषभ के २२ या २५ हजार वर्षों के पश्चात् होने वाले पुरुष (राजा) थे। ययातिपुत्र अनु के वंश में तितिक्षु हुआ, इसके कई पीढ़ी वाद बलि-वैरोचन सम्राट् हुआ, जिसके पांच पुत्र **'बालेय क्षत्रिय'** कहलाये, जिन्होंके नाम थे—अंग, वंग, कलिंग, सुह्म और पुण्ड्र, जिन्होंने पूर्वीभारत में इन्हीं नामों से पांचराज्यों की स्थापना की।

ऋषभपुत्रों के तथाकथित नाम प्रायः मौर्य, शुंग एवं गुप्तकाल में प्रचलित नाम प्रतीत होते हैं यथा धर्मसेन, श्रीधर, पुष्पयुक्त, हरिषेण, मेघ, नागदत्त इत्यादि। अतः जैनग्रन्थों में उल्लिखित ऋषभपुत्रों के नाम वास्तविक नहीं, परिवर्तित नाममात्र हैं।

इसके विपरीत भागवतपुराण के नामों—यथा इन्द्रस्पृक् केतुभद्र, द्रुमिल, हरि, अन्तरिक्ष, आविर्होत्र, करभाजन आदि में प्राचीनता झलकती है, तथापि वे भी वास्तविक ऋषभपुत्रों के नाम हैं या नहीं, कुछ कहा नहीं जा सकता। अतः 'भरत' को छोड़कर शेषनाम संदेहास्पद ही हैं।

राज्यसंस्था का अभाव—

उस आदिमयुग में आज से लगभग तीससहस्रवर्षपूर्व भारतवर्ष या

विश्व में कहीं भी राज्यसंस्था या शासन का प्रादुर्भाव या प्रारम्भ नहीं हुआ था। राज्यसंस्था का प्रादुर्भाव आदिराजा 'पृथु वैन्य' के समय में हुआ।[४६] ऋषभ से लगभग १२००० वर्ष पश्चात्। पृथु वैन्य ही सर्वप्रथम पृथ्वी का मूर्धाभिषिक्त राजा था। पृथु से पूर्व के महापुरुषों या शासकों को 'प्रजापति' (कुलकर) मनु, ब्रह्मा, स्वयम्भू आदि नाम से अभिहित किया जाता था, राजा नाम सर्वप्रथम पृथु का ही हुआ, अतः ऋषभदेव आदि के राज्याभिषेक की कथाएँ कल्पनामात्र हैं। भागवतपुराणादि में भी यह कल्पना मिलती है। भागवतपुराणादि में तो ऋषभ, नाभि आदि को वासुदेव या विष्णु का भक्त बताया है, वह भी वैष्णवकल्पना है। वैष्णवभक्ति का प्रादुर्भाव वासुदेव कृष्ण के पश्चात् हुआ और भागवतपुराण की रचना छठी सातवीं शती में हुई। अतः उसमें प्रत्येक महापुरुष को वैष्णवभक्ति में रँगा गया। विष्णु (वामन) का जन्म ऋषभ से १६००० वर्ष पश्चात् अर्थात् ११००० वि० पू० हुआ। ऐसी स्थिति में ऋषभ या उनके वंशज भरत, करभाजन आदि को वैष्णव बताना नितान्त कल्पनामात्र एवं ऐतिह्यविरुद्ध है। इसी प्रकार आर्षभ कवि आदि नौ पुत्रों का विदेहनिमि से संवाद कोरी कल्पनामात्र है।

वर्णव्यवस्था का अभाव—

ऋषभ के समय जब राज्यसंस्था ही नहीं थी, तब वर्णव्यवस्था की कल्पना विचारमात्र से भी परे है, परन्तु भागवतपुराण और जैनग्रन्थों दोनों में उस समय वर्णव्यवस्था को प्रदर्शित किया है, जैसा कि श्रीबलभद्र जैन ने लिखा है—'भगवान् ने उक्त छः कर्मों के आधार पर तीन वर्णों की स्थापना की। इन तीनवर्णों में क्षत्रिय वैश्य और शूद्र थे।' (जैनधर्म का प्रा० इति० पृ० ४२)।

भागवतपुराण में भी लिखा है कि भगवान् ऋषभ के ८१ पुत्र महाशालीन महाश्रोत्रिय यज्ञशील ब्राह्मण[४७] हुए और शेष १९ में से ९ पुत्र आत्मविद्याविशारद वातरशना श्रमणमुनि हुए।[४८]

नौ आर्षभ श्रमण—

उससमय न वेद थे और न यज्ञ और न वर्णव्यवस्था-परन्तु मुनि श्रमण धर्म का प्रवर्तन ऋषभ द्वारा हो चुका था, अतः आर्षभ, कवि, हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध, पिप्पलायन, आविर्होत्र, द्रुमिल, चमस और करभाजन, निश्चय ही श्रमणधर्म में निष्णात होंगे।

हम यह पहिले ही सिद्ध कर चुके हैं कि वेदों का प्रादुर्भाव परमेष्ठी कश्यप ब्रह्मा (१४००० वि०पू०) से हुआ। वेदों का रूप सनातन नहीं है। २८ वेदव्यासों एवं अन्य ऋषियों द्वारा वेदों का ३० से अधिक वार संस्करण हो चुका है। उपलब्ध वेदों का अन्तिम संस्करण, कृष्णद्वैपायनव्यास और उनकी शिष्यपरम्परा द्वारा हुआ—३२०० वि०पू० से २५०० वि०पू० के मध्यकाल में।

परन्तु जैनश्रमण, वैदिक परम्परा से प्राचीनतर होते हुए भी उसका वाङ्मय बहुत अर्वाचीन है, उसका अनेकबार अनेककारणों से लोप हुआ। वैदिकपरम्परा परिवर्तनशील होते हुए भी अधिक सुरक्षित रही। श्रमण परम्परा का प्राचीनसाहित्य नष्ट हो जाने के कारण यह नहीं निश्चित किया जा सकता कि श्रमणधर्म और दर्शन का प्राचीनतररूप क्या था? और अनेक कारणों से, मुख्यतः साहित्य के नष्ट होने से उसमें भ्रांतियाँ भी उत्पन्न हुई, उन ऐतिहासिक भ्रान्तियों का निराकरण ही इस पुस्तक का मुख्य उद्देश्य है।

कला, विज्ञान, अंकविद्या और लिपि का प्रादुर्भाव—

जैनपरम्परा के अनुसार ऋषभदेव ने ही सर्वप्रथम लिपि (ब्राह्मी) और अंकविद्या का आविष्कार किया। उनकी दो पुत्रियाँ कथित हैं—ब्राह्मी और सुन्दरी। ऋषभ ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को लिपि सिखाई, जिससे लिपि का नाम 'ब्राह्मी और सुन्दरी' को अकविद्या (गणित) सिखाया। विविध कलाओं (६४ कलाओं) का प्रशिक्षण दिया और प्रत्येक पुत्र ने उस पर एक शास्त्र लिखा, यथा ज्येष्ठपुत्र भरत को अर्थशास्त्र पढ़ाया एवं वृषभसेन को गान्धर्वशास्त्र। इसी प्रकार अन्य पुत्रों ने शास्त्र लिखे।

जैनपरम्परा का उक्त ब्राह्मीलिपि, गणित एवं शास्त्ररचना सम्बन्धी मत संशोधनीय है। ब्राह्मीभाषा (संस्कृत) और लिपि के मूल उद्भावक ऋषभ के आदिपुरुष स्वायम्भुव मनु (या ब्रह्मा=आदम) थे, अत्यन्त प्राचीन वैदिक तथा यहूदीपरम्परा से यह तथ्य पुष्ट होता है महाभारतयुद्ध के काल के पूर्व के आचार्य निरुक्तकार यास्क ने लिखा है—

'मिथुनानां विसर्गादौ मनुः स्वायम्भुवोऽब्रवीत्' (नि० ३/४)

'अवान्तरप्रलय के पश्चात् आदिकाल में स्वयम्भु ब्रह्मा के पुत्र स्वायम्भुवमनु ने धर्मशास्त्र की रचना की।' मनु को सर्वज्ञानमय कहा गया है—'सर्वज्ञानमयो हिसः (मनुस्मृति० २/७)

मल्लनाग वात्स्यायन ने भी लिखा है—

तस्यैकदेशं स्वायम्भुवो मनुधर्मधिकारिकं पृथक्-चकार।'

(कामसूत्र १/१/६)

इसी शास्त्र को क्रमशः चित्रशिखण्डी सप्तर्षि, विशालाक्ष (शिव) उशना, बृहस्पति, इन्द्र, भरद्वाज आदि ने संक्षिप्त किया, जो चित्रशिखण्डीशास्त्र, विशालाक्ष अर्थशास्त्र, औशनस अर्थशास्त्र, बार्हस्पत्य अर्थशास्त्र, ऐंद्र अर्थशास्त्र भारद्वाज अर्थशास्त्र कौटिल्य के समय तक प्रख्यात थे।

इसी प्रकार हिरण्यगर्भ ने योगशास्त्र[४९] ब्रह्मावरुण[५०], ने ब्रह्मविद्या, आयुर्वेद[५१], हस्त्यायुर्वेद[५२], धनुर्वेद[५३], अर्थशास्त्र[५४], कामशास्त्र[५५], ज्योतिषशास्त्र[५६], वास्तुशिल्पशास्त्र[५७], अश्वशास्त्र[५८], इतिहासपुराण[५९], नाट्यशास्त्र[६०] आदि शास्त्र रचे। ये सभी शास्त्र ब्रह्मा की रचना कहे गए हैं, वस्तुतः ब्रह्मा एक नहीं था, एक ब्रह्मा आदित्य वरुण था, एक ब्रह्मा उसका अनुज विवस्वान् आदित्य था। आदित्य वरुण ब्रह्मा ने ब्रह्मविद्या का प्रवर्तन किया, उसी प्रकार विवस्वान् ने शुक्लयजुर्वेद या वेदप्रवचन किया। इनके (देवासुरों के पिता) परमेष्ठी कश्यप ब्रह्मा ने अनेक शास्त्रों का प्रवर्तन किया।

मूलमानवधर्मशास्त्र (आदिशास्त्र) के प्रणेता स्वायम्भुवमनु थे, जिनको बाइबिल में आदम कहा गया है। यहूदीपरम्परा में भी यह सत्य तथ्य सुरक्षित हैं कि मनु[२५] और सप्तर्षियों ने आदिम शास्त्रों की रचना की तथा आदिभाषा (संस्कृत) एवं ब्राह्मीलिपि का आविष्कार किया। क्योंकि जैनों के प्रथम आराध्यदेव-तीर्थंकर ऋषभदेव थे, अतः ब्राह्मीलिपि सहित समस्त विद्याओं के प्रवर्तक वे या उनके पुत्र माने गए। इसमें सत्यांश है। वैदिक, यहूदी, जैन; बौद्ध सभी परम्पराओं में सत्यांश सुरक्षित हैं, काल (विस्मृति) अथवा भ्रांति अथवा साम्प्रदायिक भावना के कारण कुछ कल्पना या भूल भी की गयी। अतः अनेकशास्त्रों के प्रणेता स्वायम्भुव मनु और उनके वंशज ऋषभ और उनके पुत्र थे। बाईबिल एवं यहूदीपरम्परा के अनुसार आदम और उनके वंशज अत्रि तथा वसिष्ठ ने धर्मशास्त्र, पुराणादि शास्त्रों की सर्वप्रथम रचना की—

"The Hebrew dectors ascribc to Adam Various compositions on the subject of Ethics, theolcgy and Legislation as well a book on the creation of the would which he bequeathed to his posterity, and which together with the Book of Seth and

Edris; as the Arabians denominate Enoch, were deposited in a chest, which many centuries after the deluge was found by the patriarch Abraham, in the country of Sabians. The information is given us by Stanley, out of the old chaldean and Arabian authors, in the following passage :—

"Kissaeus, a Mohomedan writer, asserts that the Sabians possessed not only the books of Seth and Edris, but also others, written by Adam himself, for Abraham after his expulsion from chaldea by the tyrant Nimrod, going to the country of the Sabians, opened the chest of Adam and behold; in it were the books of Adam as also those of Seth and Edris, and the names of all the prophets that were to succeed Abraham."

"Another legend related by Berosus, and of which, it is probably the copy concerning certain writings, asserted to have been composed in ante-diluvian periods by Xisuthrus, at the command of the Deity, and buried at Sippura, the city of the Sum in Babylonia; which writings, according to Berosus, were actually dug up after the flood by his posterity, and preserved in the metropolis of Chaldea. It was from these writings deposited in the temple of Belus at Babylon, that Berosus copied the outline of the history of the antedeluvian sovereigns of Chaldea." (Stanlay on the oriental Philosophy p. 36, 1701;— (भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, पृ० २६-२७ पर उद्धृत) ।

अतः स्वायम्भुव मनु और उनके वंशज ऋषभ, सप्तर्षि आदि ने अनेक शास्त्रों की रचनाएँ रचीं, इसमें पर्याप्त सत्यांश हैं । कालकृतविस्मृति और सम्प्रदाय के कारण जैनग्रन्थों ने उन तथ्यों को अपने ढंग से कहा ।

अतः संस्कृतवाक् एवं ब्राह्मीलिपि स्वायम्भुव मनु और ऋषभदेव के समय (२७००० वि०पू०) से ही (२६००० वि०पू०) चली आ रही है, अतः विकासवाद के मिथ्या परिप्रेक्ष्य में यह कल्पना करना कि लेखनकला प्राचीन विश्व में नहीं थी और भारतीयों ने सिकन्दर के समय यह यूनानियों से सीखी यह कितनी बेहूदी एवं भौंड़ी कल्पना है, इस पर टिप्पणी करने की आवश्यकता नहीं ।

चौसठ कलाओं से ऋषभदेव का सम्बन्ध जोड़ना प्रायः काल्पनिक है, क्योंकि इनमें से बहुत कलाओं की उत्पत्ति बहुकाल के पश्चात् शनैः-शनैः हुई ।

'ऋषभकृत प्राथमिक व्यवस्थाएँ : तथ्यातथ्य विवेचन'

वर्तमान जैनग्रन्थ क्योंकि एक डेढ़ सहस्रवर्ष पुराने हैं, अतः विस्मृति एवं मूलपरम्परा से कट जाने के कारण, उनमें विपरीत और अतथ्यात्मक वर्णन भी किए गए।

सर्वप्रथम, जबकि **नाभि प्रथम और स्वायम्भुव मन्वन्तर** अर्थात् नितान्त आदिकाल (२८००० वि०पू०) में हुए तब उन्हें **अन्तिम चौदहवां कुलकर** बताना एकदम तथ्य से उलटा है। स्वायम्भुव प्रथम मनु और नाभि में केवल चार पीढ़ियों का अंतर था, वैवस्वत मनु (तेरहवें) और उनके अनुज सावर्णि मनु अंतिम और चौदहवें मनु थे, जो केवल अबसे १४००० वर्ष पूर्व हुए। अतः प्रथम और चौदहवें मनु में १६००० वर्षों का अन्तर था। इतने दीर्घकाल में विश्वसमाज की अनेक व्यवस्थाएँ सर्वथा बदल जाती हैं। जैनग्रन्थों में नाभिराय और उनके पुत्र ऋषभदेव को चौदहवें (अंतिम) मन्वन्तर में दिखाया गया है। अतः तथ्य भी उल्टे बताए गए हैं। यह मूल इतिहासों (इतिहासपुराणों) से अनभिज्ञता के कारण हुआ।

यहाँ संक्षेप में विवेचन करेंगे कि समाज की कौनसी व्यवस्था ऋषभ-काल में प्रवर्तित हुई और कौन से उत्तरकाल में।

जैनपरम्परा के आधार पर जैनधर्म का प्राचीन इतिहास (म० बलभद्र जैन) और 'जैनधर्म का इतिहास' (आचार्य श्रीहस्तिमल) में कुछ सामाजिक व्यवस्थाओं का सम्बन्ध ऋषभ से बताया है, सो इस विषय का यहाँ संक्षिप्त विवेचन करते हैं।

वन्यसंस्कृति से कृषिसंस्कृति तक—

जैनग्रन्थों में दिखाया बया है कि ऋषभ से पूर्वतक वन्यसंस्कृति थी, जनता कल्पवृक्षों पर जीवित रहती थी, ऋषभ ने ही सर्वप्रथम कृषि का विस्तार किया। इसी प्रकार कहा गया है कि ऋषभ ने ही सर्वप्रथम नगर बसाये—अतः नागरसभ्यता का प्रारम्भ किया। ऋषभ ने ही सर्वप्रथम दण्ड व्यवस्था का प्रवर्तन किया—दण्डनीतिशास्त्र की रचना की—इत्यादि। सच्चे इतिहास के अनुसार ऋषभ का समय आदिकाल था, अतः ये व्यवस्थाएँ ऋषभ ने नहीं, उनसे १२००० वर्ष पश्चात् आदिराज्य पृथु वैन्य ने प्रवर्तित कीं। सर्वप्रथम पृथु ने ही प्रजापालनार्थ पृथ्वी का दोहन किया, इससे पूर्व पृथ्वी की प्रजा प्राकृतिक फलों पर जीवित रहती थी।[६१] पृथु ने ही सर्वप्रथम

पर्वतों, नदियों, वनों और समुद्रों को प्रजा के उपयोग्य बनाया, विषम-स्थलों को सम किया, पर्वतों को तोड़कर राजपथ एवं विशालभवनों का निर्माण किया।

पशुपालन, कृषि, धातुखनन, वणिक्कर्म का प्रादुर्भाव पृथु ने किया, उससे पूर्व पृथ्वी पर न नगर थे, न ग्राम, न सस्य, न गोरक्षा, न वणिक्-पथ—

धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्धिताः।
इत्थं वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां पुनः।।
(हरि० १/६/१२)

पृथु, चाक्षुषमन्वन्तर (आठवें मनु चाक्षुष—जैन चक्षुष्मान्) में हुआ—

चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं यदा किल।
न प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाभवत्।
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वाणिक्पथः।।
(हरिवंश १/६/१६-१५)

अतः राज्यसंख्या का प्रवर्तन और दण्डव्यवस्था का प्रवर्तन पृथुकाल (१५००० विक्रम पूर्व) आज से १७००० वष पूर्व हुआ। उसी समय चित्र-शिखण्डी (वासिष्ठ आदि) सत्यर्षियों ने दण्डनीतिशास्त्र वा धर्मशास्त्र या मानवधर्मशास्त्र की रचना की। स्वायम्भुवमनु से सुमति भार्गव (३००० वि०पू०) तक इसशास्त्र के अनेकों बार संस्करण हुए और गुप्तकालतक इसमें हस्तक्षेप हुआ, जबकि जातिव्यवस्था अतिकठोररूप में प्रललित कर दी गई, अतः समाजव्यवस्था या दण्डनीति में राजा या प्रभुवर्ग की ओर से अपनी सुविधानुसार परिवर्तन होते रहे।

विवाहव्यवस्था—

विद्यमान (अर्वाचीन) जैनग्रन्थों में वर्तमानविवाहव्यवस्था का प्रवर्तक ऋषभदेव को माना है, यह भी तथ्य के विपरीत कथन है, जैसाकि पूर्व स्पष्ट कर चुके हैं कि ऋषभकाल आदिकाल था, जबकि जैनग्रन्थों में ऋषभ को सगरकाल (७००० वि०पू०) के आसपास समझकर एक ऐक्ष्वाक (इक्ष्वाकु-वंशीय) राजा बना दिया। जैनग्रन्थों में ऋषभ से २२००० वर्षोंबाद की व्यवस्थाओं को उनके ऊपर थोप दिया।

सत्य यह है कि ऋषभ (२७००० वि०पू०) के समय और उसके बहुत समय पश्चात् यहाँ तक वैवस्वत मनु और वैवस्वतयम (१२००० वि० पू०) तक १५००० वर्षों के अन्तराल में भी समाज में विवाहव्यवस्था स्थिर नहीं हुई थी। ऋषभ के समय ही नहीं, बल्कि वैवस्वतयम के समय तक भी निकट सम्बन्धियों यथा भाई-बहन में प्रायः या कभी-कभी विवाह हो जाता था। ऋग्वेद के यमयमीसंवाद[६२] (ऋग्वेद १०/१०) सूक्त से भाई-बहिन के विवाह की पुष्टि या आभास होता है।

पृथुवैन्य से लगभग एकसहस्रवर्ष पश्चात् महानप्रजापति प्राचीनबर्हि के दशपुत्र प्रचेताओं की एक ही पत्नी थी—(यथा पाँच पाण्डवों की द्रौपदी) मारिषा[६३], जिससे दशप्रचेताओं का एकही पुत्र उत्पन्न हुआ—'प्राचेतस दक्ष।'

अतः विवाहव्यवस्था ऋषभकाल (२७००० वि०पू०) में नहीं, वैवस्वत यम (१२००० वि०पू०) के समय में स्थिर हुई, ऋषभ से पन्द्रह-सोलह हजार वर्ष पश्चात्।

ऋषभदेव का वैराग्य और प्रव्रज्या—

जैनपुराणों में कथानक है कि ऋषभ की राजसभाओं में नीलांजना नाम की नर्तकी नृत्य करते दिवंगत हो गई, इस घटना से ऋषभदेव को संसार से वैराग्य हो गया।

पुत्रों में राज्यविभाजन—

कथा है कि भगवान् ऋषभ ने वैराग्य होते ही अपने सौपुत्रों में अपना राज्य बांट दिया। हम पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि उस समय राज्य व्यवस्था तो थी नहीं, फिर भी किसी प्रकार की शासनव्यवस्था हो सकती है, उच्चवर्ग का भूमिविशेष पर अधिकार अवश्य था। जैनपुराणों के समान वैदिकपुराणों में भी ऋषभ के पूर्वजों एवं वंशजों को राजा ही कहा है, यद्यपि यह उत्तरकालीन शब्दावली है।

जैनपुराणों में ऋषभ के समकालिक जिन शूरसेन, पांचाल, काशी, शाल्व, त्रिगर्त आदि राज्यों का नाम लिया है वे सर्वथा ही ऋषभ से बहुत उत्तर-कालीन थे, यह हम पूर्वपृष्ठों पर स्पष्ट कर चुके हैं। उसे दुहराने की जरूरत नहीं।

ऋषभदेव ने ८३० की वर्षों की आयु तक गृहस्थ धर्म का पालन किया। तदुपरान्त प्रवज्या (मुनिदीक्षा) ली, संभवतः वे विश्व के प्रथम मुनि, तीर्थंकर या श्रमण थे। एक नवीन दार्शनिकव्यवस्था—निवृत्तिमार्ग का उन्होंने प्रवर्तन किया। वे महायोगी एवं सिद्ध के रूप में १०० वर्षों तक पृथिवी के विभिन्न देशों में विचरण करते रहे। श्रीमद्भागवतपुराण के अनुसार 'ऋषभदेव की लम्बी-लम्बी जटायें थीं,······जनता से बचनेहेतु उन्होंने अजगर वृत्ति धारण कर ली। वे लेटे-लेटे ही खाते पीते थे, और उसी अवस्था में मलमूत्र त्यागते थे।···किन्तु उनके मल में दुर्गन्ध नहीं थी, बड़ी सुगन्ध थी और वायु दशयोजन तक के प्रदेश को उससे सुगन्धित कर देती थी।"
(५ स्कन्ध अध्याय ५)

निर्वाण—

वे मुक्तमूर्धज (जटाधारी) दिगम्बर ही योगचर्या करते हुये वेणु (बांसों) की आग से दग्ध होकर मुक्त हो गये।

निर्वाणस्थल—

जैनग्रन्थों में ऋषभदेव का निर्वाणस्थल 'अष्टापद' पर्वत या कैलाशपर्वत कहा गया है। कुछ जैनविद्वान् बद्रीनाथमन्दिर की मूर्ति को भगवान ऋषभदेव की मानते हैं। ऋषभदेव का अनुकरण करते हुये **नारायण (साध्यदेव) ने बद्रीवन में तपस्या की और भक्तिमार्ग का प्रवर्तन किया—'उनका कनकमय अष्टचक्र युक्त शकटयान था, संभवतः इसीलिए पर्वत का नाम 'अष्टापद' पड़ा हो।**

प्रथम अध्याय के उद्धरण

१ एकवेदस्य चाज्ञानाद् वेदास्ते बहवोऽभवन् । (सनत्सुजा० २/३६)

२ वेदश्चैकश्चतुर्धातु कथ्यते द्वापरादिषु । (मत्स्यपु० १४४/११)

३ परिवर्तेचतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति । (वायुपुराण)

४ यथा वेदश्रुतिर्नष्टा मया प्रत्याहृता पुनः
सवेदाः स श्रुतिकाश्च कृताः पूर्वं कृते युगे (शान्तिपर्व ३४८/५६)
एतस्मिन्नन्तरे राजन् देवो हयशिरोधरः ।
जग्राह वेदानखिलान् रसातलगतान् हरिः ।। (वही)

५ सारस्वतश्चापि जगाद नष्टं वेदं पुनर्न ददृशुर्न पूर्वे । (बुद्धचरित १/४७)

६ दत्तात्रेय इति ख्यातः क्षमयापरया युतः ।
तेन नष्टेषु वेदेषु प्रक्रियासु मखेषु च ।
सहयज्ञक्रिया वेदाः प्रत्यानीता तेन वै ।। (हरिवंशपु० १/४१)

७ चत्वारि शृंगा त्रयो अस्य पादा द्वे शीर्षे सप्त हस्तासो अस्य
त्रिधाबद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश ।
(ऋग्वेद ४/५८/३)

८ ककर्दवे वृषभोयुक्त आसीदवावचीत सारथिरस्य केशी ।
दुधेर्युक्तस्य द्रवतः सहानस ऋच्छन्तिष्मा निष्पदो मुद्गलानीम् ।
(ऋग्वेद १०/१०२/६)

९ केश्यग्निं केशी विषं केशी बिभर्ति रोदसी ।
केशी विश्वं स्वर्दृशे केशीदं ज्योतिरुच्यते ।
मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मलाः ।
उन्मदिता मौनेयेन वातां आतस्थितमा वयम् ।
मुनिर्देवस्य देवस्य सौकृत्याय सखा हितः ।
वातस्याश्वो वायोः सखाऽथो देवेषितो मुनिः ।
केशी केतस्य विद्वान्त्सखा स्वादुर्मन्दितमः ।।
(ऋग्वेद १०/१३६)

१० अस्य सारथिः सहायभूतः केशी प्रकृष्टकेशो वृषभ अवावचीत् भ्रशमशब्दयत् । (सायणभाष्य)

११ ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ।
(श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/२)

१२ वात (वायु) को ही अपना भक्ष (आहार) बनाने के कारण जैन श्रमण मुनियों को 'वातरशना' या 'वायुभक्षा' कहा जाता था । रामायण में उल्लिखित है कि दण्डकारण्य ने राम ने अनेक प्रकार के तपस्वियों-मुनियों के दर्शन किये, जिनमें कुछ 'वायुभक्षा मुनि' भी थे—
वैखानसा बालखिल्याः संप्रक्षाला मरीचिपाः ।
अश्मकुट्टाश्च बहवः पत्राहाराश्च तापसाः ।।
दन्तोलूखिनश्चैव तथैवोन्मज्जकाः परे ।
गात्रशय्या अशय्याश्च तथैवानवकाशिकाः ।
मुनयः सलिलाहाराश्च वायुभक्षास्तथापरे ।।
आकाशनिलपाश्चैव तथा स्थण्डिलशायिनः ।
(रामायण ३/६/२-४)

ये सभी प्रकार के मुनि श्रमण तो थे ही, अधिकांश परमतपस्वी कठोरव्रती जिनधर्म के अनुयायी प्रतीत होते हैं ।

१३ काश्यपस्य च पुत्रोऽस्ति विभाण्डक इति श्रुतः ।
ऋष्यश्रृंग इति ख्यातस्तस्य पुत्रो भविष्यति ।
स वने नित्यसंवृद्धो मुनिर्वनचरः सदा ।
नान्यं जानाति विप्रेन्द्रो नित्यं पित्रनुवर्तनात् ।
न तेन जन्मप्रभृति दृष्टपूर्वं तपस्विना ।
स्त्री वा पुमान् वा यच्चान्यत् सत्वं नगरराष्ट्रजम् ।।
(रामायण १/९/४,५ तथा १/१०/९)

१४ केतवो अरुणसश्च ऋषयो वातरशनाः प्रतिष्ठां शतधा हि समाहितासो सहस्रधायसम् (तै० आ० १/२१/३ तथा १/२४).
"प्रप्रमादी" (तै० आ० १/३१/६)
"केत्वरुणवातरशनशब्दा ऋषिसंघानाचक्षते । ते सर्वेऽपि ऋषिसंघाः समाहिताः सोऽप्रमत्ता ।" (तै० आ० सायणभाष्य १/२१/३)

१५ "वातरशना हवा ऋषयः श्रमणाः । ऊर्ध्वमन्थिनो बभूवुः ।"
(तै० आ० २/७/१)

१६ कन्था कौपीनोत्तरासंगादीनां त्यागिनो यथाजातरूपधरा निर्ग्रन्था निष्परि-
ग्रहाः—इतिसंवर्तश्रुतिः" (तै०आ० सायणभाष्य १०/६३)

१७ किं ते कृण्वन्ति कीकटेषु गावो नाशिरं दुह्रे न तपन्ति घर्मम् ।
आ नो भर प्रमगन्दस्य वेदो नैचाशाखं मघवन्रन्धया नः ।
(ऋ० ३/५३/१४)

१८ कीकटो नाम देशोऽनार्यनिवासः (निरुक्त ६/३२)

१९ विदेहो ह माथवो अग्निं वैश्वानरं मुखे बभार । तस्य गौतमोराहूगण ऋषि
पुरोहित आस । (शत० ब्रा० १/४/१/१४)

२० व्रात्य आसीदीयमान एव स प्रजापतिं समैरयत् ।
स प्रजापतिः सुवर्णमात्मान्नपश्यत् तत् प्राजनयत् ।
सोऽवर्धत स महानभवत् स महादेवोऽभवत् ।।
इरापुंश्चली हसो मामधो विज्ञानं वासो हउष्णीषं
रात्री केशा हरितौ प्रवतौ कल्मलिर्मणिः
ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठानु
तिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ।।
नास्य पशून् समानान् हिनस्ति य एवं वेद ।
तमृतं च सत्यं च सूर्यश्च चन्द्रश्च नक्षत्राणि चानुव्यचलन्
तद् यस्यैवं विद्वान् व्रात्यो राज्ञोऽतिथिर्गृहानाच्छेत् ।
श्रेयांसमेनमात्मनो मानयेत् तथा क्षत्राय नावृश्चेत ।
तथा राष्ट्राय नावृश्चते ।। (अथर्ववेद — १५ काण्ड)

२१ **यज्ञनिन्दा**—प्लवा ह्येते अदृढ़ा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरंयेषुकर्म एतच्छ्रेयो
येऽभिनन्दन्ति मूढ़ा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति ।।
परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो । निर्वेदमायान्तमस्याकृतः कृतेन···।।
सम्यक्ज्ञान—तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाचतां तत्वेनं तां ब्रह्मविद्याम्
निर्ग्रन्थ—छिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्यकर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।
वीतशोक—अस्यमहिमानं वीतशोकः (३/१/२)
आत्मरतिः—आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावान्······ (३/१/४)
सम्यक्ज्ञान और ब्रह्मचर्य—सत्येन लभ्यस्तपसाह्येष आत्मा ।
सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।

अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो ।
यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।। (३/१/५)
वीतराग—संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः ।
कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः ।। (३/२/५).
परिमोक्ष, यति—वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः
सन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले ।
परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ।। (३/२/६)

२२ **महावीर द्वारा इन्द्रभूति को आत्मज्ञान**—

'गौतम के मनोगत भावों को समझकर महावीर ने कहा—गौतम । मालूम होता है, तुम चिरकाल से आत्मा के विषय में शंकाशील हो ।' इन्द्रभूति अपने आन्तरिक प्रश्न को सुनकर अत्यन्त विस्मित हुये । उन्होंने कहा—'हां मुझे यह शंका है । 'श्रुतियों' में भी विज्ञानघन आत्मा भूतसमुदाय से ही उत्पन्न होती हैं और उसीमें पुनः तिरोहित हो जाती है अतः परलोक की संज्ञा नहीं, ऐसा कहा गया है, जैसे—"विज्ञानघन एवैतेभ्यो भूतेभ्यः समुत्थाय तान्येवानुविनश्यति, न प्रेत्य संज्ञास्ति "……"
(जैनधर्म का मौलिक इतिहास, पृष्ठ ४००)

२३ एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वास्यामन्तकालेपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।। (गी० २/७२)
योन्तःसुखोन्तरारामस्तथान्तर्ज्योतिरेव च ।
स योगी ब्रह्मनिर्वाणं ब्रह्मभूतोधिगच्छति । (गी० ५/२४)
लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहितेरताः ।। (गी० ५/२५)

२४ दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ शरमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः । (गी० २/४६)

२५ वीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।। (गी० ४/१०)

२६ आर्येण मम मान्धात्रा व्यसनं घोरमीप्सितम् ।
श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतंत्वया ।। (रामा० ४/१८/३३)

२७ लक्षयामास स ऋषिश्चितां मुनिसुतस्तदा । (रा० २/६३/४८)
शूद्रायामस्मि वैश्येन जातो नरवराधिप । (रा० २/६३/५)

२८ शूद्रयोन्यौ प्रजातोस्मि तप उग्रं समाहितः। (रा० ७/७६/२)
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः ।। (रा० ७/७३/३)

२६ शालावृका इति ख्यातास्त्रिषु लोकेषु भारत।
अष्टाशीतिसहस्राणि ते चापि विबुधैर्हताः ।। (शान्तिपर्व ३४/१७)

३० इन्द्रो वै यतीन् शालावृकेभ्यः प्रायच्छत्।
तेषां त्रय उदशिष्यन्त पृथुरश्मिबृहद्गिरो रायोवाजः ।।
(ताण्डयब्राह्मण १३/४/१७)

३१ (क) हरिवंशपुराण में—

तेषां च बुद्धिसम्मोहमकरोद् द्विजसत्तमः।
नास्तिवादार्थशास्त्रं हि धर्मविद्वेषिणं परम् ।।
परमं तर्कशास्त्राणामसतां तन्मनोऽनुगम्।
ते तद् बृहस्पतिकृतं शास्त्रं श्रुत्वाल्पचेतसः।
पूर्वोक्तधर्मशास्त्रणाभवन् द्वेषिणः सदा ।।
(१/२८/३०-३२)

(ख) मत्स्यपुराण में—

पुत्रत्वमगत्तुष्टस्तस्येन्द्रः कर्मणा विभुः।
दत्वेन्द्राय तदा राज्यं जगाम तपसे रजिः।।
रजिपुत्रैस्तदाच्छिद्य बलादिन्द्रस्य वैभवम्।
राज्यद्भ्रष्टस्तदा शक्रो रजिपुत्रैरभिपीड़ितः।
प्राह वाचस्पतिं दीनः पीडितोस्मि रजैःसुतैः ।।

गत्वाथ मोहयामास रजिपुत्रान् बृहस्पतिः।
जिनधर्म्मं समास्थाय वेदाबाह्यंच वेदवित्।
वेदमयीपरिभ्रष्टांश्चकार धिषणाधिपः।
वेदबाह्यान्परिज्ञाय हेतुवादसमन्वितान् ।।
(२४/४२-४८)

विष्णुपुराण में मायामोह (नग्न) की उत्पत्ति—

इत्युक्तो भगवांस्तेभ्यो महामोहं शरीरतः।
समुत्पाद्य ददौ विष्णुः प्राह चेदं सुरोत्तमान्।

माहमोहोऽयमखिलान् दैत्यांस्तान्मोहयिष्यति ।
ततो वध्या भविष्यन्ति वेदमार्गबहिष्कृताः ।।

(३/१७/४१-४२)

× × ×

एवं प्रकारैर्बहुभिर्युक्तिदर्शनर्चर्चितैः ।
मायामोहेन ते दैत्या वेदमार्गादपाकृताः ।
धर्मायैतदधर्माय सदैतन्न सदित्यपि ।।
दिग्वाससामयं धर्मो-धर्मोऽयं बहुवाससाम् ।
इत्यनेकान्तवादं च मायामोहेन नैकधा ।
आर्हतैतं महाधर्मं मायामोहेन ते यतः ।
प्रोक्तास्तमाश्रिता धर्ममहितास्तेऽभवन् ।।

(३/१८/७-१२)

दैवीभागवत में जैनधर्म—

अपश्यद्दानवानां पार्श्वे वाचस्पतिं तदा छद्मरूपधरं सौम्यं बोधयन्तं-छलेन तान् । जैनधर्मकृतं स्वेन यज्ञनिन्दापरं तथा । भोदेवरिपवः संतोब्रवीमि भवतांहितम् । अहिंसा परमोधर्मोन हन्तव्याततायिनः । द्विजैर्भोगस्ते वैरदर्शितं हिसनं पशोः जिह्वास्वादपरैः काममीहसैव परामता ।।

(देवीभाग० ४/१३/५२-५६)

३२ कपिलस्यूमरश्मिसंवाद—

अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
कपिलस्यगोश्च संवादं तन्निबोध युधिष्ठिर ।।
नहुषः पूर्वमालेभेत्वष्टुर्गामिति नः श्रुतम् ।।
तांगामृषिः स्यूमरश्मिः प्रविश्य यतिमब्रवीत् ।
हंहोवेदा ३ यदि मता धर्माः केनापरेमताः ।

कपिल उवाच—

नाहं वेदान् विनिन्दामि न विवक्ष्यामि कर्हिचित् ।
पृथगाश्रमिणां कर्माण्यैकार्यानीति नः श्रुतम् ।।
अनालम्भ ह्यदोषकोषः स्यादालम्भे दोष उत्तमः ।
यद्यत् किंचित् प्रत्यक्षमहिंसाया परंमतम् ।।

(शांति० २६८ अ०)

× × ×

एतावदनुपश्यन्ति यतयो यान्ति मार्गगाः ।
अपवर्गेऽथ संत्यागे बुद्धौ च कृतनिश्चयाः ।।

× × ×

नाक्रोशमृच्छेन्न वृथा वदेच्च ।
न पैशुनं जनवादं च कुमतिः ।
सत्यव्रतो मितभाषो प्रमत्तस्तथास्थः ।
वाग्द्वारमक्षो सुगुप्तम् ।
किं तस्य तपसा कार्यं किं यज्ञेन किमात्मना ।
द्वन्द्वारामेषु सर्वेषु य एको रमते मुनिः ।
येन सर्वमिदं बुद्धं प्रकृतिर्विकृतिश्च या ।

(शान्ति अ० २६९)

धनानामेष वै पन्थास्तीर्थेषु, प्रतिपादनम् ।
शरीरपवित: कर्माणि ज्ञानं तु परमागतिः ।
कषाये कर्मभिः पक्वे रसज्ञाने च तिष्ठति ।
आनृशंस्यंक्षमा शान्तिरहिंसा सत्यमार्जवम् ।।

(अ० २७०)

३३ बृहस्पति आंगिरस—

ततोतीते महाकल्पे उत्पन्नेऽगिरसः सुते ।
बभूवुर्निवृत्ता देवा जाते देवपुरोहिते ।
एभिः समन्वितो राजन् गुणैर्विद्वान् बृहस्पतिः ।
तस्यशिष्यो बभूवाग्र्यो राजोपरिचर वसुः ।।
अधीतवांस्तदा शास्त्रं सम्यक् चित्रशिखण्डिजम् ।।
तस्य यज्ञो महानासीदश्वमेधो महात्मनः ।
बृहस्पतिरुपाध्यायस्तत्र होता बभूव ह ।
प्रजापतिसुताश्चात्र सदस्याश्चाभवंस्त्रयः ।।
एकतश्च द्वितश्चैव त्रितश्चैव महर्षयः ।।

३४ वसु का अहिंसामययज्ञ—

सम्भूताः सर्वसम्भारास्तस्मिन् महाक्रतौ
एवं तत्रन पशुघातोऽभूत् सराजैनंस्थितोऽभवत्
अहिंस्रः शुचिरक्षुद्रोमिताशीः कर्मसंस्तुतः ।

आरण्यकसदोद्भूता भागास्तमोपकल्पिता: ।
अदृश्येन तृतोभागोदेवेन हरिमेधसा ।। (१०-१३)

उपरिचरवसु का परिचय—

राजोपरिचरो नाम बभूवाधिपतिर्भुव: ।
आखण्डलसखो: ख्यातो भक्तो नारायणं हरिम् ।

पांचरात्रशास्त्र: चित्रशखण्डीशास्त्र—

ये हि ते ऋषय खयाता: सप्त चित्रशिखण्डिन: ।
तैरैकमतिर्भूत्वा यत् प्रोक्तं शास्त्रमुत्तमम् ।
मरीचिरत्र्यंगिरसा पुलस्त्य: पुलह: क्रतु: ।
वसिष्ठश्च महातेजास्ते हि चित्रशिखण्डिन: ।।
कृतं शतसहस्रं हि श्लोकानामिदमुत्तमम् ।
तस्मात् प्रवक्ष्यते धर्मान् मनु: स्वायम्भुव: स्वयम् ।
उशना बृहस्पतिश्चैव यदोत्पन्नौ भविष्यत: ।
तदा प्रवक्ष्यत: शास्त्रं युष्मन्मतिभिरुदधृतम् ।।
बृहस्पतिमते चैव लोकेषु प्रतिचारिते ।
युष्मत्कृतमिदं शास्त्रं प्रजापालो वसुस्तत: ।
बृहस्पतिसकाशाद् वै प्राप्स्यते द्विजसत्तमा: ।।

यज्ञ में छाग या बीज—

बीजैर्यज्ञेषु यष्टव्यमिति वै वैदिकी श्रुति: ।
अजसंज्ञानि बीजानिच्छागं नो हन्तुमर्हथ: ।।
नैष धर्म: सतां देवां यत्र वध्यते वै पशु: ।
इदं कृतयुगं श्रेष्ठं कथं वध्येन वै पशु: ।।
धान्यैर्यष्टव्यमित्येव पक्षोऽस्माकं नराधिप ।
देवानां तु पशु: पक्षो मतो राजन् वदस्वन: ।
देवानां तु मतं ज्ञात्वा वसुना पक्षसंश्रयात् ।
छागेनाजेन यष्टव्यमेवमुक्तं वचस्तदा ।
ततस्तस्मिन् मूहूर्तेऽथ राजोपरिचरस्तदा ।
अधो वै संबभूवाशु भूर्विवरगो नृप: ।।

(अ० शा० ३३७)

३५ सुरामत्स्या: मधुमांसमासवं कृसरौदनम् ।
धूर्तै: प्रवर्तितं ह्येतन्नैतद् वेदेषु कल्पितम् ।। (२६४/६)

३६ **साध्यदेवनारायण—**

(क) ये पूर्वे सन्ति साध्या देवाः। (पुरुषसूक्त ऋग्वेद)

(ख) अदितिः पुत्रकामाः साध्येभ्यो देवेभ्यो ब्रह्मौदनमपचत्।
(तै० सं० ६/५/६/१)

(ग) साध्यो वै नामदेवा आसन् पूर्वभ्योदेवेभ्यस्तेषां न किंचन स्वमासीत्।
(काठक० २६/७/१८)

(घ) पुरुषो ह नारायणोऽकामयत अति—
तिष्ठेयं···स तं पुरुषमेधं पंचरात्रं यज्ञक्रतुमपश्यत्। तमाहरत।
(श० ब्रा० १३/६/१/१)

(ङ) कृते युगे महाराज स्वायम्भुवेन्तरे।
नरो नारायणश्चैव हरिः कृष्णः स्वयम्भुवः।
(महा० १२/३३४/९)

आसुरीसम्पद् (गीतामें)—(असुरलक्षण)—

द्वौ भूतसर्गो लोकेस्मिन् दैव आसुर एव च।
देवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे श्रृणु।
प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरसुराः।
न शौचं नापि चाचारो न सतां तेषुविद्यते।
काममाधित्य दुष्पूरं दम्भमानमदान्विताः।
कामपभोगपरमा एतावदिति निश्चिताः।
इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।
इदमस्तीदमपि मे भविष्यति पुनर्धनम्।
असत्यप्रतिष्ठं ते जगदाहुनीश्वरम्।
ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽह बलवान् सुखी।
आढ्योऽभिजनवानस्मि कोन्योस्ति सदृशो मया।
अनेकचित्रविभ्रान्ता मोहजालसमावृताः।
असक्ताः कामभोगेषु पतन्ति नरेकऽशुचौ।
आत्मसंभाविताःस्तब्धा धनमानमदान्विताः।
यजन्ते नामयज्ञैस्ते दम्भेनाविधिपूर्वकम्॥
अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः॥
ममात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोभ्यसूयकाः।
आसुरीं योनिमापन्ना मूढा जन्मनि जन्मनि॥
(गीता)

३७ भारतेषु च वर्षेषु पंचस्वैतेष्विव द्वादशारंकालचक्रहेतुकालकर्षस्थितेः।
कालोहिद्विविधोऽवसर्पिण्युत्सर्पिणीविभेदतः।
अरा षडवसर्पिण्यां एकान्तसुषमादयः।
तमैकान्तः सुषमारश्चतस्रः कोटिकोटयः।
सागण्णां सुषमा तु तिस्रस्तत्तुकोटिकोटयः।
सुषमदुःषमा ते द्वै दुःषमसुषमा पुनः।
सैका सहस्रैर्वर्षाणां द्विचत्वारिंशतोमिता।
एकविंशतिरब्दानां सहस्राणि तु दुःषमा।
एकान्त दुःषमापिस्यात् तावद्वर्षप्रमाणिका ॥
तदैवमसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां च मीलिताः।
सागरोपमकोटीनां कोटयस्तु विंशतिः ॥
(त्रि० श० पुरुष, प्रथमपर्व १११-११७).

३८ उत्सर्पिणी युगार्धं पश्चादपर्पिणी युगार्धंच।
मध्ये युगस्य सुषमादावन्ते दुष्षमेन्दूच्चात् ॥
(आर्यभटीय कालक्रियापाद, ९)

इस गणना से चतुर्युग के १२००० वर्षों में से ६००० वर्ष युगार्ध

टिप्पणी—उत्सर्पिणी और युगार्ध (६००० वर्ष) अवसर्पिणी होता है। अतः उत्सर्पिणी—अर्वसिणी मूलरूप में ऐतिहासिक युगार्ध थे, जैन काल्पनिक कालगणना में उनका ऐतिहासिकरूप नष्ट हो गया।

३९ हिरण्यकशिपू राजा वर्षाणामर्बुदं बभौ।
तथा शतसहस्राणिह्यधिकानि द्विसप्ततिः।
अशीतिश्च सहस्राणि त्रैलोक्येश्वरोऽभवत् ॥
(ब्रह्माण्डपुराण २/३/७२/८९)

४० अयोध्या नाम नगरी तत्रासील्लोकविश्रुता।
मनुनामानवेन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ॥ (रामायण १/५/६)

४१ काश्यप्य इमाः प्रजाः (श० ब्रा०)
अस्ति पश्चिमतस्तस्य विदेहेषु महापुरम्।

४२ क्षितिप्रतिष्ठितं नाम क्षितिमण्डलसण्डनम् ॥
तत्र प्रसन्नचन्द्रोऽभून्निस्तन्द्रो धर्मकर्मसु।
तत्रासीत् सार्थवाहो धनो नामशोभनः ॥
असौ धनः सार्थवाहो वसन्तपुरमेष्यति ॥
(त्रि० श० पु० १/१/३५, ३६, ४६)

४३ तच्चैकसप्ततिगुणं परिवर्तं तु साधिकम्।

मनोरेतमधिकारंप्रोवाच भगवान् प्रभुः ।।
(ब्रह्माण्ड० १/२/३५/१७३)

स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते ।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते ।। (ब्रह्माण्ड० १/२/९)

४४ षड्विंशतिसहस्राणि वर्षाणि मानुषाणि तु । (१/२/२९/१६)
त्रीणिवर्षशतान्येव षष्टिवर्षाणि यानि तु ।
दिव्यः संवत्सरो ह्येष मानुषेण प्रकीर्तितः ।।
(ब्रह्माण्ड० २/२८/१६)

४५ अथ ह भगवानृषभदेवः……जयन्त्यामिन्द्रदत्तायामुभयलक्षणं कर्म समाम्नायाम्नातमभियुञ्जन्नात्मजानामात्मसमानानां शतं जनयामास ।
(भागवत० ५/४/८)

४६ (क) पृथुर्वैन्यो मनुष्याणां प्रथमोऽभिषिषिचे ।।
(श० ब्रा० ५/३/६/४)

(ख) पृथुर्वैन्य उभयेषां पशूनामाधिपत्यमाश्नुत । (जै० ब्रा० १/१८६)

(ग) आदिराजा तदा राजा पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।
अनुरागात् ततस्तस्य नाम राजेत्यजायत ।।
(हरिवंश० १/५/२९, ३१)

४७ (क) यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेयाः पितुरादेशकरा महाशालीना महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ।।

(ख) कर्मतन्त्रप्रणेतार एकाशीतिर्द्विजातयः ।।
(भागवत० ५/४/१३ व ११/२/१९)

४८ कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्धः पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रोऽथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ।
नवाभवन् महाभागा मुनयो ह्यर्थशंसिनः ।
श्रमणा वातरशना आत्मविद्याविशारदाः ।।
(भागवत० ११/२/२०-२१)

४९ सम्मानना—इत्यादि श्लोकद्वयं हिरण्यगर्भोक्तयोगशास्त्रवचनं विचिन्त्य—
(विष्णुपुराण, श्रीधरटीका २/१३)

५० ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्य गोप्ता स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठाम् अथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।।
(मुण्डक० १/१)

५१ ब्रह्मा स्मृत्वायुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत् ।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽपिपुत्रादिकान् मुनीन् ।
तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे ।।

५२ दिग्गजानां वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच पितामहः ।
उत्पत्स्यत्यचिरेणाथ गजबन्धुर्महामुनिः ।
आयुर्वेदस्य वेत्ता वै मत्कृतस्य भविष्यति ।।

५३ ......ब्राह्ममस्त्रमुदैरयत् ।।
सर्वास्त्रप्रतिघातार्थं विहितं पद्मयोनिना ।। (महाभारत)

५४ तानुवाच सुरान् सर्वान् स्वयम्भूभगवांस्ततः ।
ततोऽध्यायसहस्राणां शतं चक्रे स्वबुद्धिजम् ।
ततस्तां भगवान् नीतिं पूर्वं जग्राह शंकरः ।
बहुरूपो विशालाक्षः शिवः स्थाणुरुमापतिः ।।
संचिक्षेप ततः शास्त्रं महाशास्त्रं ब्रह्मणाकृतम् ।।
(महाभारत, शांतिपर्व ५८/२८, २९, ८३, ८९)

मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः ।
वसिष्ठश्च महातेजास्ते ऽि चित्रशिखण्डिनः ।।
(महाभारत १२/३३५/२९)

उशना बृहस्पतिश्चैव यदोत्पत्तौ भविष्यतः ।
तदा प्रवक्ष्यतः शास्त्रं युष्माभिभिरुद्धृतम् ।।
(म० १२/३३७)

५५ महादेवानुचरश्च नन्दी सहस्रेणाध्यायानां पृथक् कामसूत्रं प्रोवाच ।
(कामसूत्र १/१/८)

व्याकरणशास्त्र—

ब्रह्मा बृहस्पतये प्रोवाच, बृहस्पतिरिन्द्राय, इन्द्रो भरद्वाजाय...।
(ऋक्तन्त्र १/४)

५६ प्रथम मुनिकल्पितमवितथमलोक्य ग्रन्थविस्तरस्यार्थम् ।
आ ब्रह्मादिविनिःसृतमालोक्य ग्रन्थविस्तरं क्रमशः ।।
(बृहत्संहिता १/२, ५)

५७ भृगुरत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वकर्मा मयस्तथा ।
नारदो नग्नजिच्चैव विशालाक्षः पुरन्दरः ।।

ब्रह्मा कुमारो नन्दीशः शौनको गर्ग एव च ।
वासुदेवोऽनिरुद्धश्च तथा शुक्रबृहस्पती ।।
अष्टादशैतेऽविख्याता वास्तुशास्त्रोपदेशकाः ।।
(मत्स्यपुराण २५२/२-३)

५८ **अश्वशास्त्र—**
आराध्य देवं ब्रह्माणं प्राप्तवांस्तच्चिकित्सितम् ।
श्लोकाः शतसहस्राणि पंचविंशतिकानि च ।
सपादलक्षं तेनैतद् ब्रह्मणा परभाषितम् ।।
(शालिहोत्रसंहिता ६, २०)

५९ इतिहासपुराणप्रवचनकर्ता २८ वेदव्यासों की परम्परा—
(वायुपुराण, २३ अध्याय)

६० नाट्यशास्त्रं प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा यदुदाहृतम् ।।
(नाट्यशास्त्र १/१)

६१ सोऽभिषिक्तो महातेजा विधिवद्धर्मकोविदैः ।
आदिराज्ये तदा राज्ञां पृथुर्वैन्यः प्रतापवान् ।।
अकृष्टपच्या पृथिवी सिध्यन्त्यन्नानि चिन्तया ।
सर्वकामदुघा गावःपुटके पुटके मधु ।।
ततो वैन्यं महाराज प्रजाः समभिदुद्रुवुः ।
त्वं नो वृत्ति विधत्स्वेति महर्षिवचनात् तदा ।।
ततो वैन्यभयत्रस्ता गौर्भूत्वा प्राद्रवन्मही ।
तां पृथुर्धनुरादाय द्रवन्तीमन्वधावत ।।
ततः उत्सारयायास शैलाञ्छतशोऽथ सहस्रशः ।
धनुष्कोट्या तदा वैन्यस्तेन शैला विवर्धिताः ।।
इत्थं वैन्यस्तदा राजा महीं चक्रे समां ततः ।
मन्वन्तरेष्वतीतेषु विषमासीद् वसुन्धरा ।
चाक्षुषस्यान्तरे पूर्वमासीदेवं तदा किल ।
प्रविभागः पुराणां च ग्रामाणां वा तदाभवत् ।
न सस्यानि न गोरक्षा न कृषिर्न वणिक्पथः ।
वैन्यात्प्रभृति राजेन्द्र सर्वस्यैतस्य संभवः ।।
(हरिवंशपु० १/५, ६ अध्याय)

६२ यमस्य मा यम्यं कामं आगन्त्समाने योनौ सहशेय्याय ।

जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां विचिद् वृहेव रथ्येव चक्र ।।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबन्धू यमीर्यमस्य विभृयादजामि ।
आघाता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि ।
उप बर्बहि वृषभाय बाहुमन्यमिच्छस्व सुभगेपति मत् ।
न वा उते तन्वा तन्वं सपपृच्यां पापमाहुर्यः स्वसारंनिगच्छात् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ।।

(ऋग्वेद १०/१०)

६३ प्राचीनबर्हिर्भगवान् महानासीत् प्रजापतिः ।
सवर्णाऽऽधत्त सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ।।
सर्वे प्रचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः ।।
दशभ्यः प्रचेतेभ्यो मारिषायां प्रजापतिः ।
दक्षो जज्ञे महातेजाः सोमस्यांशेन भारत ।।

(हरिवंश० १/२/३१, ३३, ४१)

२

भरत और बाहुबली

कितनी ऐतिहासिकता—

ऋषभ के सौ या अनेकपुत्रों का उल्लेख वैदिक एवं जैनपरम्परा में समानरूप से मिलता है। इन पुत्रों के नामादि हम पूर्व अध्याय में लिख चुके हैं। जैनवाङ्मय (पुराणादि) में भरत और बाहुबली के संघर्ष का बड़े विस्तार से वर्णन मिलता है और उनके वैराग्यादि की भी बड़े विस्तार से चर्चा है। इस अध्याय में हम संक्षेप में इस घटनाक्रम की संक्षेप में समीक्षा करेंगे कि इनमें कितनी सचाई और कितनी कल्पना हो सकती है।

भरत (भारत) क्षेत्र—

वैदिकपरम्परा (इतिहासपुराण) तथा जैनवाङ्मय में समानरूप से कहा गया है कि इस देश का नाम ऋषभपुत्रभरत के नाम पर भारतवर्ष[1] पड़ा। इसमें कोई विप्रतिपत्ति या आपत्ति या मतभेद नहीं है। मतभेद या यह मत कि इस देश का नाम भारतवर्ष शाकुन्तल दौःष्यन्तिभरत के नाम पर पड़ा, यह केवल आधुनिक कल्पना या भ्रान्ति है, जिसका किसी भी प्राचीन प्रमाण से समर्थन नहीं होता, अतः सत्य या तथ्य स्पष्ट है। भरत के पितामह—नाभि या अजनाभ के नाम पर भी इस देश को 'अजनाभवर्ष'[2] कहा जाता था अथवा संक्षिप्त या मूलनाम 'नाभिवर्ष' था और संभवतः बाइबिल में 'नाभिदेश' को 'नोड'[3] कहा गया है, जहां 'स्वायम्भुवमनु (आदम) उत्पन्न हुये और निवास करते थे। इसी 'भरतक्षेत्र' या भारतवर्ष को पुराणों में—'हिमवान्वर्ष' या हैमवतवर्ष कहा गया है। स्पष्ट है कि स्वायम्भुवमनु

(आदम) और उनकी सन्तति—नाभि, ऋषभ भरत आदि की कर्मभूमि हिमालय के निकट भारतभूमि ही थी। अतः हिमालय और भारतवर्ष ही आदिमानवसंस्कृति का उद्गम था। यह तथ्य स्वयंसिद्ध है।

भरत का साम्राज्य, दिग्विजय और राजधानी-काल्पनिक ?

हम प्रथम अध्याय में सप्रमाण स्पष्ट कर चुके हैं कि विधिवत् 'राज्य संस्था' का प्रादुर्भाव आदिराजा पृथुवैन्य के समय (१६००० वि० पू०) हुआ, उससे पूर्व 'प्रजापति संस्था' ही किसी न किसी रूप में थी, जो प्रजापति कश्यप एवं उनके पौत्र वैवस्वत मनु (१३००० वि० पू०) तक रही।

प्रजापतिसंस्था—

स्वायम्भुव मनु प्रियव्रत नाभि, ऋषभ, भरत आदि महान् प्रजापति ही थे, जिनसे विपुल मानवीप्रजा उत्पन्न हुई और वे ही अपनी सन्तति का अनुशासन और संचालन करते थे—अतः प्रजा उत्पत्ति एवं प्रजापालन के कारण 'प्रजापति' कहे जाते थे। प्रजापति कश्यप वर्तमान मानवीप्रजा के सबसे बड़े और महत्तम प्रजापति थे, जिनकी सन्तति का ही आज विश्व में सर्वाधिक प्रसार (निवास) है, यद्यपि पुराणों में 'प्राचेतसदक्ष' को सबसे बड़ा प्रजापति बताया गया है, जो कश्यप के गुरु और श्वसुर थे। सभी दशजन या पंचजन जातियां (असुर, देव, नाग, गन्धर्व और पितर) कश्यप से उत्पन्न हुई, जिनका आज भी विश्व में प्रभुत्व है, अतः कश्यप ही महत्तम प्रजापति थे।

अतः जैनपुराणों में उल्लिखित भरत का साम्राज्य, दिग्विजय एवं राजधानी एक उत्तरकालीन कल्पनामात्र है। भरत के समय (२७००० वि० पू०) सम्पूर्ण पृथ्वी पर कुल जनसंख्या कुछ सहस्र या कुछ लाख से अधिक नहीं हो सकती, भले ही प्रियव्रत, आग्नीध्र, नाभि, ऋषभ और भरत के सौ-सौ क्या हजार-हजार पुत्र भी रहे हों, क्योंकि भरत, स्वायम्भुव मनु की छठी पीढ़ी में ही हुये थे। अतः कुछ लाख की जनसंख्या—इतनी बड़ी पृथिवी पर बिखर जाय तो न तो साम्राज्य ही बन सकता है और न संघर्ष। तथापि यह माना जा सकता है कि पृथिवी पर कुछ अधिक उपयोगी भूखण्ड उनके अधिकारक्षेत्र हों। अतः जैनपुराणों में जिन जनपदों (राज्यों) और राजधानियों (नगरों-अयोध्या, हस्तिनापुर, तक्षशिला, पोदनपुर) का उल्लेख है, उनका अस्तित्व ऋषभ या भरत के समय था ही नहीं। इन नगरों का नामकरण और अस्तित्व भरत के १५ से २० हजार वर्षों पश्चात् हुआ। यथा शाकुन्तलभरत की छठी

पीढ़ी में राजा हस्ती हुआ, जिसके नाम पर ही हस्तिनापुर[४] प्रथित हुआ। अयोध्या[५] को वैवस्वतमनु ने बसाया, जो प्राचीनतम ज्ञात नगर है, वह भी ऋषभ और भरत से न्यूनतम १४००० वर्षों पश्चात बसाया गया। पोदनपुर[६] को ऐक्ष्वाक राजा अश्मक ने (६००० वि० पू०) बसाया और तक्षशिला[७] नगरी को दाशरथि राम के अनुज भरत के पुत्र तक्ष ने बसाया—आज से लगभग ७००० वर्ष पूर्व तथा ऋषभ-भरत से २२००० वर्षों पश्चात्।

अतः आर्षभ भरत और अनुज बाहुबली के समय न अयोध्या थी, न पोदनपुर या तक्षशिला। तथापि भरत का अधिकारक्षेत्र या कर्मभूमि हिमालय-हिन्दकुश पर्वतमाला (अफगानिस्तान-तक्षशिला) की प्राचीनभूमि रही हो, लेकिन उस समय उस स्थान का नाम तक्षशिला नहीं था। बहुत बाद के जैन राजाओं का सम्बन्ध पोदनपुर से रहा। अतः पुराणकारों ने बाहुबली क सम्बन्ध पोदनपुर से जोड़ दिया। तथापि यह संभव है कि ऋषभ या बाहुबली की तपःस्थली दक्षिणभरत में रही हो, परन्तु इसका कोई साधक अकाट्य प्रमाण आज नहीं मिलता, सिवाय इसके कि बाहुवली की मूर्ति कर्णाटक में मिलती है। यह विशाल प्रस्तर मूर्ति कितनी प्राचीन है, इस तथ्य को विद्वद्गण जानते हैं।

राजधानी के समान भरत की दिग्विजय और चक्रवर्ती पद की बातें कोरी कल्पनायें ही ठहरती हैं जैसा कि हम बता चुके हैं कि पृथुवैन्य पृथिवी का प्रथम सम्राट् (राजा) था और मान्धाता, हैहय अर्जुन, अलर्क, सगर आदि चक्रवर्ती सम्राट बहुत बाद में हुये। सगर आदि उत्तरवर्ती चक्रवर्तियों के अनुकरण पर भरत (आर्षभ) की दिग्विजय और युद्धों की कल्पनायें की गयीं। अतः दिग्विजयवर्णन में ऐतिहासिक तथ्य लेशमात्र भी नहीं है और जिन जनपदों आदि की विजयों का उल्लेख मिलता है, उन राज्यों का अस्तित्व होने का प्रश्न ही नहीं, तब दिग्विजय की कथा भी कल्पना ही ठहरती है।

भरतबाहुबलीसंघर्ष—

इस संघर्ष का संकेतमात्र भी वैदिकपुराणग्रन्थों में नहीं है, लेकिन जैन पुराणों में बड़े विस्तार से इस संघर्ष का वर्णन मिलता है। तदनुसार दृष्टियुद्ध, वाग्युद्ध, बाहुयुद्ध और मुष्टियुद्ध में भरत से बाहुबली जीतते हैं।

यद्यपि उस समय चक्रवर्ती सम्राट आदि जैसे पद न थे और न दिग्विजय आदि की परम्परा शुरू हुई थी क्योंकि राज्यसंस्था ही नहीं थी, तथापि दो भ्राताओं में भूमि अधिकार अथवा अन्य प्रकार की सत्तालिप्साहेतु, संघर्षया

युद्ध हो सकता है। अतः भरत-बाहुबली युद्ध का कोई रूप संभव है, परन्तु वर्तमान जैनपुराणों जिस प्रकार युद्ध दिखाया है, वह काल्पनिक ही है।

भरत द्वारा वर्णव्यवस्था-कल्पनामात्र—

जैनपुराणों में उल्लिखित है कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वर्णों की स्थापना भगवान् ऋषभदेव ने की और ब्राह्मणवर्ण और ब्राह्मणकर्म की प्रस्थापना भरत ने की। यह सब कल्पनामात्र है। परन्तु, इस कल्पना के भी कुछ कारण हैं। आदिकाल से ही जैनसम्प्रदाय के अनुयायी प्रायेण (अधिकतर) ब्राह्मणेतर वर्ण-क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र होते आये हैं। अतः इन तीनों वर्णों की व्यवस्था को उत्तरकालीन आचार्यों ने सनातन या ऋषभ द्वारा प्रवर्तित मान लिया तथा भरत के पुत्र या वंशज मरीचि और मरीचि के वंशज प्रजापति परमेष्ठी कश्यप यज्ञसंस्था या वेद(ब्रह्म)धर्म के प्रवर्तक थे, अतः जैनाचार्यों ने भरत को 'ब्राह्मणवर्ण' का सुदृढकारक कहा। यद्यपि तथ्य यह है कि भरत के पश्चात् बीससहस्र तक भी जाति के आधार पर वर्णव्यवस्था नहीं थी। उदाहरणार्थ-कश्यप-अदिति के द्वादशपुत्रवरुण, इन्द्र, विवस्वान्, विष्णु आदि अपने जीवन के पूर्वार्ध में ब्राह्मणकर्म-शास्त्ररचना एवं अध्यापन-पौराहित्यकर्म करते थे, जीवन के उत्तरार्ध में वे क्षत्रियकर्म करके राजा (शासक) बने। उनका समय आज से १४००० से १२००० वर्ष पूर्व था। उसके बहुतकाल पश्चात् ययाति (९००० वि० पू०) तथा मान्धाता (८००० वि० पू०) तक भी जन्म के आधार पर वर्णव्यवस्था नहीं थी। यहां तक कि विश्वामित्र (७००० वि० पू०) और परशुराम (६००० वि० पू०) तक भी जाति व्यवस्था सुदृढ़ नहीं हुई थी, तथापि उससमय (परशुराम के समय) जाति व्यवस्था बन गई थी और सुदृढ तो रामदशरथि (५००० वि० पू०) के समय अर्थात् आज से ७००० वर्ष पूर्व और भरत से २२००० वर्ष पश्चात् ही सुदृढ हो पायी थी। अतः जैनग्रन्थों का यह कथन कि भरत ने 'ब्राह्मणवर्ण व्यवस्था सुदृढ़ की' कोरी कल्पना है तथा उस युग की भावना को परिलक्षित करता है जब जैनशास्त्रों की अन्तिम वाचना गुप्तकाल (चौथीशती विक्रम) में हुई। गुप्तकाल में ब्राह्मणवर्ण की व्यवस्था अति सुदृढ़ थी (हो गयी थी)।

इसी प्रकार भागवतपुराण' (५/४) का यह उल्लेख कि 'ऋषभ के ८१ पुत्र ब्राह्मणधर्म के पालक थे और—कवि, पिप्पलायन आदि १९ पुत्र भागवत-धर्म के अनुयायी थे, निस्सार हैं। इनमें १९ पुत्र श्रमणधर्म के अनुयायी और शेष ८१ प्रवृत्तिमार्गी हों, यह संभव है। क्योंकि ऋषभ या भरत के समय न

ब्राह्मणधर्म था और नहीं भागवतधर्म। परन्तु निवृत्तिमार्ग (श्रमणधर्म) का प्रवर्तन ऋषभ और कपिल ने कर दिया था और भरतपुत्र मरीचि ने किसी प्रकार का कर्मकाण्ड प्रवर्तित कर दिया था, यद्यपि यह ज्ञात नहीं कि उसका स्वरूप क्या था? यज्ञसंस्था का प्रवर्तन तो भरत और मरीचि (२७००० वि० पू०) के बहुतकाल पश्चात् प्राचेतसदक्ष और कश्यपसंज्ञक ब्रह्माद्वयी ने १४००० वि० पू० में किया। यद्यपि उस समय की यज्ञविधियों का यथार्थ-स्वरूप जानना आज दुष्कर या असंभव ही है, परन्तु यज्ञों में पशुवध का प्रारम्भ (इन्द्र) काश्यप और बृहस्पति ने आज से १२००० वर्ष पूर्व कर दिया था, जिसका विरोध उपरिचरवसु के यज्ञ में देवर्षि नारद एवं सप्तर्षियों ने किया।[९] हिंसामययज्ञ के प्रारम्भ से ही उसका विरोध भी शुरू हो गया था तथापि उत्तरकाल में इसकी अति प्रवृद्धि हो गयी तथा श्रौतसूत्रों द्वारा इनकी चरम परिणति हुई। तब महावीर और बुद्ध ने इनका घोर विरोध किया, तब यज्ञसंस्था समाप्ति की ओर बढ़ने लगी और आज जटिल यज्ञों के नाम मात्र कोई कट्टर ब्राह्मण भी नहीं जानता। उसका विधिविधान तो बहुत दूर की बात है।

भरत की सन्तति—

जैनपुराणों में भरत का उत्तराधिकारी पुत्र 'अर्ककीर्ति' कहा गया है और 'मरीचि' को भी भरत का ही पुत्र बताया गया है। ब्राह्मणपुराणों 'मरीचि' ऋषि को स्वयंभू के दश मानसपुत्रों में प्रथम बताया गया है। यह उत्तर-कालीन कल्पना है। जैनपुराणों में यह ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित रह गया है कि 'मरीचि' भरत के पुत्र थे। मरीचि के वंशज कश्यप के गोत्र (वंश) में महान् प्रजापति (१२००० वर्ष पश्चात्) परमेष्ठी काश्यप ब्रह्मा हुये। इस विषय की चर्चा मैंने अपने ग्रन्थ 'पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम' महाग्रन्थ (अध्याय २, पृ० २९९) में की है।

स्वयंभू के एकमात्र पुत्र (मानसपुत्र) स्वायम्भुवमनु थे। यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। इसकी पुष्टि बाइबिल से भी होती है। बाइबिल में आदम का कोई भ्राता नहीं है, केवल पुराणों में स्वायम्भुवमनु के ९ भ्राता (नवब्रह्मा) मरीचि आदि कथित हैं। यह उत्तरकालीन कल्पना है। महान् प्रजापतियों को ब्रह्मा (स्वयंभू) का मानसपुत्र कहने की प्रवृत्ति महाभारत-काल से पूर्व ही उत्पन्न हो गयी थी, यथा अथर्ववेद[१०] (५/५४) में कश्यप को स्वयम्भू और ब्रह्मा कहा गया है, जबकि सभी पुराण कश्यप को 'मरीचिपुत्र'

कहते हैं। अतः मरीचि, स्वयम्भू के मानसपुत्र नहीं, भरत के पुत्र थे। तथा भृगु आदि अन्य ब्रह्मा भी किसी के पुत्र थे, यह तथ्य ब्राह्मणपुराणों में लुप्त है। इस प्रकार के अनेक तथ्य अर्वाचीनतर जैनपुराणों में सुरक्षित है, जबकि ये तथ्य ब्राह्मणपुराणों में लुप्त हो चुके हैं या उनपर कल्पना का रंग चढ़ा दिया गया है। इन तथ्यों का यथाप्रसंग यथास्थान संकेत करेंगे।

भागवतपुराण[११] (५/७/३) में विश्वरूपदुहिता पंचजनी पत्नी से भरत के पांच पुत्र कथित हैं—सुमति, राष्ट्रभृत्, सुदर्शन, आवरण और धूम्रकेतु। जैनपुराणों के समान भागवतपुराण के पर्याप्त नाम भी प्रायः परिवर्तित या अपूर्ण या काल्पनिक होते हैं। ब्राह्मणपुराणों में सर्वसम्मति से 'सुमति' भरत का ज्येष्ठ पुत्र था, शेषनामों के विषय में कहना कठिन है कि वे कितने मूल या ऐतिहासिक हैं। 'सुमति' को भागवतपुराण में द्वितीय जैन तीर्थंकर बताया है, जिसकी चर्चा आगे करेंगे।

भरत का वैराग्य—

ब्राह्मण और जैन दोनों के वाङ्मय में भरत के वैराग्य की समानरूप से चर्चा है। विष्णुपुराण[१२] एवं भागवतपुराण[११] में 'जडभरत' नाम से भरत के तीन जन्मों का आख्यान है।

विष्णुपुराण (२/१३) के अनुसार भरत (आर्षभ) भगवान् में चित्त लगाये चिरकालतक शालग्राम क्षेत्र में निवास किया। भगवद्भक्ति में लीन होते हुये भी भरत मृगशावक का पालन करते हुये, उसमें आसक्त हो गये, राज्यभोग, समृद्धि एवं परिवार को त्यागने वाले भरत की आसक्ति मृग में हो गयी। अतः मृगासक्तिभावना के कारण जम्बूमार्ग[१४] कालजंजर पर्वत में भरत का एकमृग के रूप में ही जन्म हुआ। कर्मक्षय के अनन्तर वह पूर्व शरीरधारी मृग पुनः एक ब्राह्मण के रूप में जन्मा। वह ऋषभ के समान एक श्रमण (परिव्राजक) बन गया। इसी कथानक में आगे चलकर भरत (तृतीय जन्म में ब्राह्मण) सौवीरनरेश रहूगण की शिविका ढोता है और भरत सौवीर नरेश को आत्मज्ञान सिखाते हैं। इस जन्म में उनकी प्रसिद्धि 'जडभरत' के नाम से ही हुई।

उपर्युक्त प्रसंग में शालिग्राम और जन्ममार्ग का उल्लेख आता है, इससे स्पष्ट है कि भरत का सम्बन्ध (निवास) कश्मीर और जम्बू से था। आज भी कश्मीर में शालिमार (शालिमार्ग) और जम्बू (जम्बूमार्ग) हैं। अतः भरत और बाहुबली का सम्बन्ध हिमालयक्षेत्र (जम्बूकश्मीर अफगानिस्तान, जहां प्राचीन तक्षशिला थी) से ही था, न कि दक्षिण भारत से (पोदनपुर से)।

द्वितीय अध्याय के उद्धरण

१. (क) भरताद् भारतंवर्षं भरतात् सुमतिस्त्वभूत् ।

(अग्निपुराण १०/१२)

(ख) हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय पिताददौ ।
तस्मात्तु भारतंवर्षं तस्य नाम्ना महात्मनः ।।

(मार्कण्डेयपुराण ५०/४२)

(ग) हिमाह्वं दक्षिणं वर्षं भरताय न्यवेदयत् ।
तस्माद् भारतं वर्षं नाम्ना विदुर्बुधाः ।।

(वायुपुराण ३३/५२)

(घ) अभिषिच्य सुतं वीरं भरतं पृथिवीपतिः ।
ततश्च भारतं वर्षमेतल्लोकेषु गीयते ।।

(विष्णुपुराण २/१/२९)

(ङ) आर्षभो यस्य नाम्नेदं भरतखण्डमुच्यते ।।

(नारदपुराण ४८/५)

जैनपुराण—

(च) तन्नाम्ना भारतं वर्षमितिहासीज्जनास्पदम् ।
हिमाद्रेरासमुद्राच्च क्षेत्रं चक्रभृतामिदम् ।।

(आदिपुराण १५/१५९)

(छ) तथ्य भरहो भरहवास चूड़ामणि तस्सेव नामेण इहं भारहवासंति पव्वच्चति ।

(वासुदेवहिण्डी, पृ० १८६)

२. अजनाभं नामैतद् वर्षं भारतमिति यत आरभ्य व्यपदिशन्ति ।

(भागवतपुराण ५/६/३)

३. नाभि (Nod)—Then Cain went away from the presence of Lord and dwelt in the land of 'NOD' east of Eden (Holy Bible, p. 4)

४. सुहोत्राद्हस्ती य इदं हस्तिनापुरमावासयामास ।
(विष्णुपुराण ४/१६/२८)

५. अयोध्या नाम नगरी यत्र लोकविश्रुता ।
मनुना मानवन्द्रेण या पुरी निर्मिता स्वयम् ।। (वा० रा० १/५/६)

६. अश्मको नाम राजर्षिः पौदन्यं यो न्यवेशयत् ।
(महाभारत १/१७६/४७)

७. हतेषु तेषु सर्वेषु भरतः कैकयीसुतः ।
निवेशयामास तदा समृद्धे द्वे पुरोत्तमे ।
तक्षं तक्षशिलायां तु पुष्कलं पुष्कलावते ।
गन्धर्वदेशे नगरे गान्धारविषये च सः ।।
(वा० रा० ७/१०१/१०-११)

८. येषां खलु महायोगी भरतो ज्येष्ठः श्रेष्ठगुण आसीद्येनेदं वर्षं भारतमिति व्यपदिशन्ति । तमनु कुशावर्त इलावर्तो ब्रह्मावर्तो मलयः केतुर्भद्रसेन इन्द्रस्पगविदर्भः कीकट इति नव नवतिप्रधानाः ।
कविर्हरिरन्तरिक्षः प्रबुद्ध पिप्पलायनः ।
आविर्होत्रथ द्रुमिलश्चमसः करभाजनः ।।
इति भागवत दर्शना नव महाभागाः···यवीयांस एकाशीतिर्जायन्तेया···
महाश्रोत्रिया यज्ञशीलाः कर्मविशुद्धा ब्राह्मणा बभूवुः ।।
(भा० पु० ५/५/१०-१३)

९. द्रष्टव्य—महाभारत, शान्तिपर्व अध्याय ३३६ व ३३७

१०. कालो हि ब्रह्म भूत्वा बिभर्ति परमेष्ठिनम् ।
कालः प्रजा असृजत कालो अग्ने प्रजापतिम् ।
स्वयम्भू कश्यपः कालात्······। (अथर्व० ५/५४)
'परमेष्ठी, प्रजापति, स्वयम्भू और ब्रह्मा—ये कश्यप के ही विशेषण थे ।'

११. भरतस्तु······पंचजनीं विश्वरूपदुहितरमुपयेमे ।
तस्यामु ह वा आत्मजात् कार्त्स्न्येनसुरूपानात्मनः
पंच जनयामास ···सुमति राष्ट्रभृतं सुदर्शमावरणं धूम्रकेतुमिति ।
(भा० पु० ५/७/१-३)

१२. विष्णुपुराण अंश २ अध्याय १३ द्रष्टव्य ।

१३. भागवतपुराण स्कन्ध ५, अध्याय ८ से १४ पर्यन्त ।

१४. (क) ऋषभोऽददात् श्रीःपुत्रे शाल्यग्रामे हरिंगतः ।।

(अग्निपुराण १०/१२)

(ख) शालग्रामे महाभागो भगवन्न्यस्तमानसः
स उवास चिरंकालं मैत्रेय पृथिवीपतिः ।
जम्मूमार्गे महारण्ये जातो जातिस्मरो मृगः ।।

(विष्णुपुराण २/१३/७, ३२)

३

तीर्थंकरों का ऐतिहासिक कालक्रम

विद्यमान जैनवाङ्मय में क्रम-व्यतिक्रम—

वर्तमान जैनवाङ्मय में तीर्थंकरों का जो क्रम प्रदर्शित किया गया है, वह बहुत अस्त-व्यस्त है—ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से। इसके कारण पूर्व संकेत किये जा चुके हैं कि जैनशास्त्रपरम्परा अनेक बार शताब्दियों ही नहीं अनेक सहस्राब्दियों के अन्तराल से छिन्न-भिन्न हुई—यथा अकाल (दुर्भिक्ष), विदेशी (म्लेच्छ) आक्रमण, वैष्णव व शैवों द्वारा जैनश्रमणों का घात, जैसे कारणों से जैनपरम्परा अनेकश उच्छिन्न हुई. अतः जैनवाङ्मय अनेक बार लुप्त या समाप्त हुआ। विस्मृति के अनन्तर मौखिक परम्परा एवं यथाकथंचित्स्मृति से जैनश्रमणों ने जो आचार्यपरम्परा या तीर्थंकर परम्परा बनाई, स्वभावतः उसमें व्यतिक्रम और कल्पना का मिश्रण पर्याप्त रहा। भ्रान्तियों एवं कल्पनाओं का वैदिक (ब्राह्मण) परम्परा में भी अभाव नहीं है, ये पर्याप्त हैं, तथापि यह शास्त्रपरम्परा पूर्णतः कभी उच्छिन्न नहीं हुई और राजाश्रय भी सर्वाधिक ब्राह्मणशास्त्रों को मिला। अतः इस तथ्य को आधुनिक जैनशोधविद्वान भी मानते हैं कि ब्राह्मण(वैदिक)शास्त्रपरंपरा जैनपरम्परा से प्राचीनतर एवं अपेक्षाकृत अधिक प्रामाणिक है तथा इसमें ऐतिहासिक तथ्य अधिक सुरक्षित है। जैनपरम्परा की अनेक कमियों के बावजूद अनेक सत्यतथ्य इस (जैनपरम्परा) में सुरक्षित रह गये हैं, जो वैदिकपरम्परा में या तो लुप्त हो गये हैं या उन पर भ्रान्ति या कल्पना का रंग चढ़ा दिया है, जैसाकि मैंने एक उदाहरण (पूर्वअध्याय में) मरीचि का दिया कि ब्राह्मणपरम्परा में उनको ही नहीं, उनके वंशज परमेष्ठी कश्यप

(काश्यप) को भी स्वयम्भू या ब्रह्मा का मानसपुत्र बताया गया है जबकि जैन परम्परा में यह ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित है कि मरीचि, आर्षभ भरत के पुत्र (या वंशज) थे। इसी प्रकार रामकथा या कृष्णकथा के सम्बन्ध में अनेक तथ्य (ऐतिहासिक) जैनपरम्परा में सुरक्षित हैं, जो वैदिकपरम्परा में लुप्त या भ्रान्तिपूर्ण हैं। कालगणना और प्राचीनपुरुषों की आयु का विवरण दोनों (जैन व वैदिक) सरम्परा में लुप्त या भ्रष्ट हो गया है, लेकिन मैंने पुराणोल्लिखित 'परिवर्तयुगगणना' की मौलिकनवीनखोज द्वारा प्राङ्महाभारतकालीन कालगणना का आंशिक उद्धार कर दिया है तथा प्राचीन महापुरुषों, यथा स्वायम्भुव मनु (आदम), मरीचि (महालीज) परमेष्ठी (कश्यप-मेथुसुबाहू), वैवस्वत मनु (नूह) आदि की दीर्घायु का ऐतिहासिक विवरण बाइबिल (ओल्ड टेस्टामेन्ट) में सुरक्षित रह गया है जो विद्यमान इतिहासपुराणों (वैदिक) में अनुपलब्ध (लुप्त) है।

महावीरोत्तर कालगणना में महाभ्रान्तियां—

शोध में या इतिहास में सत्य को मान्यता मिलती है—उसी का आदर होना चाहिए। सभी प्रकार का मिथ्यातत्व या भ्रान्तियाँ त्याज्य हैं। स्वयं महावीरनिर्वाण की तिथि वर्तमानजैनपरम्परा में भ्रान्तिपूर्ण है। परन्तु एक प्राचीन जैनशास्त्र तित्थोगाली के अनुसार महावीर कल्कि (यशोधर्मा मालव सम्राट) से २००० वर्ष पूर्व निर्वाण को प्राप्त हुए, एतदनुसार महावीर का निर्वाण, विक्रम से लगभग १७५० वर्ष पूर्व हुआ। इसीप्रकार पालक, नन्दवंश, मौर्यवंश, पुष्यमित्र, गर्दभिल्लशकराज आदि की वंशावली और राज्यकाल वर्तमान जैनपरम्परा में कितना भ्रामक है, यह प्रायः सभी इतिहासज्ञ जानते हैं। जैन ग्रन्थों में शकराज ४ वर्षों का बताया गया है, जबकि पुराणों (वैदिक) में १८ शक राजाओं का राज्यकाल ३८० वर्षों का उल्लिखित है। अतः विद्यमान जैनपरम्परा में महावीर और उसके बहुत पश्चात्काल की कालगणना में ही अतिभ्रान्तियां हैं, तब महावीर से पूर्व के तीर्थंकरों के सम्बन्ध में वह कालगणना कितनी प्रामाणिक होगी, यह कल्पना सहज ही की जा सकती है। इस सोपपत्तिक विवेचन का यही आशय है।

द्वितीय तीर्थंकर-सुमति या अजित ?

विद्यमान जैनशास्त्रों में सर्वाधिक जैनतीर्थंकर अयोध्या के राजा और इक्ष्वाकुवंश के बताये गये हैं, यह कथन पर्याप्त अंश में सत्य है, परन्तु आदि तीर्थंकर ऋषभ के समय न अयोध्या थी और न इक्ष्वाकुवंश, इस तथ्य का

हम पूर्व संकेत कर चुके हैं कि ऋषभ के लगभग १७००० वर्ष पश्चात् वैवस्वत मनु के ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु हुए, जिनसे इक्ष्वाकुवंश चला और अयोध्या नगरी वैवस्वतमनु ने स्वयं बसाई। अतः जैनपरम्परा में अयोध्या और हस्तिनापुर का बहुत महत्व माना गया है, जो बहुत (ऋषभ से) बाद में हुआ।

विद्यमान जैनपरम्परा में 'अजित' को द्वितीय तीर्थंकर माना गया है, जो ऐक्ष्वाकसम्राट् सगर चक्रवर्ती के समय में हुए। ऋषभदेव और सगर में २१००० वर्षों का अन्तर था। अतः इक्कीस सहस्रवर्षों में किसी तीर्थंकर न होना, न केवल आश्चर्यजनक, अपितु अविश्वसनीय प्रतीत होता है। इस भ्रान्तिमयी अवधारणा (कल्पना) का एक कारण वैदिकपरम्परा (विद्यमान) में 'कपिलाचार्य' का कथानक भी हो सकता है, क्योंकि वैदिकपरम्परा के अनुसार ऋषभकालीन कपिलाचार्य सगर के समय में भी प्रदर्शित किये गये हैं, कि उन्होंने सगर के साठ हजार पुत्रों को भस्म किया था, परन्तु जैन परम्परा में यह सत्य तथ्य (सम्भवतः) सुरक्षित रह गया है कि सगर के साठ हजार पुत्र मणिकेतु नाग ब्राह्मण द्वारा भस्म किये गये थे। इस तथ्य की और समीक्षा करेंगे।

अतः प्रथम तीर्थंकर ऋषभ और द्वितीय तीर्थंकर अजित में २१००० वर्ष का अन्तराल बोधगम्य ऐतिहासिक तथ्य न ीं है। सम्भवतः कपिल के काल्पनिक अस्तित्व एवं सगर के अयोध्या से सम्बन्ध के कारण यह भ्रान्तिमयी धारणा हुई। अतः भागवतपुराण की परम्परा ही सत्य ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता है कि द्वितीय तीर्थंकर 'सुमति' ही थे, जो भरत के पुत्र एवं ऋषभ के पौत्र थे—

'भरतस्यात्मजः' सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित् पाखण्डिन ऋषभपदवीमनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्या कलौ कल्पयिष्यन्ति। तस्माद् वृद्धसेनायां देवताजिन्नाम पुत्रोऽभवत्।'

(५/१५/१-२)

(क) यह तथ्य जैन एवं अन्य इतिहासज्ञ जानते हैं कि तीर्थंकरों के नाम के साथ 'नाथ' (स्वामी) शब्द जोड़ने की प्रथा बहुत उत्तरकाल में हुई, अतः मैं प्रायः 'नाथ' रहित नामों का प्रयोग करूँगा।

'भरत' का 'सुमति' नाम का पुत्र हुआ, जिसको कलियुग में पाखण्डी (अवैदिक श्रमण), ऋषभ पदवी का अनुवर्तमान (तीर्थंकर) मानकर अपनी

बुद्धि से देवता मानकर पूजेंगे। सुमति की (पत्नी) वृद्धसेना से देवताजित् (देवता+अजित्) नाम का पुत्र उत्पन्न हुआ।'

यह सम्भव है कि यहाँ उल्लिखित देवताजित (अजित) का श्रमण संप्रदाय से सम्बन्ध रहा, जो स्वाभाविक था, अतः नामसाम्य के कारण सगरकालीन अजित् को तीर्थंकर मानने की भ्रान्ति हो गई हो।

अतः द्वितीय तीर्थंकर २१००० वर्षों के अन्तराल में नहीं, बल्कि ऋषभ से एक सहस्राब्दी के अन्तराल से हुए, क्योंकि आदिकाल में महापुरुषों की आयु ५०० वर्षों के लगभग अवश्य होती थी। ऋषभ और भ त दीर्घजीवी थे ही और उनके पुत्र सुमति (द्वितीय तीर्थंकर) और सुमतिपुत्र अजित भी दीर्घजीवी थे, इसमें कोई संशय नहीं होना चाहिए।

अतः द्वितीय तीर्थंकर सुमति का समय ऋषभदेव से एक सहस्राब्दी पश्चात् २६००० वि० पू० या आज से २८००० वर्ष पूर्व था और से आठ सहस्र पूर्व था अर्थात् सुमति से २०००० वर्षों पश्चात्।

विद्यमान (वर्तमान) जैनपरम्परा में सुमति को ऋषभदेव के वंश और गोत्र का बताया गया। अयोध्या के राजा (ऐक्ष्वाक) मेघरथ (या मेघप्रभ) की महिषी मंगला से उनका जन्म कथित है।

विद्यमान वैदिक और जैनपरम्परा के तुलनात्मक अध्ययन से सत्य तथ्य क्या हो सकता है, यह विद्वान् स्वयं निर्णय करें। यह ऐतिहासिकशोध का विषय है, साम्प्रदायिक या धार्मिक वितण्डावाद से इसका कुछ भी सम्बन्ध नहीं।

तृतीय तीर्थंकर धर्म (प्रजापति) या सम्भव (नाथ)—

जैनपरम्परा के अनुसार तृतीय तीर्थंकर संभवनाथ, श्रावस्ती के राजा दृढ़राज्य के पुत्र थे। इनकी पहचान वैदिकपुराणों से आगे की जाएगी। परन्तु मेरी ऐतिहासिक शोध के अनुसार तृतीय तीर्थंकर धर्मसंज्ञक महान् प्रजापति थे, जो प्राचेतस दक्ष के जामाता, नारायण साध्यदेव के पिता और शिव महादेव के प्रपितामह थे। वर्तमान जैनपरम्परा में धर्मनाथ को पन्द्रहवां तीर्थंकर माना गया है, परन्तु ऐतिहासिक कालक्रम से 'धर्म' का स्थान तृतीय था। वैदिकपुराणों में इन्हीं को धर्मप्रजापति कहा गया है, जो आदिम द्वादश प्रजापतियों में से एक प्रमुखप्रजापति थे, इन्हीं के वंशज शिव महादेव हुए तथा पुत्र नारायण थे, जिनका आख्यान महाभारत शान्तिपर्व के नारायणीयोपाख्यान में पाँचरात्र (अहिंसा) धर्म के सम्बन्ध में विस्तार से वर्णित है।

प्रचलित (विद्यमान) जैनपरम्परा के अनुसार काश्यपगोत्री कुरुवंशी महाराज भानु की पत्नी प्रभा से धर्म(नाथ) का जन्म हुआ। उनकी राजधानी रत्नपुर था।

उसीयुग में मेरुपर्वत पर वीतशोकपुरी थी। उसका राजा नरवृषभ था। उस समय दमवर मुनिराज थे। उसी समय खगपुरनगर में इक्ष्वाकुवंशी राजा सिंहसेन की रानी विजया के गर्भ से सुदर्शन (नर) और पुरुषसिंह (नारायण) का जन्म हुआ। हस्तिनापुर में मधुक्रीड (मधुकैटभ असुर) राजा था। जैनपरम्परा के अनुसार उसी धर्मनाथ के युग में मघवा चक्रवर्ती और सनत्कुमार चक्रवर्ती हुए।

जैनसम्प्रदाय के अनुसार वासुपूज्य, धर्मनाथ और अनन्तनाथ तीनों प्रायः समकालिक थे। अनन्तनाथ के धर्मशासन में ही सुभद्र (बलभद्र), पुरुषोत्तम (नारायण) और मधुसूदन (प्रतिनारायण) थे।

जैनपरम्परा में पुरुषोत्तम एवं पुरुषसिंह तथा मधुकीड और पुरुषोत्तम एवं सुभद्र तथा सुदर्शन का पृथक्-पृथक् दिखाया गया है। परन्तु मेरी शोध के अनुसार पुरुषोत्तम नारायण और पुरुषसिंह नारायण एक ही व्यक्ति थे। वह पुराणों (वैदिक) के नारायण साध्य[१६]देव थे, जो धर्मप्रजापति[१७] के पुत्र थे। इनके अग्रज ही नर[१८]—सुभद्र और सुदर्शन भी एक ही व्यक्ति था। मधुसूदन या मधुकीड भी वैदिक पुराणों का मधुकैटभ[१९] असुरद्वयी थी, जिसका वध ब्रह्मा (कश्यप) की वेदरक्षाहेतु हयग्रीव भगवान् ने किया था।

धर्म के एक पुत्र का नाम 'वसु'[२०] था=वही जैनों के वसुपूज्य हुए, जिन के पुत्र वासुपूज्य तीर्थंकर हुए। अतः धर्म और वसु क्रमशः पिता-पुत्र थे। इसी वसु को उपरिचरवसु[२१] कहा जाता था।

धर्मप्रजापति प्राचेतक्ष दक्ष के जामाता थे, जिस प्रकार प्रजापति कश्यप ब्रह्मा को दक्ष की १३ पुत्रियाँ ब्याही, उसी प्रकार धर्म से दक्ष की ८ पुत्रियां-वसु, यामी, लम्बा, भानु, मरुत्वती, संकल्प, मुहूर्ता, विश्वा और साध्या का विवाह हुआ। पत्नी वसु से ८ वसु, सोम, धर आदि उत्पन्न हुए। धर शिव से स्कन्द या सनत्कुमार कार्तिकेय[२२] का जन्म हुआ। इनको जैनपरम्परा में भी इसी नाम (सनत्कुमार चक्रवर्ती) कहा गया है। मघवाचक्रवर्ती भी इसी देवयुग का देवराज इन्द्र (शक्र) था, इसको वैदिक और जैन दोनों परम्पराओं में मघवा[२३] (शक्र) चर्कवर्ती कहा गया है।

धर्म प्रजापति की साध्या पत्नी से साध्यदेवगण उत्पन्न हुए, जिनके नेता नारायण साध्य[२४] थे। जैनपरम्पराओं में इन्हीं को पुरुषसिंह और पुरुषोत्तम कहा गया है, जो क्रमशः धर्म और वसु—तीर्थंकरों के शासन में प्रदर्शित किये गये हैं। वैदिकपरम्परा में—पुरुषसूक्त एवं शतपथब्राह्मण में नारायण को ही पुरुष या पुरुषोत्तम कहा गया है जो पुरुषमेध[३४] (अहिंसायज्ञ) और पांचरात्रधर्म[२५] के प्रवर्तक थे—

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवा देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।
तेनाह नाकं महिमानः सचन्त यज्ञे पूर्वो साध्याः सन्ति देवा।
ऋग्वेद १/१६४

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः।
तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्चये।
(यजुर्वेद ३१/६)

पुरुष नारायण—

पुरुषो नारायणोऽकामयत प्रतितिष्ठेयं पुरुषमेधं चकार पंचरात्रं यज्ञक्रतुमश्यत् तमाहरत। (श० ब्रा० १३/६/१/१) महाभारत के नारायणीयोपाख्यान में पांचरात्र (भक्तिमार्ग) धर्म का विस्तार से व्याख्यान है। तदनुसार सर्वप्रथम नारायण ने श्वेतद्वीप में पुरुषमेध=पांचरात्रयज्ञ प्रवर्तन किया। नारद ने श्वेतद्वीप में जाकर नारायण के दर्शन किये। नरनारायण का आश्रम बद्रीनाथ (बदर्याश्रम) कैलाशपर्वत पर था, (जहाँ अष्टापदशिखर पर) ऋषभदेव ने मोक्ष प्राप्त किया। महाभारत आख्यान के अनुसार नारायण का **कनकयय अष्टचक्र** मनोरम यान था। नारद ने पांचरात्रधर्म राजा वसु को सुनाया। उसी समय मरीच्यादि के वंशज चित्रशिखण्डी संज्ञक सप्तर्षियों[२६] ने लक्षश्लोकात्मक पाँचरात्रसंहिता की रचना की थी, जिसमें राजशास्त्र के मोक्षशास्त्र एवं अहिंसामय यज्ञों का वर्णन था।

दीर्घायु—

अतः प्रजापति धर्म, दक्षप्राचेतस, परमेष्ठी काश्यप, शिव, वसु (वसुपूज्य) साध्यनारायण, शिवपुत्र, कीर्तिकेय सनत्कुमार, नारद, बृहस्पति, मघवा इन्द्र, एक, द्वित (द्विपृष्ठ), त्रित (त्रिपृष्ठ) दम्भोद्भव (राजा) बृहस्पति आंगिरस—सभी समकालीन दीर्घजीवी महापुरुष थे। इसी देवयुग के पूर्वभाग में प्रथम दैत्यराज हिरण्यकशिपु हुआ (चतुर्थपरिवर्तयुग[२७] में), नारायण

(साध्यदेव) और रुद्र के नेतृत्व में ऋषियों ने हैमवत (येती) मानव=नृसिंह के द्वारा हिरण्यकशिपु का वध कराया।

समय—

उपर्युक्त धर्म, नारायण, कश्यप, हिरण्यकशिपु मघवा आदि सभी महापुरुष दीर्घजीवी थे। इसीलिए जैनपरम्परा में पुरुष (पुरुषसिंह=पुरुषोत्तम) और मधु (मधुक्रीड=मधुसूदन) को पृथक्-पृथक् दो युगों में दो पृथक्-पृथक् नामों से (भ्रान्तिवश) बताया है। दीर्घायु के कारण भी ऐसी भ्रांति हुई।

धर्म (प्रजापति=धर्मनाथ) और उनके पुत्रनारायण का जन्म वैवस्वत मनु और विवस्वान् से न्यूनतम तीन परिवर्त युग (३६०×३=१०८० वर्ष) पूर्व हो चुका था। इनमें नारायण चतुर्थयुगतक उसके पश्चात् भी जीवित रहे। अतः इनका अस्तित्व १४००० वि०पू० से १३००० वि०पू० तक अवश्य रहा। देवर्षि नारद और मघवा इन्द्र और भी अधिक दीर्घजीवी थे। इनका अस्तित्व तो महाभारतयुग (३००० वि०पू०) तक भी मिलता है।

अतः नारायण (साध्यदेव) के पिता प्रजापति धर्म (धर्मनाथ) ही तृतीय जैन तीर्थंकर थे, जिनका समय आज से लगभग १६००० वर्ष पूर्व था। इसी समय सनत्कुमार कीर्तिकेय हुए, जिन्हें चक्रवर्ती कहा गया है, इसी युग में पुरुषसिंह या पुरुषोत्तम हुए, जो धर्म के पुत्र साक्षात् नारायण (साध्य) ही थे। इसी देवयुग में मधुकैटभ हुआ, जिसे जैनग्रन्थों में मधुक्रीड और मधुसूदन (प्रतिनारायण) कहा गया है। मघवा इन्द्र (चक्रवर्ती) इनके बहुत उत्तरकाल (१२००० वि० पू०) में हुआ।

अतः वैदिक एवं जैनपरम्परा के तुलनात्मक अध्ययन से व्यक्तियों एवं कालक्रम की स्थिति स्पष्ट हुई।

चतुर्थ तीर्थंकर-वासु (वासव=वासुपूज्य) या अभिनन्दन ?

जैनपरम्परा में आदितीर्थंकर ऋषभ और नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ तथा महावीर को छोड़कर अन्य सभी १९ तीर्थंकरों का क्रम अस्तव्यस्त है। मैंने तृतीय तीर्थंकर धर्म (धर्मनाथ) के पूर्वोक्त प्रसंग में संभावना प्रकट की है कि धर्म के पुत्र अष्ट वसुओं में से ही कोई वसु या वसुपूज्य हो सकता है। परन्तु यह अन्तिम निर्णय नहीं है, तथापि इतना निश्चित है कि राजा वसु देवयुगीन देवराज मघवा इन्द्र के मित्र थे, इन्हीं को 'उपरिचरवसु' कहा गया है, जिनके पास एक आकाशचारी विमान[२८] था। एक राजा वसुचैद्य

महाभारतयुद्धकाल (३१०० वि० पू०) से लगभग पाँचशतीपूर्व (३६०० वि०पू०) हुआ। राजा वसु के सम्बन्ध में तीनों परम्पराओं 'वैदिक, जैन और बौद्ध' में भ्रान्ति अति प्राचीनकाल में ही हो गई थी।

भ्रान्तिनिराकण से पूर्व में जैनपरम्परा में उल्लिखित तीर्थंकर वासुपूज्य का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करता है। राजा वासुपूज्य (इक्ष्वाकुवंशी काश्यपगोत्रीय) अंगदेश की राजधानी चम्पानगरी में राज्य करते थे। रानी जयावती से उनके तीर्थंकर पुत्र उत्पन्न हुआ, जो पिता के नाम पर 'वासुपूज्य' कहलाया। यह जैनशास्त्रों में अपत्यनाम का एक विरल उदाहरण है कि पिता के नाम पर पुत्र का नाम प्रथित हुआ हो, परन्तु वैदिकपरम्परा में गोत्रनाम एवं अपत्यनामों का बाहुल्य है, जिससे महाभ्रान्तियाँ उत्पन्न हुई हैं।

राजा वसु की राजवंशावली—

जैनशास्त्रों (पुराणादि) में हरिवंश (राजवंश) बहुत प्रसिद्ध है। ब्राह्मणपरम्परा में श्रीकृष्णवासुदेव (यादव) के वंश को ही हरिवंश कहते हैं, जिससे पुराण का नाम ही 'हरिवंशपुराण' प्रथित हुआ।

जैनग्रन्थों में हरिवंश की अनेक प्रकार से वंशपरम्परा मिलती है। यह वंशपरम्परा हरि के पुत्र पृथ्वीपति से प्रारम्भ होती है, अन्य ग्रन्थों के अनुसार हरिवंश मुनिसुव्रत से प्रारम्भ होता है नीचे दोनों जैनपरम्परानुसार हरिवंश प्रस्तुत किया जा रहा है—

हरिवंश

प्रथम जैनपरम्परा

हरि
पृथ्वीपति
महागिरि
हिमगिरि
वसुगिरि
नरगिरि
इन्द्रगिरि = माधव
दक्ष
इल
पुलिन
वरिम

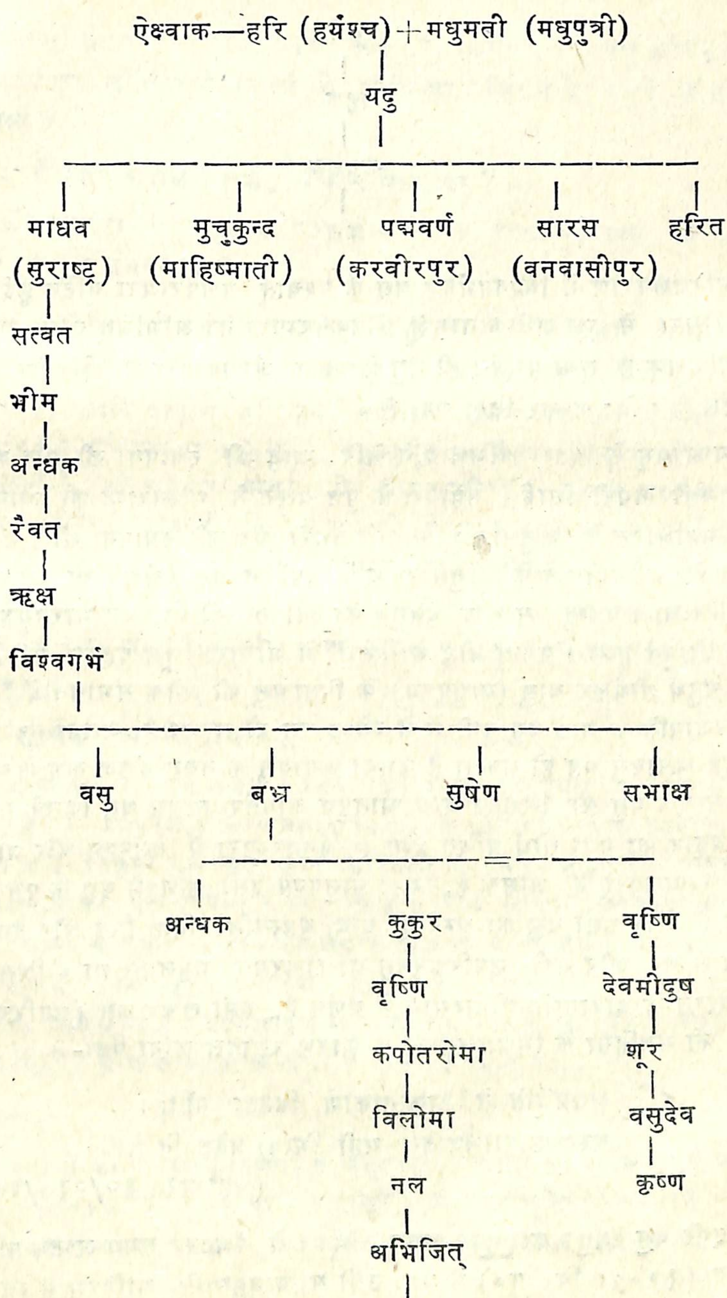
द्वितीय जैनपरम्परा

मुनिसुव्रतनाथ
पुत्र सुव्रत
दक्ष
ऐलेय
कुणिम
पुलोम
महीदत्त + चरम
|
———संजय
| |
अरिष्टनेमि मत्स्य

संजनी	अयोधन
अमणध्र	मूल
विशाल	शाल
अभिचन्द्र	सूर्य
वसु (उपरिचर ?)	अमर
	देवदत्त
	हरिषेण
	नभसेन
	शंख
	भद्र
	अभिचन्द
	वसु
	(उपरिचर ?)

हरिवंशपुराण (वैदिक) में हरिवंश—

यह संयोग है कि वैदिकपरम्परा में वासुदेवकृष्ण को 'हरि' कहा जाता है, जिससे वह (यादववंश) 'हरिवंश' कहलाया और उनका 'चरितग्रन्थ—हरिवंशपुराण' नाम से प्रथित हुआ, तथापि इस द्वितीय यादववंश (हरिवंश) के मूलप्रवर्तक राजा का नाम भी **'हर्यश्व या हरि'** ही था, जैसा कि वैदिक हरिवंशपुराण में इसका विस्तृत उपाख्यान मिलता है। अन्य वैदिकपुराणों में इस आख्यान का उल्लेख नहीं है, इसलिए पार्जीटर आदि इसको प्रामाणिक नहीं मानते, परन्तु तथ्य इसके विपरीत है। हरिबंशपुराण में कृष्ण की पूर्वज-परम्परा का अधिक प्रामाणिक वर्णन है, जो अन्य पुराणों में अकथित है—इतिहास में अकथन (अभाव) कोई प्रमाण नहीं हो सकता तथा हरिवंश-पुराण के मूलप्रवक्ता व्यासशिष्य वैशम्पायन और उग्रश्रवा सौति को विष्णु-पुराण या भागवतपुराण के उत्तरकालीन (अज्ञात) लेखकों की अपेक्षा इति-हास या वंशपरम्परा का अधिक ज्ञान था, वे दोनों कृष्ण और कृष्णचरित के प्रत्यक्षदर्शी थे। अतः हरिवंशपुराण का वर्तमानपाठ भी अन्यपुराणों की अपेक्षा अधिक प्रामाणिक है—


ऐक्ष्वाक—हरि (हर्यश्च) + मधुमती (मधुपुत्री)
यदु
माधव (सुराष्ट्र)
मुचुकुन्द (माहिष्माती)
पद्मवर्ण (करवीरपुर)
सारस (वनवासीपुर)
हरित
सत्वत
भीम
अन्धक
रैवत
ऋक्ष
विश्वगर्भ
वसु
बभ्रु
सुषेण
सभाक्ष
अन्धक
कुकुर
वृष्णि
कपोतरोमा
विलोमा
नल
अभिजित्
वृष्णि
देवमीदुष
शूर
वसुदेव
कृष्ण

पुनर्वसु
|
अहुक
|
उग्रसेन
|
कंस

हरिवंशपुराण में विश्वगर्भपुत्र वसु के पश्चात् वंशपरम्परा त्रुटित हुई है, जैनपरम्परा में कुछ अधिक नाम हैं, वैदिकपरम्परा का अभिजित् जैनपरम्परा का अभिचक्र है तथा पुनर्वसु ही वसु है तथा जैनपरम्परा में चेदिवंश का हरिवंश से समिश्रण कर दिया गया है—

यथा वसु के पिता अभिचन्द्र ने चेदि राष्ट्र की स्थापना की और वहां शुक्तिमती नगरी बसाई। महीदत्त के पुत्र मत्स्य ने मत्स्यराष्ट्र की स्थापना की। महाभारत के अनुसार शुक्तिमती नगरी चैद्य की स्थापना थी। महाभारत के वर्तमानपाठ के अनुसार यही उपरिचरवसु (चैद्य) था, जो इन्द्र का मित्र था। परन्तु वसु चैद्य देवयुग का व्यक्ति नहीं था, वह भारतयुद्ध से पांचशती पूर्व हुआ। परन्तु बौद्ध साहित्य[२९] में भी यही भूल दुहराई गई है। अतः चतुर्थ तीर्थंकर वासु (वासुपूज्य) के पिता वसु की अनेक संभावनायें हैं— धर्म प्रजापति के आठ वसु पुत्रों में से ज्येष्ठ वसु हो सकता है अथवा पुरूरवा का पुत्र अमावसु वह हो सकता है अथवा अमावसु के नवम वंशज कुश के चार पुत्रों में एक वसु था, जिसका अन्य भ्रातृपुत्र आमूर्तरयस गय था, जिसके नाम पर बिहार का गया तीर्थ प्रथित हुआ। जैनपरम्परा में वसुपूज्य और वासुपूज्य चम्पानगरी के शासक हैं, अतः वासुपूज्य इसी कुशपुत्र वसु के पुत्र हो सकते हैं, और इसी वसु का सम्बन्ध इन्द्र, बृहस्पति, द्वित, त्रित और देवर्षि नारद से था और यही उपरिचरवसु या खेचरवसु कहलाता था। जिसका महाभारत के नारायणीययोंपाख्यान में वर्णन है, इसी खेचर वसु (उपरिचरवसु) को यज्ञहिंसा के मिथ्यासमर्थन के कारण रसातल जाना पड़ा—

अद्यप्रभृति ते राजन्नाकाशे विहता गतिः।
अस्यच्छापाभिघातेन महीं भित्वा प्रवेक्ष्यति॥
(महाभारत १२/२३७/१६)

इसी वसु के पुत्र वासुपूज्य चतुर्थ तीर्थंकर थे, जिनका समय अष्टम परिवर्तयुग (१०००० वि० पू०) में था, उसी समय बृहस्पति आंगिरस ने चित्र-

शिखण्डी धर्मशास्त्र का पुनरुद्धार (पुनःसंस्करण) किया। अतः वसु और तत्पुत्र वासुपूज्य का अहिंसाधर्म-जैनधर्म से संबंध था, जिससे वे चतुर्थ तीर्थंकर कहलाये।

पंचम तीर्थंकर संभव (नाथ) संभूति ऐक्ष्वाक ?—

जैनपरम्परा के अनुसार श्रावस्तीनगरी के राजा दृढ़राज्य की रानी सुवेणा के पुत्र संभवनाथ थे।

८००० वि० पू० वैदिकपुराणों के अनुसार ऐक्ष्वाक सम्राट् (अयोध्यापति) मान्धाता के पौत्र संभूत या संभूति हुये, इसीके अनुज हरित (हरीत), विष्णुवृद्ध, आदि ब्राह्मण ऋषि हुये, क्योंकि उससमयतक जन्म (जाति) के आधार पर वर्णव्यवस्था नहीं थी। यह संभूत ही जैनपरम्परा के संभवनाथ हो सकते हैं, जो संभवतः श्रावस्ती के शासक भी थे। सम्राट् मान्धाता के पूर्वज श्रावस्त ने श्रावस्ती नगरी बसाई थी, जिसको आजकल 'बस्ती जिला' कहते हैं। मान्धाता के पूर्वज एक 'दृढ़ाश्व' राजा भी हुये, जिनको जैनग्रन्थों में दृढ़राज्य बना दिया हो, क्योंकि जैनग्रन्थों में नाम को आंशिक या पूर्णतः परिवर्तन करने की प्रवृत्ति थी। इसके उदाहरण एवं स्पष्टीकरण पहिले दिये जा चुके हैं।

षष्ठ तीर्थंकर श्रेयांसनाथ—

मान्धाता के वंशज संभूत (संभवनाथ) के पुत्र विष्णुवृद्ध या विष्णुसंज्ञक राजा हुये। जैनपरम्परा के अनुसार सिंहपुर के अधिपति विष्णु इक्ष्वाकुवंशी राजा थे। सिंहपुर वाराणसी और सारनाथ के निकट है। जैनमतानुसार श्रेयांसनाथ का नाम रूपान्तर सारनाथ है। षष्ठ तीर्थंकर उपर्युक्त ऐक्ष्वाक राजा विष्णु के पुत्र थे—जो श्रेयांसनाथ नाम से प्रथित हुये। विद्यमानजैन परम्परा में इनको ११वां तीर्थंकर बताया है। परन्तु कालक्रम से ये छठे तीर्थंकर सिद्ध होते हैं। इक्ष्वाकुवंश के राजा अयोध्या के अतिरिक्त श्रावस्ती और सिंहपुर तथा अन्य अनेक क्षेत्रों में राज्य करते थे।

समय—

पुराणों की परिवर्तयुगगणना के अनुसार मान्धाता का समय १५वें परिवर्तयुग (८००० वि० पू०) था। अतः उसके प्रपौत्र-संभूति (संभवनाथ) और श्रेयांसनाथ लगभग ७५०० वि० पू० या अबसे लगभग ९५०० वर्ष पूर्व हुये।

तीर्थंकर अभिनन्दन—

तीर्थंकर अभिनन्दन के पिता भी ऐक्ष्वाक राजा 'स्वयंवर' थे। इनकी पहिचान वैदिकपुराणों में सम्यक्रूप से नहीं हो पाई है। तथापि स्वयंवर ऐक्ष्वाक मान्धाता के पूर्ववर्ती या निकटवर्ती बृहदश्व, युवनाश्व आदि में से कोई हो सकते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक तीर्थंकर कोई महान् सम्राट् या चक्रवर्ती राजा ही रहा हो, यथा महावीर के पिता सिद्धार्थ कुण्डिनपुर के केवल गणप्रमुख थे। अत: पुराण वंशावली (वैदिक) में प्रत्येक तीर्थंकर (क्षत्रियराजा) का नाम मिलना अनिवार्य नहीं है। कोई तीर्थंकर सामान्य क्षत्रियकुमार भी हो सकता है।

अनन्तनाथ—

जैनपरम्परा के अनुसार अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजा सिंहसेन और रानी जयश्यामा के पुत्र अनन्त (नाथ) थे। उपर्युक्त कारणों से इनके नाम की पहिचान भी वैदिक पुराणों से नहीं हो सकी है परन्तु अनुमानतः ये सगर और अजित के बहुत पूर्ववर्ती होने चाहिये। क्योंकि जैनपरम्परा में उस समय के बलभद्र, सुप्रभ और नारायण पुरुषोत्तम तथा प्रतिनारायण मधुसूदन थे। ये सभी देवयुग के महापुरुष थे। यह सिंहसेन मान्धाता के पितामह प्रसनेजित् हो सकते हैं, जिनका समय अबसे १०००० वर्षपूर्व या ८००० वि० पू० था।

विमलनाथ—

जैनपरम्परा में विमलनाथ कम्पिला के राजा थे और बलभद्र धर्म, स्वयंभू नारायण तथा मधुप्रतिनारायण था। प्रतीत होता है अभिनन्दन, अनन्तनाथ और विमलनाथ तीनों ही प्राय: समकालिक थे, क्योंकि धर्म आदि बलभद्र एवं मधु प्रतिनारायग-तीनों के साथ वर्णित है तथापि इन तीनों तीर्थंकरों एवं समकालिक नारायणादि की पहिचान मैं वैदिक पुराणों से अभी तक नहीं कर पाया हूँ। मधु प्रतिनारायण आदि के नाम आवृत्ति से यही आभास होता है कि इन तीनों तीर्थंकरों का समय परस्पर निकटवर्ती था।

इसी प्रकार शीतलनाथ पद्मप्रभ, चन्द्रप्रभ और पुष्पदन्त तीर्थंकरों की वैदिक प्रामाण्य से पहिचान नहीं हो पाई है, अत: इनका क्रम और कालक्रम निश्चितरूप से निश्चित नहीं किया जा सका है।

शान्तिनाथ का अनुशासनकाल—

शान्तिनाथ पूर्वभव में पुष्कलावती (गान्धार) के राजा धनरथ थे, उनका पुत्र मेघरथ ही वैदिक वाङ्मय का शिबि औशीनरि था, क्योंकि जैनसाहित्य

में शिवि से सम्बन्धित कपोत (कबूतर) और श्येन या गिद्ध का उपाख्यान है. इससे शान्तिनाथ के समय का आभास हो जाता है कि वे शिबि औशीनरि से दो तीन शताब्दी पश्चात् ही हुये। शान्ति (शान्तिनाथ) के पिता हस्तिनापुर के महाराज विश्वसेन और रानी एरा थी। हस्तिनापुर में अजमीढ़ के वंश में सुशान्त नाम का राजा ही संभवत शांतिनाथ थे। शान्तिनाथ को चक्रवर्ती भी बताया गया है, अतः सुशान्त पौरव और शान्तिनाथ एक ही हैं, इनका समय शिवि औशीनरि दोतीन शती पश्चात् अर्थात् अठारहवें परिवर्तयुग में—७००० वि० पू० आज से ९००० वर्षपूर्व था।

कुन्थुनाथ-कौरवराज विकुण्ठन—

पौरव राजा हस्ती के वंश में लगभग उसी समय (७००० वि० पू०). विकुण्ठन नाम का राजा हुआ। वही तीर्थंकर कुन्थु है, क्योंकि कुण्ठ का ही प्राकृतरूप कुन्थु शब्द है, अतः कुन्थु ही कुण्ठ या विकुण्ठन निश्चित होते हैं। अतः शान्तिनाथ और कुन्थुनाथ लगभग समकालिक थे और इनका समय आज से नौ सहस्राब्दी पूर्व था। ये दोनों सम्राट् सगर और अजितनाथ के पूर्ववर्ती थे।

पौरवअरिह हीअरनाथ—

पौरव राजा अजमीढ़ के वंश में कुरु से पूर्व अरिह नाम के न्यूनतम दो राजा हुये, उनमें एक, संभवत उत्तरकालीन देवातिथि के पुत्र अरिह ही जैन तीर्थंकर अरनाथ थे। इनका समय दाशरथिराम से पूर्व (लगभग १००० वर्ष पूर्व) ६००० वि० पू० अनुमानित है, क्योंकि पौरव वंशावली पर्याप्त त्रुटित (अपूर्ण) है, अतः प्रत्येक राजा का यथार्थ समय निश्चित करना दुष्कर है।

जैनपुराणों के अनुसार अरनाथ के पिता का सुदर्शन और माता का नाम मित्रसेना था।

जैनपुराणों के अनुसार कुन्थुनाथ (विकुण्ठन पौरव) के एक हजार करोड़ वर्ष व्यतीत होने के पश्चात् अरनाथ हुये अर्थात् ठीक एक हजार वर्ष पश्चात् अरनाथ (राजा अरिह पौरव) हुये। अरनाथ की आयु ८४ वर्ष थी। इसीको विद्यमान जैनग्रन्थ चौरासी हजार वर्ष कहते हैं। आयु निकालने का सूत्र मैंने प्रथम अध्याय में बता दिया है। जैनग्रन्थ वास्तविक आयु को १० गुना, १०० गुना और हजार गुना बताने लगे थे, जैसाकि अरिष्टनेमि (२२वें तीर्थंकर) की आयु १००० वर्ष बताई है। महाभारतकाल के प्रमुख

पुरुषों को आयु प्रायः १०० वर्ष ही थी, अतः स्वभावतः नेमिनाथ १०० वर्ष के ही थे। वर्तमान जैनपुराण इसे १० गुना करके बताते हैं, जो उत्तरकालीन भ्रान्तकल्पना ही है।

सुभौम चक्रवर्ती और परशुराम—

जैनवाङ्मय में इन दोनों को अरनाथ के समकालिक माना गया है। प्रथम अरिह (पौरवराज) का पुत्र 'महाभौम' था, संभवतः इसीको जैन ग्रन्थों में 'सुभौम चक्रवर्ती' कहा है। परशुराम द्वारा सहस्रबाहु अर्जुन का आख्यान जगत् प्रसिद्ध है। जैनग्रन्थों में सहस्रबाहु का पुत्र सुभौम बताया गया है। वैदिक पुराणों के अनुसार सहस्रबाहु का सुभौम नाम का कोई पुत्र नहीं था और नहीं परशुराम का किसी ने वध किया, जैसाकि जैनग्रन्थों में सुभौम द्वारा परशुराम का वध बताया गया है।

नारायण-प्रतिनारायण—

जैनग्रन्थों में अरनाथ के तीर्थकाल में पुण्डरीक नारायण और निशुम्भ प्रतिनारायण बताये गये हैं। वैदिकपुराणों में शुम्भनिशुम्भ असुरद्वयी की चर्चा है। परन्तु यहां उल्लिखित निशुम्भ और पुण्डरीक नारायण की पहिचान सम्यक्रूप से नहीं हो पाई है। जैनग्रन्थों में पुण्डरीक को इक्ष्वाकुवंशी राजा बताया गया है। वैदिक पुराणों के अनुसार दाशरथि राम से छः साथ पीढ़ी पश्चात् अयोध्या में पुण्डरीक नाम का राजा हुआ, परन्तु वह जैनपुराण वर्णित नारायण पुण्डरीक नहीं था, क्योंकि अरनाथ का तीर्थ राम से बहुत पूर्ववर्ती था।

मल्ली (मल्लिनाथ)—

अरनाथ पश्चात् और सुव्रत से पूर्व मल्ली हुये। दिगम्बर सम्प्रदाय के अनुसार वे पुरुष थे, परन्तु श्वेताम्बर उन्हें स्त्री मानते हैं। मल्ली का स्त्री होना ही ऐतिहासिक तथ्य प्रतीत होता है, क्योंकि नाम से भी यही आभास होता है। तीर्थंकरों के साथ 'नाथ' शब्द लगाने की प्रथा तो बहुत ही उत्तरकालीन है, जोकि नाथसम्प्रदाय (गोरखनाथ) के पश्चात् यह नाथ शब्द लगाया जाने लगा।

मल्ली का समय दाशरथिराम से लगभग पांच शतीपूर्व, ५४०० वि० पू० के आस-पास होना चाहिये, अग्रिम तीर्थंकर मुनिसुव्रत दाशरथिराम के समकालिक थे, जिनका समय ५००० वि० पू० से ४६०० वि० पू० के मध्य था।

मल्ली, मिथिला के महाराज कुम्भ और रानी प्रजावती की सन्तान थी। जैनग्रन्थों में इनकी आयु पचपन हजार बताई गई है, अर्थात् वे ५५ वर्ष की थीं, तथा मल्ली विवाह से पूर्व ही विरक्त होकर प्रव्रजित हो गईं और मुनि-दीक्षा ले ली।

मल्ली के तीर्थकाल में वाराणसी में महापद्म का पुत्र राजा पद्म चक्रवर्ती हुआ, इसी समय बलभद्र नन्दिमित्र नारायणदत्त और प्रतिनारायण बलीन्द्र हुआ। इन चारों पद्मादि की पहिचान वैदिक पुराणों से नहीं हो पाई है।

नमि साप्य (जनक) ही नमिनाथ—

मल्ली, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और महावीर का ऐतिहासिक क्रम विद्यमान जैनपरम्परा में ठीक ही है। अतः इसी अध्याय में नमिनाथ की ऐतिहासिक परिचर्चा करके अध्याय को समाप्त करते हैं।

ऋग्वेद में नमिसाप्य—

नमि और नेमि—दोनों नाम पर्याय हो सकते हैं। इक्ष्वाकु का पुत्र, जनकवंश का प्रथम राजा नेमि (१२००० वि० पू०) था, जिसका वसिष्ठ मैत्रावरुणि से यज्ञविषयकसंघर्ष हुआ, इसका वैदिक इतिहासपुराणों में बहुधा उल्लेख है, यह निमि प्रथम था। द्वितीय नेमि या नमिसाप्य महाभारतयुद्ध से लगभग १५० वर्ष पूर्व हुआ, संभवतः यही नमीसाप्य हो, जिसका ऋग्वेद के एक मन्त्र में उल्लेख है, यही निमिद्वितीय जैनतीर्थंकर नमिनाथ हो सकता है, जो वैयासकि शुक, याज्ञवल्क्य वाजसनेय और पितामह भीष्म[३०] का गुरु था, जिसने आत्मज्ञान उक्त तीनों महापुरुषों को दिया। ताण्ड्यब्राह्मण[३१] में भी नमीसाप्य का उल्लेख है—

१. प्रमेनमी साप्य इषे भुजेऽभूत्।

(ऋग्वेद १०/४८/९)

"नमी साप्यो वैदेहो राजाऽञ्जसा स्वर्गं लोकमैत्।"

(ताण्ड्य० २५/१०/८)

ऋग्वेद एवं ताण्ड्यब्राह्मण के उल्लेखों से आभास होता है कि नमीसाप्य, निमि द्वितीय जनक से अधिक प्राचीनतर पृथक् राजा हो सकता है। निमि (द्वितीय) एवं नमिसाप्य की एकता में अभी दृढ़ता से कुछ नहीं कहा जा सकता।

जैनग्रन्थों के अनुसार वंगदेश (मैथिल ?) देश की राजधानी मिथिला के शासक, इक्ष्वाकुवंशी राजाविजय और रानीवप्रिला के पुत्रनमिनाथ थे। उनकी आयु १०० वर्ष थी तथा उनके समकालिक जयसेन चक्रवर्ती था।

जैनग्रन्थों के अनुसार मिथिला का राजा नमि मुनि बन गया, वह तीन बार योगभ्रष्ट हुआ, पुनः वह शुद्ध मन से मुनिव्रत का पालन करने लगा। एक बार एक गांव में तीन अन्य मुनियों के साथ कुम्हार के भट्टे के पास वे खड़े थे, कुम्हार ने जैसे ही आग सुलगाई, वे चारों मुनि जलकर भस्म हो गये। इसी ऐतिहासिक (चारपरिव्राजक मुनियों के) तथ्य को उत्तराध्ययन सूत्र एवं जातक[३२] में कहा गया है "कलिंगराज करण्ड, गान्धारराज नग्नजित्, विदेहराज निमि और पांचालराज दुर्मुख—अपने राजपाट को छोड़कर, अकिंचन (अपरिग्रही) बनकर देवसम परिव्राजक मुनि बन गये।

यदि उपर्युक्त विदेहराज निमि ही नमिनाथ तीर्थंकर थे तो उनका समय भारतयुद्ध से १५० वर्ष पूर्व या आज से ५३०० वर्ष पूर्व था।

निमि (नमिनाथ) का पुत्र कराल जनकवंश का अन्तिम राजा हुआ यद्यपि अध्यात्मवादी एवं महान् वैद्यराज था, जिसने योग और आयुर्वेद के ग्रन्थ लिखे, परन्तु एक ब्राह्मणकन्या[३३] में आसक्त होकर नाश को प्राप्त हुआ, जैसाकि भगवान बुद्ध ने आनन्द से कहा—'एक बार भगवान् मिथिला में मखादेव आम्रवन में विहार कर रहे थे, बुद्ध बोले—'आनन्द पूर्वकाल में इसी मिथिला में मखादेव नाम का धार्मिक राजा हुआ,......उसके पुत्र पौत्र आदि प्रव्रजित हुये। निमि उन राजाओं में अन्तिम धार्मिक महाराजा हुआ। निमि (नमि) इसी वन में प्रव्रजित हुआ।......आनन्द। राजानिमि का कराल जनक नामक पुत्र हुआ। वह प्रव्रजित नहीं हुआ, उसने उस कल्याण (मोक्ष) मार्ग को उच्छिन्न कर दिया। वह उनका अन्तिम पुरुष हुआ।' मज्झिमनिकाय, मखारुदेवसुत्त, तीर्थंकर नमि को ही, संभवत गीता में आदर्श पुरुष बताया है तथा जिसने शासन करते हुये कहा था—

'मिथिलायां प्रदीप्तायांनमे दह्यति किंचन।'

अजितनाथ का स्थान (क्रमांक) शान्तिनाथ के पश्चात्—

शान्तिनाथ अठारहवें ऐतिहासिक परिवर्तयुग में हुये तो अजितनाथ बीसवें परिवर्त के अन्त में हुये, उनसे एक हजार वर्ष पश्चात् ६००० वि० पू० या अबसे लगभग ८००० वर्ष पूर्व, दाशरथि राम से लगभग १५०० वर्ष पूर्व।

क्योंकि सगर, दाशरथि राम से ३० पीढ़ी पूर्व हुये इस युग में सम्राटों (राजाओं) का औसत राज्यकाल ५० वर्ष या ४० वर्ष होना कोई अधिक नहीं है, उससे पूर्व के युगों में मान्धातादि का राज्यकाल (औसत) १५० वर्ष था। यह दीर्घायुष्ट्व युगानुसार निरन्तर घटता गया।

सगर—

जैनग्रन्थों के अनुसार अजित के तीर्थकाल (समकालिक) में चक्रवर्ती सगर ऐक्ष्वाक सम्राट् हुआ, इसी आधार पर वैदिकप्रामाण्य से अजित का समय और क्रम निर्धारित करने में सुविधा हुई है। दोनों जैन और वैदिकवाङ्मय (पुराणों) में सम्राट् सगर के साठ हजार पुत्रों की चर्चा है। जैनप्रामाण्यानुसार सगर के साठ पुत्रों में हिमालय (कैलाश) पर्वत पर जाकर परिखा (मन्दिर निर्माण हेतु) खोदने लगे। मणिकेतु (नागब्राह्मण) सगर का मित्र था। मणिकेतु ने सगर को प्रव्रज्याहेतु प्रेरित किया, परन्तु वह माना नहीं। कालान्तर में जब सगरपुत्र हिमालय पर परिखा खोद रहे थे, तभी मणिकेतु ने नागरूप धारण कर सगरपुत्रों को भस्म कर दिया और उनके नाश का समाचार सुनाने चक्रवर्ती सगर के पास आया। समाचार सुनकर सगर ने प्रव्रज्या ग्रहण कर ली।

पुराण (वैदिक) सगरप्रसंग की अपेक्षा जैनकथानक में ऐतिहासिक तथ्य सुरक्षित प्रतीत होता है क्योंकि सांख्यप्रवर्तक कपिल तो ऋषभ के समकालिक थे, अतः उनका सगर के समय जीवित होने या ऐसा दुष्कृत्य करने का प्रश्न ही नहीं। सगरपुत्रों के भस्मीकरण में मणिकेतु-नागब्राह्मण की ही करतूत प्रतीत होती है—सगरपुत्र अग्निकरण, जैसे कृत्य द्वारा ही भस्म किये गये होंगे। वैदिकपुराणों में यहाँ कपिल की कल्पना अनैतिहासिक है।

मुनिसुव्रत—

रामायण या रामकथा के भारत एवं विदेशों में अनेक रूप मिलते हैं—इन सबका मूल वाल्मीकीयरामायण का वह रूप था, जिसका उल्लेख एक प्राचीनग्रन्थ (बौद्धग्रन्थ) महाविभाषा में मिलता है, तदनुसार मूलरामायण में केवल १२००० श्लोक थे। उस मूलग्रन्थ का, पिछले ७००० वर्षों में भारी पाठान्तर उपबृंहण एवं विकृतीकरण हुआ, तथापि उस मूलरामायण का सर्वाधिक प्राचीनतम एवं मूलरूप महाभारत, वनपर्व के रामोपाख्यान में मिलता है।

जैनरामायण, पद्मपुराणादि बहुत उत्तरकालीनग्रन्थ हैं, अतः उनको वाल्मीकीय रामायण और महाभारत तथा अन्य प्राचीन रामायणों से अधिक प्रामाणिक तो नहीं माना जा सकता, तथापि जैनाख्यानों (पदम्पुराणादि) में रामकथासम्बन्धी अनेक सत्य ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं, जो इतर रामायणों में प्राप्य नहीं या लुप्त हो चुके हैं। यदा सीता की आयु ६२ वर्ष एवं उनके भ्राता भामण्डल का उल्लेख, इत्यादि। समीक्षात्मक (शोधपरक) संक्षिप्त पर्यालोचन करने से पूर्व रामसमकालिक तीर्थंकर मुनिसुव्रत एवं वातरशना सप्तर्षियों का विवरण प्रस्तुत करते हैं।

मुनिसुव्रत-रामसमकालिक—

जैनपुराणों में तीर्थंकर मुनिसुव्रत को रामदाशरथि के समकालिक स्पष्ट रूप से बताया है, अतः यह एक ऐतिहासिक तथ्य है। दाशरथिराम २४वें ऐतिहासिक परिवर्तयुग में हुये।

चतुर्विंशे युगे रामो वसिष्ठेनपुरोधसा।
त्रेतायुगे (परिवर्ते) चतुर्विंशे रावणस्तपसः क्षयात्।
रामं दाशरथिं प्राप्य सगणः क्षयमेयिवान्।
(महा० शान्ति० ३४८/१६)

परिवर्ते चतुर्विंशे ऋक्षो व्यासो भविष्यति। (वायु० अ० २३)
चतुर्विंशे युगे चापि विश्वामित्रपुरस्सरः
लोके राम इति ख्यातस्तेजसा भास्करोपमः। (१/४१/१२१)

सभी प्रमाणों से राम का समय २४वें परिवर्त में अर्थात् महाभारत युद्धकाल से ५ परिवर्त (३६०×५=१८०० वर्ष) पूर्व या आज से ६९०० वर्ष (=सात हजारवर्ष) पूर्व निश्चित है।

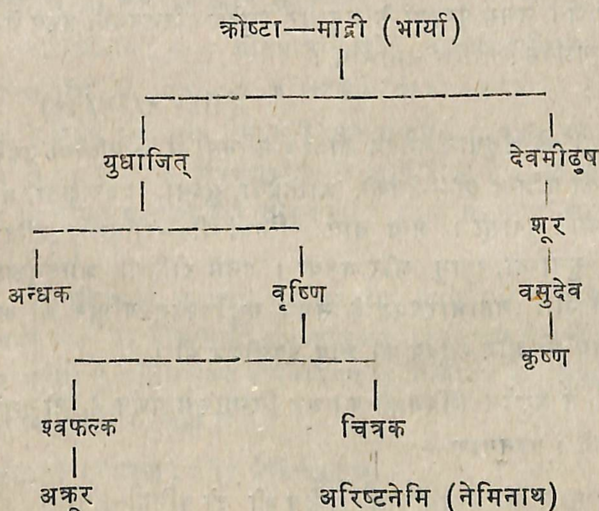
मुनिसुव्रत मगधराज सुमित्र के पुत्र थे। अतः मुनिसुव्रत का सम्बन्ध मगध (बिहार) और राजगृह से था। मुनिसुव्रत की आयु ३०००० वर्ष बताई गई है। यहां पर जैनग्रन्थों में आयु के सम्बन्ध में वैदिकपुराणों का सूत्र अपनाया है। ३०००० वर्ष (दिन)=७५ मानुषवर्ष हुये। अतः सुव्रत की आयु लगभग राम के तुल्य ही थी। राम ७२ वर्ष की आयु में दिवंगत हुये। (द्रष्टव्य मद्ररचितग्रन्थ—'पुराणों में वंशानुक्रमिककालक्रम' पृ० ४५२-४५३).

सुव्रत और राम के समय में वातरशना श्रमण सप्तर्षि—

मैंने इस पुस्तक के प्रथम अध्याय, पृष्ठ ५ पर सप्त वातरशना सप्तर्षियों का उल्लेख किया है, जिन्होंने ऋग्वेद १०/१३६ सूक्त के सात मन्त्रों का दर्शन किया। उक्त अंश को मैं प्रसंगवशात् पुनः दुहराता हूँ—('ऋग्वेद (१०/१३६) सूक्त के सात मन्त्रों के द्रष्टा सात वातरशना मुनियों के नाम हैं—(१) जूति (२) वातजूति (३) विप्रजूति (४) तृषाणक (५) करिक्रत (६) एतश और (७) ऋष्यश्रृंग। ये मुनिनाम सामान्य वैदिक ऋषियों से पृथक् हैं। संभवतः उससमय (५००० वि० पू०) की प्राकृतभाषा के नाम हों। "जूति" शब्द जित (जितेन्द्रिय)=जिन=या यति का ही पर्यायरूप रहा हो, क्योंकि "यति" को प्राकृत में "जती" ही कहते हैं। उत्तरकाल में जैनमुनियों (श्रमणों) के लिये "यति" शब्द का बहुधा प्रयोग होता है। उस समय प्राकृत और संस्कृत प्रायः समान भाषायें थीं, जिनका लोक में प्रचुर प्रयोग होता था। अतः "जूति" जती (यति) का ही रूप था। प्राकृत का जैनसन्तों से आदिकाल से ही सम्बन्ध रहा है।

नेमि (नाथ)=अरिष्टनेमि—

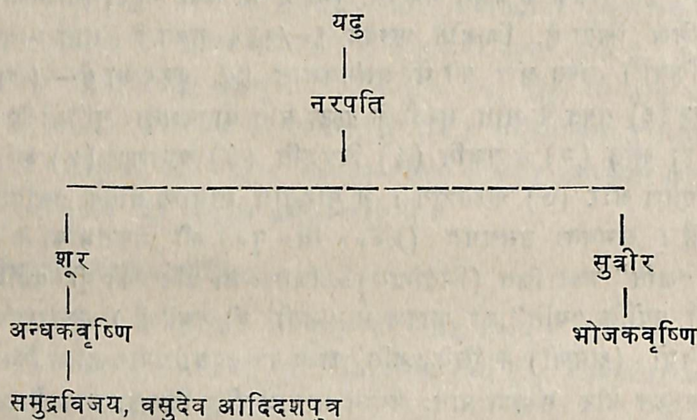
वैदिक हरिवंशपुराण के अनुसार यादव क्रोष्टा या वृष्णि या पृश्नि की वंशावली इस प्रकार वर्णन है—



अतः अरिष्टनेमि और कृष्ण चचेरे भाई थे।

जैनग्रन्थों में समुद्रविजय—

जैनपुराणों के अनुसार यदुवंश इस प्रकार था—



समुद्रविजय, वसुदेव आदिदशपुत्र

जैनग्रन्थों में नाम परिवर्तन (परम्पराविच्छेद या विस्मृति या भ्रान्ति के कारण) की प्रवृत्ति थी। जैनग्रन्थों के समुद्रविजय वैदिकपुराणों 'शूर' या शूरसेन हैं। जैनग्रन्थों में वसुदेव समुद्रविजय के अनुज हैं, जबकि वैदिक पुराणों में वे शूर के पुत्र हैं।

वसुदेव के विवाह—

वैदिक एवं जैन उभय पुराणों के अनुसार वसुदेव अतिरूपवान् पुरुष थे—
मनुष्यलोके कृत्स्नेऽपिरूपे नास्ति समोभुवि।

(हरि० २/३४/२०)

वैदिकपुराणों के अनुसार वसुदेव की १४ पत्नियों में ७ पत्नियां उग्रसेन भ्राता—देवक की पुत्रियां थीं—देवकी, शांतिदेवा, सुदेवा, देवरक्षिता, वृकदेवी, उपदेवी और सुनासी। अन्य सात पत्नियां थीं—रोहिणी, इन्दिरा, वैशाखी, भद्रा, सुनाम्नी, सुतनु और वड़वा। इनमें रोहिणी शान्तनुभ्राता बह्लिक की पुत्री थी। महाभारतयुद्ध के समय वसुदेवश्वसुरबह्लिक की आयु लगभग २०० वर्ष थी और वसुदेव की आयु डेढ़सौवर्ष थी।

जैनपुराणों में वसुदेव के विवाहों का बड़े विस्तार से वर्णन है, जो उन्होंने देशान्तरों में किये। तदनुसार—

१. विजयखेट नगर के गन्धर्वाचार्य सुग्रीव की दो पुत्रियां—सोमा और विजयसेना का विवाह वसुदेव से हुआ। विजयसेना का पुत्र अक्रूर हुआ।

२. कुंजरावर्त नगर के विद्याधर नरेश अशनिवेग की पुत्री श्यामा से विवाह हुआ।
३. गिरिव्रजवासी ब्राह्मणपुत्री सोमश्री से वसुदेव का विवाह हुआ।
४. अन्य नाम इस प्रकार हैं—श्रेष्ठिपुत्री वनमाला
५. वेदसामपुर की कपिला
६. शालगुहा की पद्मावती
७. भद्रिलपुर की चारुहासिनी
८. जयपुर की राजकन्या
९. तथा रत्नवती, सोमश्री, मदनवेगा, वेगवती, रोहिणी इत्यादि अनेक—राजकुमारियां।

जरत्कुमार (जराव्याध) और पौण्ड्रक आदि वसुदेव के पुत्र बताये गये हैं। जैनग्रन्थों में भी कृष्ण और बलराम को वसुदेव के प्रमुख पुत्र कहा गया है।

जैनग्रन्थों में पाण्डवों एवं जरासन्ध का भी बड़े विस्तार से वर्णन है। जरासन्ध को त्रिखण्ड भरतक्षेत्र का अर्धचक्रवर्ती और प्रतिनारायण बताया गया है। महाभारतयुद्ध पाण्डवों और जरासन्ध में होता है, न कि कौरव पाण्डवों में।

नेमिनाथ का सम्मान और शौर्य—

"अरिष्टनेमि" नाम अतिप्राचीन था। दक्ष प्रजापति के एक जामाता "अरिष्टनेमि" थे, एक अन्य अरिष्टनेमि ऐक्ष्वाक सगर के समकालिक थे। कृष्ण के चचेरे भाई और चित्रक के पुत्र यादव—तीर्थंकर का नाम अरिष्ट-नेमि ही था, जैसाकि हरिवंशपुराण से ज्ञात होता है। जैनवाङ्मय में इन्हें नेमि या नेमिनाथ कहते हैं। 'तीर्थंकरों' के नामों में 'नाथ' शब्द बहुत उत्तर-कालिक हैं।

जैनसाहित्य के अनुसार 'अरिष्टनेमि' यादवों में सर्वाधिक सर्वाधिक बलवान् थे। यह जैनाचार्यों की उत्तरकालिक कल्पना है, जो उनमें समादर प्रकट करती है क्योंकि स्वयं जैनवाङ्मय में नेमिनाथ के बलप्रदर्शन का कोई उदाहरण (प्रमाण) नहीं मिलता।

राजीमती (राजुल) और नेमिविवाह—

जैनपुराणों के अनुसार राजीमती यादवराज उग्रसेन की पुत्री थी, जिसके साथ नेमि का विवाह निश्चित हुआ, परन्तु बरातियों के लिए पशुमांस

तैयार करने के कारण अरिष्टनेमि ने विवाह करना अस्वीकार कर दिया और प्रव्रज्या ग्रहण की, यह कथानक जैनबन्धुओं में अत्यधिक लोकप्रिय है। तद-नुसार राजीमती ने भी दीक्षा ग्रहण की।

आयु—

मैंने पूर्वसंकेत किया कि जैनपुराणों में नेमिनाथ की आयु १००० वर्ष बताई गई है, जिसका अर्थ है वे १०० वर्ष जीवित रहें, तदनन्तर निर्वाण प्राप्त किया।

भविष्यवाणी—

वैदिकपुराणों के अनुसार नारद एवं सप्तर्षियों के शाप से यादवों का विनाश हुआ। महाभारत के अनुसार गान्धारी के शाप से यादवों में संघर्ष और विनाश हुआ। परन्तु जैन एवं बौद्धसाहित्य (घृतजातक) के अनुसार कृष्णद्वैपायन पाराशर्य व्यास का, साम्बादि द्वारा अपमान करने पर उनके शाप से यादवकुल का विनाश हुआ। जैनवाङमय के अनुसार साम्बादि यादव पुरुषों ने द्वारकापुरी के उपकंठ (बाह्य) पर्वत पर तपस्यारत द्वैपायन मुनि का घोर अपमान किया, जिससे क्रुद्ध होकर उन्होंने यादवविनाश का शाप दिया।

मेरी दृष्टि में इस शाप का एक कारण और था। व्यासजी के प्रिय शिष्य रोमहर्षणसूत (पुराणकार) का वध बलराम यादव ने तीर्थयात्रा करते हुए किया था। प्रतिशोध एवं क्रोध का यह कारण भी व्यासजी के मन में होगा।

गिरिनार (रैवतक) पर्वत—इसका प्राचीननाम रैवतकपर्वत था, क्योंकि शर्यातिवंशज रेवत ने आनर्त जनपद (सौराष्ट्र) की स्थापना की थी। इसी पर्वत का एक प्राचीन नाम उर्जयन्त भी था। जैनवाङ्मय में इसकी 'गिरि-नार' नाम से प्रसिद्धि है। भगवान् नेमिनाथ ने 'गिरिनार' पर ही तप करते हुए निर्वाण प्राप्त किया। वैसे तो यह पर्वत बहुत प्राचीनकाल से पवित्र स्थान (तीर्थ) माना जाता था, परन्तु जैनियों के लिए नेमिनिर्वाण के समय से ही यह तीर्थ बन गया।

जैनधर्म का प्राचीन इतिहासग्रन्थ के पृष्ठ ३३७ पर पुरातत्व का एक प्रामाण्य उद्धृत किया गया है। 'सौराष्ट्र' के प्रभासपट्टन से बैबीलन के राजा 'नवचन्द्रश्री' (नेवृचडनज्जर) का एक ताम्रपट्ट लेख प्राप्त हुआ है। जिसे डा० प्राणनाथ ने पढ़ा था। उसके अनुसार—'रेवानगर' के राज्य का

स्वामी सुजाति का देव नेवुचडनज्जर[35] आया है, वह यदुराज के नगर (द्वारका) में आया है। उसने मन्दिर बनवाया। सूर्य...देव नेमि जो स्वर्ग समान रैवतपर्वत के देव हैं, उनको हमेशा के लिए अर्चना की।' (जैन भावनगर, भाग ३५ अंक २-२)।

चक्रवर्ती ब्रह्मदत्त—

जैनवाङ्मय के (श्वेताम्बरपरम्परा) अनुसार पांचालराज काम्पिल्य नरेश ब्रह्मदत्त नेमिनाथ के तीर्थकाल में हुए। उनके समकालिक अन्य राजा थे—(१) काशीनरेश कटक (२) हस्तिनापुर नरेश कणेरूदत्त (३) कौशल नरेश दीर्घ (४) चम्पानरेश पुष्पचूलक।

जैनवर्णन भ्रामक—

काम्पिल्यनरेश ब्रह्मदत्त कोई बड़ा भारी सम्राट् या चक्रवर्ती नहीं था। वह नेमिनाथ के समकालिक भी नहीं था। वह राजर्षि अथवा महायोगी अवश्य था, जिसकी योगसम्बन्धीकथा (इतिहास) हरिवंशपुराण (१/२/२१-२७) में विस्तार से वर्णित है। हरिवंश में उसके अनेक पूर्वजन्मों का विवरण है। तदनुसार वह पूर्वजन्मों में मृग, सातबार व्याध, कालिंजरपर्वत पर मृग, शरद्वीप में चक्रवाक, मानसरोवर में हंस, कुरुक्षेत्र में ब्राह्मण और अन्त में ब्रह्मदत्त बना।

राजर्षि ब्रह्मदत्त शन्तनुपिता (कौरवराज) के प्रतीप के समकालिक थे—

प्रतीपस्य तु राजर्षेस्तुल्यकालो नराधिपः।
पितामहस्य मे राजन् बभूवेति मया श्रुतम्॥
ब्रह्मदत्तो महाभागो योगी राजर्षिसत्तमः।
पुत्रोऽणुहस्य राजर्षिः ब्रह्मदत्तोऽभवत् प्रभुः।
योगात्मा तस्य तनयो विष्वक्सेनः परन्तपः।
(हरिवंश० १/२०/११-१२, १/२०/२८)

अतः राजर्षि ब्रह्मदत्त भीष्म से भी लगभग २०० वर्ष पूर्व हुआ। अतः तथोक्त ब्रह्मदत्त तीर्थंकर नेमिनाथ से न्यूनतम ३०० वर्ष पूर्व अर्थात् ३४०० वि०पू० हुए, जबकि कृष्ण और अरिष्टनेमि ३१०० वि०पू० हुए।

भ्रान्ति का कारण—

विद्यमान जैनभ्रान्ति का कारण यह प्रतीत होता है कि बौद्धजातक

कथायें, जो जैनपुराणों से निश्चय ही बहुत प्राचीनतर हैं, उनमें काशी के राजा ब्रह्मदत्त का बारम्बार बोधिसत्वों के साथ उल्लेख हैं, अतः ब्रह्मदत्त अत्यन्त प्रख्यात और लोकप्रिय नाम था। वैदिकपुराणों के अनुसार कम से कम १०० राजा पूर्वकाल (प्राङ्महाभारतकाल) में हुए जिनका नाम ब्रह्मदत्त था। अतः जैनभ्रान्ति का कारण यह लोकप्रियनाम (ब्रह्मदत्त) हो सकता है।

४

पार्श्व और महावीर का कालक्रम

पार्श्वनाथ की तिथि (समय) :

भारतीय कालगणना (वैदिकपुराणसाक्ष्य एवं पुरातत्वसाक्ष्य) के आधार पर भगवान् महावीर का निर्वाण (जन्मतिथि) कलिसम्वत् के लगभग १३०० वर्ष पश्चात् या विक्रम से १७५० वर्ष पूर्व था। इसकी पुष्टि श्वेताम्बरजैनग्रन्थ तित्थोगाली से भी होती है, जिसके अनुसार कल्कि (मालवसम्राट् यशोधर्मा) से १९२८ वर्ष पूर्व महावीरनिर्वाण हुआ। अत: गुप्तकाल के पूर्वकी भारतीय ऐतिहासिककालगणना में लगभग १२०० वर्ष की त्रुटि है और गुप्त एवं गुप्तोत्तरकालगणना में २४० वर्ष की भूल है। क्योंकि अलबेरूनी के अनुसार गुप्तसम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त ने १३५ विक्रम सम्बत् में शकों का नाश करके शकारि (शक) संवत् चलाया, जबकि फलीट आदि ने अलबेरूनी के मत का उल्टा अर्थ निकालकर गुप्तों का प्रारम्भ २७५ वि० सं० में माना। इसविषय (कालगणना) का कुछ विस्तृत विवेचन अग्रिम पृष्ठों पर करेंगे। इससे पूर्व पार्श्वनाथ का समय निर्धारित करते हैं।

सभी तीर्थंकर इतिहासपुरुष—

सर्वप्रथम पाश्चात्यों एवं उनके अनुयायियों ने केवल महावीर को ऐतिहासिक पुरुष माना, पुनः कुछ तथाकथित इतिहासकार पार्श्वनाथको भी ऐतिहासिक पुरुष मानने लगे, अब कुछ विद्वान् नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) को भी ऐतिहासिक मानने लगे हैं। टी० वी० सीरियलों (रामायण) एवं महाभारत) को देखकर पर्याप्त भारतीयों की कृष्ण, पाण्डव एवं रामादि को ऐतिहासिक पुरुष मानने की प्रवृत्ति बढ़ी हैं, परन्तु इन महापुरुषों का ऐतिहासिककाल

(समय) प्रायः किसी को ज्ञात नहीं है, अतः मैंने सर्वप्रथम, परिवर्तयुगगणना की मौलिकखोज के द्वारा प्राङ्महाभारतकालीन महापुरुषों का कालक्रम निर्धारित कर दिया है। सच यह है कि ऋषभसहित सभी २४ तीर्थंकर ही नहीं, सभी त्रिषष्टिशलाकापुरुष (६३ पुरुष) ऐतिहासिकव्यक्ति थे, परन्तु, विद्यमान जैनवाङ्मय में इन पुरुषों का इतिहास एवं कालक्रम अस्तव्यस्त है। वैदिकवाङ्मय (पुराणादि) के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा इस कालक्रम में पर्याप्त संशोधन किया जा सकता है और यही कार्य लघुरूप में मैंने इस पुस्तक में किया है।

सच यह है कि पाश्चात्यों का उद्देश्य भारत का सच्चा इतिहास लिखना नहीं था, वे भ्रान्तियाँ उत्पन्न करके देश में फूट डालना चाहते थे और वे इस कार्य में शत-प्रतिशत से भी अधिक सफल रहे। पाश्चात्यों का प्रमुख उद्देश्य भारत के गौरव को घटाना या समाप्त करना ही था और वे अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल रहे और आज भारतीय विद्वान् ही अपने सच्चे इतिहास को मानने तैयार नहीं और उनमें ही फूट पड़ जाती है। भ्रामक या मिथ्या इतिहास प्रचार द्वारा भारतीयों को इतना मानसिक एवं सांस्कृतिक दास बना दिया गया कि वे अंग्रेजों की भाषा को भारत में बनाये रखने के लड़ने मरने तैयार हैं और इसी प्रकार मिथ्या इतिहास को भी अधिकांश भारतीय (विद्वान ?) बनाये रखना चाहते हैं और उसमें थोड़ा भी संशोधन नहीं करना चाहते। इस विषय के शिकार अनेक जैनपण्डित (विद्वान) भी हो गये हैं। षड्यन्त्र पूर्ण पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर जैनविद्वानों ने अपने को सनातन (चिरकालीन) भारतीयसंस्कृति से पृथक् मानकर अतिभ्रामक लेख लिखने प्रारम्भ कर दिये, यथा, 'जैनधर्म का प्राचीनइतिहास' पृ० ३२९ पर श्रीबलभद्रजैन के ये विचार इसी भ्रामकविचारधारा का प्रतिनिधित्व करते हैं—

१. जब वैदिक आर्य पश्चिमोत्तर प्रदेश से भारत में प्रविष्ट हुये, उन्हें यहां जिन लोगों से पाला पड़ा, वे शिश्नदेव, व्रात्य और वातरशना मुनियों की उपासना करते थे। उन्नत सभ्यता अत्यन्त समुन्नत और विकसित थी। इतिहासकारों ने उसे द्रविड़सभ्यता का नाम दिया है। उस सभ्यता के दर्शन हमें सिन्धुघाटी के 'मोहनजोदड़ो' और हड़प्पा में मिलते हैं।......

२. यहां के मूलनिवासियों की संस्कृति, जिसे श्रमणसंस्कृति के नाम से जाना जाता था, क्षत्रियों की संस्कृति थी तथा बाहर से आनेवाले आर्यों की

संस्कृति, जिसे वैदिकसंस्कृति पुकारा जाता है, ब्राह्मणों की संस्कृति थी।' (वही पृष्ठ)

इसी प्रकार कुछ जैनविद्वान्-द्रविड़ों के स्थान पर पणि आदि असुर जातियों को श्रमणसंस्कृति का पोषक एवं अनुयायी समझते हैं तथा नागों, सुपर्णों, गन्धर्वों आदि को भी श्रमणसंस्कृति का अनुयायी सिद्ध करने की चेष्टा करते हैं।

यह सब पाश्चात्य (अंग्रेजी) षड्यन्त्र का कुपरिणाम है, यद्यपि फूट (भेद) के बीच भारत में चिरकाल से रहे हैं, तथापि ऐसा भ्रम और परस्पर अविश्वास अंग्रेजों से पूर्व नहीं था।

केवल तीन चार उदाहरणों से उक्त भ्रान्तियां दूर हो जायेंगी।

१. यद्यपि ऋषभ के समय (२७००० वि० पू०) वैदिक, श्रमण, या ब्राह्मणादि जातिसंज्ञायें बिल्कुल नहीं थीं, परन्तु प्राप्त वैदिक (पुराण) एवं जैनवाङ्मय में ऋषभ के पौत्र मरीचि (भरतपुत्र) को वैदिक (ब्राह्मण) धर्म का प्रवर्तक बताया गया है। इसको जैनविद्वानों ने अवश्य पढ़ा है, परन्तु ध्यान नहीं दिया।

२. सभी २४ तीर्थंकर पूर्वकाल में (क्षत्रियराजा के रूप) में वैदिक ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे—सगरभ्राता अजितनाथ, सुव्रतनाथ, कृष्णभ्राता अरिष्टनेमि, पार्श्व एवं महावीर सभी के उदाहरणों से प्रत्यक्ष है कि वे पहिले ब्राह्मणपूजक या वैदिकयज्ञों के कर्ताधर्ता थे। भाई-भाईयों में जाति या नस्ल-आर्य द्रविड़ या सुर-असुर का भेद कैसे हो सकता है। अतः ब्राह्मण और श्रमण मूल में पृथक्-जातियों (नस्लों) का संघर्ष नहीं था। एक ही परिवार के दो व्यक्ति पहिले प्रवृत्तिमार्गी (वैदिक याज्ञिक) एवं उत्तरकाल में निवृत्तिमार्गी (श्रमण-भिक्षु) बन गये। इन दो पृथक् विचारधाराओं या मार्गों के कारण किसी परिवार में हिंसकसंघर्ष (युद्ध) भी नहीं हुआ। फिर जब क्षत्रिय या ब्राह्मण-भिक्षु बन गया—अहिंसामार्ग का अनुयायी बन गया, तब हथियार उठा भी कैसे सकता है, अतः क्षत्रिय रहतेहुये कोई श्रमण (भिक्षु) नहीं बन सकता।

३. किसी भी एक व्यक्ति की जन्म से मरणतक एक जैसी प्रवृत्ति नहीं रह सकती कि वह पूरे जीवन युद्ध करता रहे या मां के पेट से निकलते ही श्रमण या भिक्षुरूप धारण कर ले—२४ तीर्थंकरों के जीवन से यह तथ्य स्वयं सिद्ध है।

४. जैनपुराणों में वर्णित वसु (उपरिचर) के आख्यान से स्पष्ट है कि राजा वसु (क्षत्रिय) ने हिंसामययज्ञ का समर्थन किया, परन्तु वैदिक ब्राह्मण नारद ने हिंसा का विरोध किया तथा अन्य ब्राह्मणऋषि पर्वत ने हिंसा का समर्थन किया।

अतः वैदिक बनना या श्रमण बनना जातियों या नस्लों का संघर्ष नहीं था और नहीं वैदिक या श्रमण दो पृथक् जातियां थीं। सभी २४ तीर्थंकरों के उदाहरणों से प्रत्यक्ष है कि भारत की दो चिरन्तन विचारधारायें थीं—श्रमण और वैदिक (ब्राह्मण)। जातियों या नस्लों-द्रविड़ या असुरों-नागों या पणियों के आधार यह भेद नहीं था। एक ही व्यक्ति (तीर्थंकर) ने अपने जीवन में दोनों (पूर्वकाल एवं उत्तरकाल) मार्गों का अनुसरण किया। इसको भारतीय और अभारतीय आर्य-अनार्य (द्रविड़) या सुर-असुर के भेदों में देखना केवल मिथ्यादृष्टि है, जो पाश्चात्य मिथ्या इतिहासलेखन (षड़यन्त्र) से उत्पन्न हुई है।

आर्य किसी जाति का नाम नहीं था, इसकी कल्पना राजनैतिक उद्देश्यों के लिये अंग्रेजों द्वारा की गई, इस विषय का विस्तृत विवेचन मैंने अपने पूर्व ग्रन्थों में किया है।

पार्श्व का जन्मकाल—

विद्यमान जैनवाङ्मय में पार्श्वनाथ का जन्म नेमिनाथ के ८३७५० वर्ष पश्चात् हुआ अर्थात् ८७५ वर्ष पश्चात् और महावीर से २५० वर्ष पूर्व। महावीर का निर्वाण १७५० वि० पू० हुआ। अतः पार्श्व का समय निर्वाण २०७५ वि० पू० आज से लगभग चार हजार वर्ष पूर्व हुआ। बल्कि प्रथम बालक प्राद्योत राजा विशाखयूप के समकालिक से लगभग एक शती पूर्व। पार्श्व के अनुयायी जिन और बौद्ध राजाओं से कल्कि का संघर्ष हुआ जैसाकि कल्किपुराण में वर्णित है।

वासुदेवकृष्ण की आयु १२५ वर्ष थी, उनका निधन ३०४४ वि० पू० हुआ, और उसीदिन से कलियुग का प्रारम्भ हुआ अर्थात् कलिसम्वत् शुरू हुआ। नेमिनाथ की आयु १००० = १०० वर्ष थी। नेमिनाथ का जन्म कृष्ण के ४ वर्ष पश्चात् हुआ, अतः तदनुसार नेमिनिर्वाण ३०६० वर्ष वि० पू० हुआ, कृष्ण के निधन से २० वर्ष पूर्व इसमें से ८७५ वर्ष घटाने पर (पार्श्वनाथ की आयु १०० वर्ष थी) अतः उनका जन्म २१७५ वि० पू० होना चाहिये और निर्वाण २०७५ वि० पू०।

वंशादि—

जैनग्रन्थों में पार्श्व के पिता का नाम प्रायः अश्वसेन मिलता है, जो काशी के राजा थे।

पुराणों के अनुसार महाभारतयुद्ध के पश्चात् मागध बार्हद्रथ राजाओं के समकालिक काशि में २४ राजा (१००० वर्ष में) हुये। जनमेजय पारीक्षित पाण्डव (२९०० वि० पू०) के समकालिक काशि का राजा सुवर्णवर्मा था। सुवर्णवर्मा के पश्चात् केवल अश्वसेन का नाम मिलता है, केवल जैनपरम्परा (पुराणों) में। अतः काशिराज अश्वसेन २१०० वि० पू० के काशिराज थे। पार्श्व का जन्म वाराणसी में हुआ। पार्श्व की माता का नाम वामादेवी, वर्मिला या वर्मादेवी मिलता है। जैनपुराणों में इनको उग्रवंश का बताया है। "उग्र" शब्द संभवत उरग (नाग) का ही एक रूपान्तर है। दीक्षित ने अपनी पुस्तक 'भारतीय ज्योतिष' में लिखा है—'मेरे मतानुसार पाण्डवों का समय शकपूर्व १५०० और ३००० के मध्य में है, इससे प्राचीन नहीं हो सकता।'

उपर्युक्त मतों में पार्जीटर, रायचौधरी आदि का मत, बिना किसी प्रमाणों के अपनी कल्पना पर आधृत है अतः निराधार होने से स्वयं ही अस्वीकृत हो जाता है, और डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल प्रभृति का मत (१४०० ई०पू०) निम्न भ्रमों पर आधारित है—

१. सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की काल्पनिक समकालीनता।

२. बुद्धनिर्वाण के सम्बन्ध में भ्रामक सिंहलीतिथि।

३. अर्वाचीन जैनपरम्परा में महावीर की भ्रामकतिथि।

४. अशोक शिलालेखों में तथाकथित यवनराज्यों का उल्लेख मानना।

५. खारबेल की हाथीगुफा शिलालेख का भ्रामकपाठ।

६. पुराणों में परीक्षित से नन्द तक १०१५ वर्ष मानना—पुराणपाठ की भ्रष्टता।

७. युगपुराण में डेमिट्रियस यूनानी का, उल्लेख मानना (डॉ० जायसवाल द्वारा)।

तृतीयमत, पी० सी० सेन का, कल्हण के एक महान् भ्रम के ऊपर आधारित है, जो वाराहमिहिर के शकसम्वत्सम्बन्धी उल्लेख से उत्पन्न हुआ।

चतुर्थ मत, ३०४४ वि० पू० या ३१०२ ई० पू०, कलिसम्वत् के प्रारम्भ से ३६ वर्ष पूर्व हुआ, अतः युद्ध की तिथि ३०८० वि०पू० या ३१३८ ई०पू० थी। सर्वप्रथम सर्वमान्य भारतीय मत का दिग्दर्शन करेंगे, तदनन्तर इस मत में जो बाधायें उपस्थित हुईं, उनका निराकरण करेंगे।

इतिहासपुराणों में निःशंकरूप या निर्विवादरूप से उल्लिखित है महाभारत युद्ध कलिद्वापर की सन्धि में हुआ, यही मत गर्गादि ज्योतिर्विदों का था, इनके उद्धरण व प्रमाण पूर्व लिखे जा चुके हैं। अब शिलालेखों पर उद्धृत प्रमाणों पर विचार-विमर्श करेंगे।

एक प्राचीनताम्रपत्र में प्राग्ज्योतिषपुर के राजा भगदत्त से पुष्यवर्मा राजा तक ३००० वर्ष व्यतीत होने का उल्लेख है......

भगदत्तः ख्यातोजयं विजयं युधि यः समाह्वयत।
तस्यात्मजः क्षतारेर्वज्रदत्तनामाभूत्।
वश्येषु तस्य नृपतिषु वर्षसहस्त्रत्रयं पदमवाप्य।
यातेषु देवभूयं क्षितीश्वरः पुष्यवर्माभूत्।
(एपीग्राफिक इण्डिया २९१३-१४ पृ० ६५)

सर्वप्रसिद्ध शिलालेख चालुक्यमहाराज पुलकेशी द्वितीय का है, जिसने हर्ष को परास्त किया था—इसमें कलिसम्वत् और भारतयुद्ध का उल्लेख......

त्रिंशत्सु त्रिसहस्रेषु भारतादाहवादितः।
सप्ताब्दशतयुक्तेषु शतेष्वब्देषु पंचसु
पंचाशत्सु कलौ काले,......।।

तदनुसार पुलकेशी द्वितीयपर्यन्त कलिसम्वत् के ३६३७ वर्ष व्यतीत हो चुके थे। इनके अतिरिक्त अन्य बहुत से शिलालेखों में यही कलिसम्वत् की गणना मिलती है, जिसके अनुसार कलिसम्वत् और भारतयुद्ध क्रमशः ३०४४ वि० पू० और ३०८० वि० पू० हुये।

अतः सर्वसम्मति से भारतयुद्ध ३०८० वि० पू० हुआ, केवल कल्हण ने भ्रमवश इस तिथि पर शंका की है......

भारतं द्वापरान्तेऽभूद्वार्तयेति विमोहिताः।
केचिदेतां मृषा तेषां कालसंख्यां प्रचक्रिरे।।

कल्हण का मन्तव्य है कि आख्यानों में, जो भारतयुद्ध द्वापरान्त में उल्लिखित है, वह मृषा और भ्रान्ति पर आधारित है। वस्तुतः भ्रान्ति कल्हण को

ही हुई है, जो भारतयुद्ध को कलि के ६५३ वर्ष व्यतीत होने पर हुआ मानता था......

शतेषु षट्सु सार्धेषु त्र्यधिकेषु च भूतले ।
कलेर्गतेषु वर्षाणामभूवन् कुरुपाण्डवाः ।।[1]

कह्लण के इस भ्रम का कारण कश्मीरी ज्योतिषी वराहमिहिर द्वारा निर्दिष्ट एक शकसम्वत् था—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपंचद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ।। (बृ० सं० १३/३)

इस शकसम्वत् का प्रारम्भ युधिष्ठिरशक (सम्बत्) के २५२६ वर्ष पश्चात् होता था अर्थात् विक्रम से ५५४ वर्ष पूर्व ।

प्राचीन भारत में 'शकशब्द' 'सम्बत्' का पर्याय हो गया था, क्योंकि जब-जब भी किसी शकराज्य का उत्थान और पतन होता था तब-तब ही एक नवीन 'शकसम्वत्' की स्थापना होती थी। कम से कम दो शकारि विक्रम (शूद्रक विक्रम तथा चन्द्रगुप्त विक्रम) उत्तरकाल में प्रसिद्ध हुये, इनसे पूर्व भी अनेक शकारि और शकराज हो चुके थे, वराहमिहिर स्वयं शकारि विक्रमादित्य शूद्रक प्रथम का सभारत्न था, अतः वह विक्रमादित्य के समकालीन था, वह शालिवाहन शक का उल्लेख कैसे कर सकता था। वराहमिहिर की विक्रमपूर्वविद्यमानता का एक और प्रमाण है कि विक्रम ने दिल्ली के निकट मिहिरावली नाम की वेधशाला वराहमिहिर ज्योतिषी के नाम से बनवाई थी, जिसे आजकल महरौली कहते हैं। मैहरौली में विष्णुध्वज (कुतुबमीनार) भी विक्रम ने निर्मित कराई थी और लौहस्तम्भ पर चन्द्रगुप्तशकारि द्वितीय की यशःकीर्ति उत्खनित मिलती है। इन सब प्रमाणों से वराहमिहिर का समय विक्रमपूर्व निश्चित है, अतः उसने वर्तमान शकसम्वत् का उल्लेख नहीं किया। जिससे कह्लण को महती भ्रान्ति हुई। हमने अन्यत्र न्यूनतम चार शकसम्वतों का निर्देश किया है, वराहमिहिर निर्दिष्ट शकसम्वत् वि० पू० ५५४ में सम्भवतः आम्लाट शकराज ने चलाया था।

इसी कह्लण की भ्रान्ति के आधार पर श्री पी० सी० सेन ने भारतयुद्ध की तिथि २५६६ ई० पू० मानी है।

---

१. राजतरंगिणी (१/४९)
२. वही (२/५१)

जिन भ्रान्तियों के कारण भारतयुद्ध की तिथि १४५० ई० पू० मानी जाती है उनमें सर्वप्रधान है चन्द्रगुप्त मौर्य की सिकन्दर यूनानी (३२७ ई० पू०) की समकालीनता की मनघड़न्त कहानी। इस कहानी को घड़नेवाले थे भारत में सर्वप्रथम अंग्रेज संस्कृत अध्येता विलियमजोन्स। विलियम-जोन्सकृत यह मनघड़न्त कहानी, आज इतनी सुदृढ़ मान्यता प्राप्त कर चुकी है, जितना वैज्ञानिक जगत् में डार्विन का विकासवाद। इन दोनों कहानियों के विरुद्ध सोचना भी आज अबुद्धिमानीपूर्ण एवं अवैज्ञानिक आयाम माना जायेगा। सामान्यजन इन दोनों मान्यताओं के विरुद्ध सोचने का कष्ट ही नहीं उठाते।

परन्तु, मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकार भारत पर सिकन्दर का आक्रमण, आन्ध्रसातवाहन राजा हाल के समय में हुआ मानते थे। इसका उल्लेख, स्वयं, एक पाश्चात्यविद्वान् इलियट ने भारत के इतिहास में किया है—सिन्ध का इतिहासकार युनयलुक तवारीख से उद्धरण संग्रह करते हुए इलियट ने लिखा है—'ऐसा कहा जाता है कि हाल संजवार का वंशज था, जो जन्दरज (जयद्रथ) का पुत्र था और इसकी माता राजा दहराज (धृतराष्ट्र) की पुत्री थी' (पृ० ७४), 'फिर हिन्दुओं का यह देश राजा कफन्द ने अपने बाहुबल से जीत लिया......कफन्द हिन्दू नहीं था।...वह यूनानी एलैकजेन्डर का समकालीन था। उसने स्वप्न में कुछ दृश्य देखे और ब्राह्मण से उसका अर्थ पूछा। उसने एलैक्जेन्डर से शान्ति की इच्छा की थी और इस निमित्त उसको अपनी पुत्री, एक निपुण वैद्य, एक दार्शनिक और एक कांच का पात्र भेंट-स्वरूप भेजे। **सामीद ने हिन्दुस्तान के राजा हाल से** सहायता मांगी (पृ० ७५), इस घटना के पश्चात् एलैकजेन्डर भारत आया।'

'कफन्द के बाद राजा अयन्द हुआ, फिर रासल। रासल के पुत्र रव्वाल और बरकमारीस (विक्रमादित्य) थे।'[1]

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि सिकन्दर का भारत पर आक्रमण राजा हाल के समय में हुआ था और इस प्रमाण से आन्ध्र सातवाहनवंश का समय भी निश्चित हो जाता है तथा पुराणप्रमाण से आन्ध्रसातवाहन राज्य का

---

१. इलियटकृत भारत का इतिहास, भाग पृ० ७६ (अनु० डॉ० मथुरालाल शर्मा प्रकाशक—शिवलाल अग्रवाल आगरा (१९७३).

२. आन्ध्राणान्ते का पदविच्छेद है—आन्ध्राणाम्+ते=आन्ध्राणान्ते।

उदय २४०० कलिसम्वत् या ६४४ वि० पू० या ७०१ ई० पू० हुआ, क्योंकि प्राचीनपुराणपाठ के अनुसार शन्तनुपिताप्रतीप से आन्ध्रपूर्वपर्यन्त एक सप्तर्षिचक्र या २७०० वर्ष अथवा परीक्षित पाण्डव से आन्ध्रोदयपर्यन्त २४०० वर्ष हुये—

सप्तर्षयस्तदा प्राहुः प्रतीपे राज्ञि वै शतम् ।
सप्तविंशेः शतैर्भाव्या आन्ध्राणान्तेन्वयाः पुनः ।
(वायु० ९९/४१८)

सप्तर्षयो मघायुक्ताः काले परीक्षिते शतम् ।
आन्ध्राणान्ते सचतुर्विंशे भविष्यन्ति शतं समाः ।।
(मत्स्यपु० २७३/४४)

आन्ध्रवंश के राजाओं की सामान्य संज्ञा 'सातवाहन' या हाल थी, आन्ध्रवंश के ३० राजाओं ने ४५६ वर्ष राज्य किया—

इत्येते वै नृपास्त्रिशदांध्रा भोक्ष्यन्ति वै महीम् ।
समाः शतानि चत्वारि पंचाशतषट् तथैव च ।।
(ब्रह्माण्ड० २/३/७४-१७०)

मौर्यराज्य की स्थापना आन्धसातवाहनों से आठ सौ वर्ष पूर्व कलिसंवत् १६०१ में अथवा १४४४ वि०पू० हुई थी । चन्द्रगुप्त मौर्य और सिकन्दर की समकालीनता पूर्णतः मनगढ़न्त कहानी है, चन्द्रगुप्त मौर्य, सिकन्दर से लगभग १२०० वर्ष पूर्व हुआ, अतः सिकन्दर के आक्रमण के समय, २७० वि०पू० भारत पर गौतमीपुत्र सातवाहन या पुलोमावि वासिष्ठीपुत्र सातवाहन (शातकर्णि=हाल) का शासन था, जैसाकि इलियट उद्धृत मुस्लिम इतिहासकार के कथन से पुष्टि होती है ।

अब हम विलियम जोन्स रचित कहानी का संक्षेप में खण्डन करते हैं । अपनी तथाकथित स्थापना में विलियमजोन्स स्वयं एक महान् कठिनाई देखता था कि मैगस्थनीज ने लिखा है कि यमुनानदी पालिबोथ्राई (पाटलिपुत्र ?=शुद्ध=पारिभद्रा नगरी) में होकर बहती थी—The reiver Jamones flows through the Palibothri into Gangas between Methora and Carisobora. अर्थात् यमुनानदी पालिबोथ्राई में होकर बहती है, जिसके एक ओर मथुरा और दूसरी ओर कैरिसोबारा (कृष्णपुर=शूरपुर=बटेश्वर) बसे हुए थे। (Curtius Para XIII), मैगस्थनीज का यही कथन जोन्स की स्थापना पर पानी फेर देता है, अतः पालिबोथ्राई और पाटलिपुत्र एक नहीं हो सकते ।

सर्वप्रथम पं० भगबद्दत्त ने सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता का खण्डन, भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग १, (पृ० २८८ से २९७ तक) किया। उसका सार इस प्रकार है—(१) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्राई को हरकुलीज ने बसाया है, (२) प्रसई (पर्शु ?) जाति सिन्धुतट पर बसी हुई है। प्रसइयों का राजा सैण्ड्रोकोट्स है। (३) पालिबोथ्राइएर्नबोअस और गंगा तट पर बसा हुआ है। ध्यान रखना चाहिए कि मैगस्थनीज ने सोन और एर्नबोअस नदियाँ को पृथक्-पृथक् लिखा है। (४) पालिबोथ्रा के आगे उत्तर में मलेयुस पर्वत है, (५) टामेली के अनुसार प्रसई जनपद के निकट सौरवतिस (शरावती या सौरवत्स) प्रदेश है। (६) मैगस्थनीज ने सूचित किया है कि सैण्ड्रोकोट्स सिन्धुदेश का सबसे बड़ा राजा था, परन्तु पोरस सैण्ड्रोकोट्स से भी बड़ा राजा था। (७) सैण्ड्रोकोट्स के राज्य के पार्श्व में गन्दरितन बसे हुये थे : (८) सैण्ड्रोकोट्स के पुत्र का नाम एमित्रोचेट्स था। (९) मैगस्थनीज ने लिखा है कि पालिबोथ्रा के नाम पर वहाँ के राजा को भी पालिबोथ्रा कहते थे। (१०) गंगा के निकट का समस्त प्रदेश पालिबोथ्रा कहा जाता था।

उपर्युक्त दश कथनों में से एक भी चन्द्रगुप्तमौर्य और पाटिलपुत्र पर नहीं घटता। प्रथम, मैगस्थनीज के अनुसार पालिबोथ्रा को हरकुलीज ने बसाया, परन्तु भारतीयग्रन्थ एकमत से कहते हैं कि पाटिलीपुत्र को शिशुनागवंशीय राजा उदायी ने बसाया[1], जो चन्द्रगुप्तमौर्य के २४० वर्ष पूर्व हुआ था। मैगस्थनीज के अनुसार हरकुलीज ने सैण्ड्रोकोट्स से १३८ पीढ़ी पूर्व पालिबोथ्रा बसाया। अतः मैगस्थनीज का कथन पाटिलपुत्र पर नहीं घटता।

द्वितीय आपत्ति, मैगस्थनीज ने लिखा है कि प्रसई की राजधानी पालिबोथ्रा है। जोन्स आदि ने 'प्रसई' को प्राच्य का अपभ्रंश मानकर सन्तोष कर लिया। परन्तु मैगस्थनीज ने यह भी लिखा है कि सैण्ड्रोकोट्स सिन्धुप्रदेश का राजा था।[2] सिन्धु और प्राच्य तोनों ही विपरीत दिशा में है। सिन्धु

---

१. ततः कलियुगे राजा शिशुनागात्मजो बली।
उदायी नाम धर्मात्मा पृथिव्यां प्रथितोगुणैः।
गंगातीरे स राजर्षिः दक्षिणेच महानदे।
स्थापयेन्नगरं रम्यं पुष्पारामजनाकुलम्।
तेषां पुष्पपुरं रम्यं नगरं पाटलीसुतम्॥ (युगपुराण)

2. Sandrocotus was the king of Indians around the Indus. "Indus Skirts frontiers of the Prasi."

उदीच्य या पश्चिम में है और मगध (पाटिलीपुत्र) पूर्व (प्राच्य) में है। क्या मैगस्थनीज प्रसिद्ध 'मगध' जनपद का नाम नहीं लिख सकता था और क्या पाटलिपुत्र समस्त प्राच्यजनपदों की राजधानी थी ? क्या मैगस्थनीज संस्कृत व्याकरण का व्यापक एवं गहन ज्ञान प्राप्त किये बिना ऐसे सूक्ष्म परिभाषिक शब्द (प्राच्य) का प्रयोग देश के लिए करता। पुनः मगध के निकट कौन सा सिन्धु तट है ? वस्तुतः मैगस्थनीज ने न तो प्राच्य, न मगध, न पाटलिपुत्र का कोई उल्लेख किया है।

वास्तव में मैगस्थनीज वर्णित प्रसईजाति, जिस सिन्धुनदी के तट पर बसी हुई थी, वह मध्यदेश में थी, पं० भगवद्दत्त ने इस सिन्धु को महाभारत के प्रमाण से खोज निकाला है—

चेदिवत्साः करुषाश्च भोजाः सिन्धुपुलिन्दकाः। (भीष्मपर्व)

मध्यदेश की सिन्ध को आज भी 'कालीसिन्ध' कहते हैं, इसी कालीसिन्ध के तट पर पालिबोथ्रा बसा हुआ था। अतः मध्यदेश के पालिबोथ्रा को पाटलिपुत्र मानना महती भ्रान्ति है।

तृतीय, जोन्स ने एर्नबोअस को शोण का पर्याय 'हिरण्यबाहु' मानकर महती भ्रान्ति उत्पन्न कर दी। वस्तुतः मैगस्थनीज ने शोण और एर्नबोअस पृथक्-पृथक् नदियां लिखा है। अपनी भ्रान्ति को सत्य मानकर जोन्स, मैगस्थनीज पर दोषारोपण करता है कि उसने अज्ञान या अध्यान के कारण उसका पृथक्-पृथक् नाम लिखा है। वह असम्भव कल्पना है कि अपने निकटवर्ती राजधानी की एक नदी के, कोई राजदूत भ्रान्ति से दो नाम लिखे। जोन्स से पूर्व अन्विल्ल नाम के अंग्रेज लेखक ने एर्नबोअस की पहिचान 'यमुना' से की थी, पं० भगवद्दत्त ने एर्नबोअस को यमुना का पर्याय, 'अरुणवहा' माना है। कुछ भी हो, शोण और एर्नबोअस पृथक्-पृथक् नदियाँ थीं। चतुर्थ, मैगस्थनीज ने पालिबोथ्रा से आगे मलेउसपर्वत बताया है, इसको लोग मल्ल (वृजि) जनपद का पार्श्वनाथ (शिखरजी) पर्वत मानते हैं, पार्श्वनाथ का नाम मल्लपर्वत कभी नहीं रहा। यह मल्लपर्वत, शाल्व, युगन्धर, कठादि जनपदों का निकटवर्ती मालवजनपद का पर्वत था, जहांपर सिकन्दर को मालवसैनिक का प्राणघातक तीर लगा था।

पंचम, मैगस्थनीज द्वारा पोरस को सैण्ड्रोकोट्स से बड़ा राजा बताना भी चन्द्रगुप्तमौर्य पर नहीं घटित होता, क्योंकि मौर्य तो भारतसम्राट् था। पोरस तो पंजाब के लघुभागमात्र का नरेश था।

षष्ठ, चन्द्रगुप्तमौर्य का अमित्रकेतु (अमित्रोचेट्स) नामका कोई उत्तराधिकारी नहीं था, उसके पुत्र का प्रसिद्ध नाम बिन्दुसार था, फिर ऐसे प्रसिद्ध नाम को छोड़कर 'एमित्रोचेट्स' नाम लेने की क्या आवश्यकता थी।

सैण्ड्रोकोट्स के पार्श्वस्थ क्षत्रिय 'गन्दरितन' निश्चय ही युगन्धरक्षत्रिय थे, जो शाल्वों का एक अवयव माने जाते थे—

उद्वम्बरास्तिलखला भद्रकारा युगन्धराः।
भुलिंगाः शरदण्डाश्च साल्वावयवसञ्ज्ञिताः॥

(काशिका ४/१/१७३)

इन जनपदों के निकट मल्लजनपद था, जिसका उल्लेख महाभारत (विराटपर्व ११९) में है—'दशार्णा वनराष्ट्रं च मल्लाः शाल्वा युगन्धराः।'

इन्हीं शाल्वावयव युगन्धरों के निकट पारिभद्र जनपद था, जिसका राजा सैण्ड्रोकोट्स था।[1] मैगस्थनीज ने स्पष्ट लिखा है कि पालिबोथ्रा के राजा को पालिबोथ्रा कहते हैं, अतः पालिबोथ्रा केवल नगर का नाम नहीं था, वह जनपद भी था। प्राचीनभारत में जनपद के नाम से राजा को केकय, शिवि, अंग, वंग, कलिंग कहा जाता था। अतः पालिबोथ्रा पाटिलपुत्रनगर नहीं सकता, वह जनपद था पारिभद्र और वहाँ की राजधानी थी पारिभद्रा, अतः मैगस्थनीज को देश, नगर और राजा-तीनों के नाम समान दिखाई पड़े, पालिबोथ्रा में 'बोथ्र' भाग 'पुत्र' का अपभ्रंश नहीं है, वह 'भद्र' का अपभ्रंश था। महाभारतयुद्ध पर्वों में पारिभद्रक्षत्रियों का बहुधा संकेत मिलता है, जो पांचालों के साथी थे।[2] सम्भवतः पारिभद्र और भद्रकार (शाल्वावयव) एक ही थे। नगर के नाम से किसी राजा को सम्बोधित नहीं किया जाता था, जैसे मथुरा, अयोध्या, कौशाम्बी, राजगृह के नाम से राजा को वैसा नहीं कहते,

---

१. सैण्ड्रोकोट्स का शुद्ध संस्कृत रूप='चन्द्रकेतु' है न कि चन्द्रगुप्त; शूद्रक के समकालीन एक चकोरनाथ 'चन्द्रकेतु' का उल्लेख हर्षचरित (षष्ठ उच्छवास) में मिलता है='ससचिवमेवइरोचकार चकोरनाथं चन्द्रकेतुं जीवितात्।" सम्भव है यही 'चन्द्रकेतु' सिकन्दर का समकालिक हो। शूद्रक एक वंशनाम था।

२. धृष्टद्युम्नश्च पांचालयस्तेषां गोप्ता महारथः।
सहितः पृतनाशूरैरथमुख्यैः प्रभद्रकैः॥ (भीष्मपर्व १९)

अतः पाटलिपुत्र के नाम से राजा को पाटिलपुत्र नहीं कहा जाता, परिणामतः पाटलिपुत्र और पालिबोथ्रा एक नहीं थे। अतः मैगस्थनीज ने यथार्थ ही लिखा है कि पारिभद्रा (पालिबोथ्रा) के राजा को 'पारिभद्र' (पालिबोथ्रा) कहा जाता था।

मैगस्थनीज यदि मगध की राजधानी पाटलिपुत्र में रहता तो और यदि चन्द्रगुप्तमौर्य का समकालिक होता, तो वह मगध का नाम अवश्य लेता। नन्द, मौर्य के साथ जगद्विख्यात राजनीतिज्ञ चाणक्य या कौटिल्य का उल्लेख करता, परन्तु उसने इनमें से किसी का नाममात्र भी नहीं लिया, अतः मैगस्थनीज के नाम पर सिकन्दर और चन्द्रगुप्तमौर्य की समकालीनता की कहानी पूर्णतः खण्डित हो जाती है। इस कहानी के टूटने पर महाभारतयुद्धतिथि और कलिसंवत् की अमान्यता की एक प्रमुख कठिनाई दूर हो गई। अर्थात् अब कलिसंवत् और महाभारतयुद्ध की तिथि क्रमशः ३०४४ वि० पू० ३०८० वि० पू० सिद्ध हो जाती है।

बुद्धनिर्माण की सिंहलीतिथि-भ्रामक मान्यता

पाश्चात्य लेखक भारतीय इतिहास की तिथियों को अर्वाचीनतम सिद्ध करना चाहते थे, अतः जिसभी कल्पना या किसी विदेशी ग्रन्थ में वह अपनी मान्यता को सुदृढ़ कर सके वही उन्होंने किया। पाश्चात्यों ने बुद्धनिर्वाण की उस अर्वाचीनतमतिथि को माना, जो श्रीलंका या सिंहलीपरम्परा में थी, यद्यपि सिंहलीपरम्परा में भी बुद्धनिर्वाण की तिथि ६८६ ई०पू० मानी जाती थीं, परन्तु पाश्चात्यों ने अपनी मनमानी काल्पनिक गणना, विशेषतः जोन्स की उपर्युक्त स्थापना (सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य की समकालीनता के परिप्रेक्ष्य में) इस तिथि को और घटाकर ४८७ ई०पू० या ४६४ ई०पू० कर दिया।

सत्य की विस्मृति के कारण प्राचीन बौद्धदेश बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियां मानते थे। चीनी यात्री ह्यूनसांग ने अपने समय में माने जानी वाली बुद्धनिर्वाण की विभिन्न तिथियों का उल्लेख किया है, तदनुसार उसके समय (सप्तमशती) में बुद्ध को निर्वाण प्राप्त हुए १२०० या १३०० या १५०० वर्ष व्यतीत हुए माने जाते थे, ऐसे चीनी विद्वानों के विभिन्न मत थे, अतः चीन में ई०पू० ७००, ८०० या १००० वर्ष में बुद्ध निर्वाण माना जाता

था।[1] फाहियान ने लिखा है कि हानदेश में चाववंशी राजा पिंग के राज्य-काल से १४६७ वर्ष पूर्व अर्थात् १०६० ई०पू० बुद्धनिर्वाण हुआ।[2] जोन्स ने भी तिब्बती वर्णनों के आधार पर बुद्धनिर्वाणकाल १०२७ई०पू० माना था।[3] राजतरंगिणी में बुद्धनिर्वाण १४४४ ई०पू० माना है। श्री ए०वी० त्यागराज ने 'इण्डियन आर्किटेक्चर' पुस्तक में कुछ वर्ष पूर्व ग्रीकनगर एथेन्स में प्राप्त शिलालेख में एक भारतीय भिक्षु, जो १००० ई०पू० वहाँ गया था, उसकी समाधि मिली है, तदनुसार उन्होंने बुद्ध का समय १७०० ई०पू० माना हैं। यही मान्यता पुराणों की गणना के अनुकूल है, पुराणों के अनुसार बार्हद्रथ-राजाओं ने १००० वर्ष राज्य किया, प्रद्योतों ने १३८ वर्ष, शिशुनागवंशीय षष्ठनरेश अजातशत्रु के ८वें वर्ष तक १७२ वर्षों का योग १३१० वर्ष हुआ। बुद्ध, कल्कि से लगभग २०० वर्ष पश्चात् हुए। कल्कि का समय विशाखयूप के राज्यकाल ११११० कलिसंवत् में था तो बुद्ध का निर्वाणकाल १३१० कलि संवत्, बुद्ध का निर्वाण ८० वर्ष की आयु में हुआ, अतः उनका जन्म कल्कि से १२० वर्ष पश्चात् हुआ, स्थूलरूप से बुद्ध और कल्कि में एक शताब्दी का ही अन्तर था।

पुरातनजैनवाङ्मय में महावीर स्वामी का निर्वाणकाल—

इसमें कोई सन्देह नहीं कि महावीर और बुद्ध समकालिक थे, परन्तु वर्तमान वीरनिर्वाण सम्वत् की गणना अत्यन्त अर्वाचीनकाल में की गई है, यद्यपि वीरसंवत् अत्यन्त पुरातन था, वीरसम्वत् ८४ का एक शिलालेख प्राप्त हो चुका है। यथार्थ में प्राचीन जैनवाङ्मय अनेक बार आक्रमणादि में नष्ट हो चुका था, वाङ्मय और परम्परा के अभाव में जैनाचार्यों ने महावीर-निर्वाण की एक अर्वाचीन तिथि मान ली। वस्तुतः एक प्राचीन श्वेताम्बर-ग्रन्थ तित्थोगाली में वीरनिर्वाण और (जैन) कल्कि का अन्तर १६२८ वर्ष माना है, यह कल्कि (सम्भवतः यशोवर्मा) गुप्तराज्यारम्भ (के २५० वर्ष) पश्चात् हुआ, इस गणना से महावीरनिर्वाण १६७८ वि०पू० हुआ। यह तिथि पुराणगणना के अनुकूल मत है, और तथापि इसमें स्वल्प त्रुटि है, वास्तव में महावीर, बुद्ध से कुछ वर्ष पूर्व ही हुये थे अतः उनका निर्वाणकाल १७०० वि०पू० से १८०० वि०पू० के मध्य में था।

---

१. फाह्यान का यात्रावृतान्त (हिन्दी) पृ० १६

२. जोन्स ग्रन्थावली, भाग-४, पृ० १७।

अशोक शिलालेखों में तथाकथित यवनराजा या यवनराज्य ?

अशोक के शिलालेखों का गम्भीर नहीं, सामान्य अध्येता भी तुरन्त भांप लेगा कि उनमें किसी राजा का नामोल्लेख नहीं, राज्यों का नाम है—एक दो शिलालेखों के मूल पाठ द्रष्टव्य हैं—

१. 'स्वमपि प्रचंतेषु यथा चोडा पाडा सतियपुतो केतलपुत्रों आ तबबंणी अतियोक योनराज ये वा पि तस अतियोकस समीप...।।' (गिरनारलेख)।

२. सऽयोनकाबोज गधरन रठिकपितिकिन ये (पेशावर, खरोष्ठी लेख)।

३. योजनशतेषु य च अतियोक नम योनराज परं च तेन अतियोके न चतुरे रजनि तुरमये नम अतकिनि नम मक नम अलिकसुन्दरो नम नि च चोड पण्ड...। (शाहबाजगढ़ी—रावलपिंडीपाठ)।

पाश्चात्यलेखकों ने स्वयं मूर्ख बनकर सभी को मूर्ख बनाया; स्पष्टतः शिलालेखों में उल्लिखित चोड (चोल) पाडा (पाण्डय), सतियपुत (सत्यपुत्र) केतलपुत (केरलपुत्र), तंबपंणी (ताम्रपर्णी=सिंहल), कम्बोज, गान्धार, राष्ट्रिक, मग आदि जब राज्यों या देशों के नाम हैं, तब तुरमय, अन्तकिन योन और अलिकसुन्दर आदि राजाओं के नाम कैसे हो गये, स्पष्ट ही इनको राजा मानना अतिभ्रम या मूढ़ता या षड़यन्त्र ही है। 'योन' किसी राजा का नाम नहीं हो सकता, वह राज्य का ही नाम है, अतः स्वयं-सिद्ध है—तुरमय, मग, अतकिन और अलिकसुन्दर भी निश्चय ही राज्यों के नाम थे। इनके राज्य होने का एक और प्रमाण शिलालेख में ही है—'योजनशतादि' दूरी का उल्लेख, यह उल्लेख स्थान या देश के साथ ही सार्थक है, राजा के साथ निरर्थक। अतः अशोक के धर्मलेखों में जब किसी राजा का नामोल्लेख है ही नहीं, तब उनका अन्टियोख द्वितीय, टालेमी, एन्टिगोनस, मगस, एलेक्जेण्डर नाम के राजा मानना घोर अज्ञान एवं हास्यास्पद, परिणामतः अनैतिहासिक कल्पना है।

शिलालेख के पाठ में स्पष्ट राजनि या 'रजञि' पठित है, जो निश्चय ही राज्ये (सप्तमीप्रयोग) है न कि राज्ञि, शिलालेखपाठ में 'तंबपंणी राज्ञि' पाठ सार्थक बनता ही नहीं।

अशोक के शिलालेखों में उल्लिखित पंचयवनराज्य अत्यन्त पुरातन थे, इनका वर्णन रामायण, महाभारत और पुराणों में लिखता हैं—सम्राट सगर के समय में उक्त पंचयवनराज्यों के राजाओं का सगर से युद्ध हुआ था, हैहयनरेश के पक्ष में—

यवनाः पारदाश्चैव काम्बोजाः पह्लवाः शकाः ।
एतेह्यपि गणाः पंच हैहयार्थे पराक्रमन् ।।

(हरि० १/१३/१४)

ये पंच यवनराज्य भारत की पश्चिमी सीमान्त में अवस्थित थे, न कि मिश्रादि में । अत: अशोक के शिलालेखों में किसी यूनानी राजा का उल्लेख नहीं है । भारतीयगणना से अशोक का राज्याभिषेक १३९५ वि० पू० में हुआ था ।

खारवेल के हाथीगुफा लेख से भ्रम—

खारवेल के शिलालेख में उल्लिखित यवनराज को डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'डिमिट' पाठ पढ़कर 'डेमोट्रियस' यूनानी राजा बना दिया, उसमें उल्लिखित बृहस्पतिमित्र को पुष्पमित्र शुंग के समकालिक और उनका समय १८७ ई० पू० माना गया । शिलालेखों को लिपि-विशेषज्ञ (?) अपने मनमाने ढंग से पढ़कर अनेक मनमाने शब्द और अर्थ बना लेते हैं, अत: उनसे वैसे भी निश्चित परिणाम नहीं निकाले जा सकते । फिर भी यदि हाथीगुफा शिलालेख शुद्धरूप में पढ़ा गया है, यह मान भी लिया जाय तो उसमें उल्लिखित 'यवनराजा' का न तो कोई नाम है और बृहस्पतिमित्र को पुष्यमित्रशुंग मानना कोरी कल्पना है, यदि वह बृहस्पतिमित्र, शुंग होता तो उसका 'शुंग' नाम से ही उल्लेख होता जैसाकि शिलालेख में 'शातकर्णि' का केवल प्रसिद्ध वंशनाम उल्लिखित है, उसका नाम नहीं लिखा ।[1]

अत: उक्त शिलालेख के आधार पर शुंगकाल का निर्णय नहीं किया जा सकता, जबकि स्वयं खारवेल का समय निश्चित नहीं है, हाँ शिलालेख में 'शातकर्णि' के उल्लेख से यह निश्चित हो सकता है खारवेल किसी सातवाहन राजा के समकालीन था, शुंगों के नहीं । शुंगों और सातवाहनों के मध्य अनेक शताब्दियों का अन्तर था—कम से कम चार शताब्दी का; अत: शुंगों और शातकर्णियों की समकालीनता का प्रश्न ही नहीं उठता, पुराणलेख इसी पक्ष में है ।

---

१. हाथीगुफा शिलालेख के कुछ अंश प्रमाणार्थ द्रष्टव्य हैं—'द्वितिये च वसे अचितयिता सातकनिं पछिमदिसं...अपयातो यवनराजं...यच्छति... मागधं व राजानं बहसतिमितं पादे वंदापयति ।'

युगपुराण में धर्ममीत तथाकथित डेमेट्रियस का उल्लेख—भ्रान्त-धारणा—

काल्पनिक गणनाओं के आधार पर डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने 'युग पुराण' में 'धर्ममीत' के रूप में यूनानी 'डेमेट्रियस' का उल्लेख मानकर उसे शुंगों के समकालीन बना दिया। जिस प्रकार हाथीगुफाशिलालेख में यवन-राज के साथ 'दिमित' पाठ बनाकर अपनी कल्पना पर रंग चढ़ाया, उसी प्रकार 'धर्ममीत' शब्द को जायसवाल ने ग्रीक डेमेट्रियस माना। डेमेट्रियस का शुद्ध संस्कृत 'दत्तामित्र' होता है।

युगपुराण में डेमेट्रियस का उल्लेख कोरी कल्पना, वरन् निरर्थक भी है, इसके निम्न हेतु हैं—

श्री डी०आर० मनकड़ ने एक नवीन प्राप्त गार्गीसंहिता की हस्तलिखित प्रति के आधार पर 'युगपुराण' का जो पाठ प्रकाशित किया है, वह इस प्रकार है—

धर्मभीततमा वृद्धा जनं मोक्ष्यन्ति निर्भयाः। (पंक्ति १११)

इसका सरलार्थ है 'धर्म से भयभीत वृद्धपुरुष प्रजाजनों को भय से मुक्त करेंगे।' अतः युगपुराण में किसी भी यवन अथवा यूनानीराजा का उल्लेख नहीं है।

गार्गीसंहिता की विभिन्न हस्तलिखित प्रतियों में उपर्युक्त पंक्ति के चार पाठ मिले हैं—धर्मभीततमा, धर्ममीततमा, धर्ममीयतमा और धर्म-मीततमा। इनमें 'धर्मभीततमा' पाठ शुद्ध और सार्थक है, शेष अशुद्ध एवं निरर्थक हैं। क्योंकि डा० जायसवाल अपने द्वारा निर्मित 'धर्ममीततमा' पाठ में 'डेमेट्रियस'[1] और उसके ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' का उल्लेख मानते थे, परन्तु उसका ज्येष्ठ भ्राता 'तमा' कौन था, वह डा० जायसबाल स्वयं नहीं बता सके। अतः धर्ममीत (शुद्ध धर्ममीत) का डेमेट्रियस मानना कोरी कल्पना-मात्र ही है। द्वितीय, यदि उक्त श्लोक में किसी राजा का नामोल्लेख होता

१. महाभारत के आदिपर्व में दत्तामित्र सौवीर या यवन का उल्लेख है जिस को अर्जुन ने जीता था पाणिनीयगणपाठ (अष्टाध्यायी ४/२/१६) में दत्तामित्र और उसकी बसाई नगरी दत्तामित्रायणी का उल्लेख है, निश्चय ही यूनानी दत्तामित्र को डेमेट्रियस कहते थे, यह नाम अनेक व्यक्तियों ने रखा।

तो शुद्ध संस्कृत, धर्ममित्र होना चाहिए, क्योंकि संस्कृत में 'धर्ममीत' निरर्थक एवं अशुद्ध शब्द है। तृतीय, डा० जायसवाल का अनुमान था कि भारतीयों की दृष्टि में 'डेमेट्रियस' धार्मिकराजा था, अतः उसे 'धर्ममीत' संज्ञा प्रदान की गई। भारतीय वाङ्मय में, विशेषतः पुराणों में यवनों या म्लेच्छों को कहीं भी धार्मिक नहीं माना गया,[1] अतः डेमेट्रियस को धर्ममीत कहा गया होगा, यह भ्रष्ट कल्पना है। चतुर्थ, यदि डेमेट्रियस को भारतीय 'दत्तामित्र' नाम से सम्बोधित करते थे तो उसके द्वितीय नाम 'धर्ममीत' की क्या आवश्यकता थी।

अतः डा० जायसवाल की युगपुराण में उल्लिखित डेमेट्रियससम्बन्धी कल्पनाएँ, निरर्थक, भ्रष्ट एवं इतिहास से कोई सम्बन्ध नहीं। 'यवन' शब्द का इतिहास अन्यत्र लिखा जायेगा।

परीक्षित से नन्दपर्यन्तकाल—

पुराणों में मागधराजवंशों का क्रमिकवर्णन हुआ है, उन पर क्रमभंग का आरोप लगाना घोर घृष्टता है। आधुनिक लेखकों ने मागध बालक प्रद्योत-वंश को अवन्ति का चण्डप्रद्योत बनाकर, मनमानी करके, पुराणगणना में अन्तर डालने की धृष्टता की है। डा० काशीप्रसाद जायसवाल, पार्जीटर, रैप्सन और जयचन्द्र विद्यालंकार ने ऐसी ही कल्पना की है। विद्यालंकारजी लिखते हैं—'पार्जीटर ने भी इस स्पष्ट गलती को सुधार कर प्रद्योतों के वृतान्त को 'पुराणपाठ' में मगधवृतान्त से अलग रख दिया है। इसे सुलझाने पर कोई आपत्ति नहीं की जा सकती, यहाँ तक कि विषय निर्विवाद है।'[2] रैप्सन ने लिखा है—'पुराणों का मागध प्रद्योत और उज्जैन का प्रद्योत एक

---

१. यवनाश्च सुविक्रान्ताः प्राप्स्यन्ति कुसुमध्वजम्।
अनार्याश्चाप्यधर्माश्च भविष्यन्ति नराधमाः॥
(युगपुराण, पं० ९५ व ९६)

व्युच्छेदात्तस्य धर्मस्य निर्यायोपपद्यते।
ततो म्लेच्छा भवन्त्येते निर्घृणा धर्मवर्जिताः॥
(महाभारत, अनु० १४६/२४)

अल्पप्रसादा ह्यनृता महाक्रोधा ह्यधार्मिकाः भविष्यन्तीह यवना...॥
(ब्रह्माण्डपु० २१३१/७४/२००)

२. भारतीय इतिहास की रूपरेखा पृ० ५५३, जयचन्द्र विद्यालंकार।

थे, इस विषय में सन्देह नहीं हो सकता ।[१]

इस सम्बन्ध में पं० भगवद्दत्त ने ६ प्रमाण दिये हैं, जिससे सिद्ध होता है कि मागध प्रद्योतवंश और आवन्त्य प्रद्योतवंश पृथक्-पृथक् थे ।[२] इस विषय की विस्तृत समीक्षा 'कलियुगराजवृतान्त' प्रकरण में की जाएगी, यहां तो केवल महाभारततिथि (३१०२ ई०पू०) की पुष्टिहेतु इसका संकेतमात्र किया गया है ।

आधुनिक लेखकों की कल्पना को एक भ्रष्टपुराणपाठ से और बल मिला—

आरभ्य भवतो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु शतं पंचदशोत्तरम् ।।[३]

परन्तु, इस श्लोकपाठ की भ्रष्टता (अशुद्धि) स्वयं पुराणों के प्रमाण से ही सिद्ध होती है। पुराणों में महाभारतयुद्ध के अनन्तर के २२ मगध राजाओं का राज्यकाल ठीक १००० वर्ष बताया है—

द्वाविंशच्च नृपा ह्येते भवितारो बृहद्रथाः ।
पूर्णं वर्षसहस्रं वै तेषां राज्यं भविष्यति ।।[४]

इसके पश्चात् पाँच प्रद्योतमागधों ने १३८ वर्ष और दश शैशुनागराजाओं ने ३६० वर्ष राज्य किया । ये कुल १४९८ वर्ष हुए, इसके अनन्तर महापद्मनन्द का अभिषेक कलिसंवत् १५४४ या १५१२ ई० पू० हुआ और प्रतीप परीक्षित् और नन्द से आन्ध्रसातवाहनोदयपूर्व तक क्रमशः २७००, २४०० और ८३६ वर्ष पुराणों में उल्लिखित है, अतः पुराणप्रमाण से भारतयुद्ध की पूर्वोक्ततिथि (३०८० वि०पू०) ही सत्य सिद्ध होती है। परीक्षित् से नन्द पूर्व तक १५०० वर्ष हुए, शुद्ध पुराणपाठ के अनुसार—

यावत्परीक्षितो जन्म यावन्नन्दाभिषेचनम् ।
एतद्वर्षसहस्रं तु ज्ञेयं पंचशतोत्तरम् ।।[५]

नन्द से आन्ध्र तक का अन्तर ८३६ वर्ष बताये गये हैं—

१. कैंब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया, भाग १, पृ० ३१० ।
२. भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, भाग-२, पृ० २३६-२३९ ।
३. भागवतपुराण (१२/२/२६)
४. ब्रह्माण्डपु० (२/३/७४/२२)
५. श्रीविष्णुपुराण (४/२४/१०४) गीताप्रेस द्वारा प्रकाशित संस्करण ।

प्रमाणं वै तथा वक्तुं महापद्मोत्तरं च यत्।
अन्तरं च शतान्यष्टौ षट्त्रिंशच्च समाः स्मृताः ।।[1]

ज्योतिषगणना से पुराणमत की पुष्टि—

श्रीबालकृष्णदीक्षित ने शतपथब्राह्मण[2] के आधार पर सिद्ध किया है कि कृतिकानक्षत्रसम्पात के द्वारा उक्त ग्रन्थ का समय ३०७४ शकपूर्व या ३२१८ शकपूर्व या ३०७३ वि०पू० निश्चित होता है। उन्होंने लिखा है—'उपर्युक्त वाक्य में कृत्तिकाएँ पूर्व में उगती है।' यह वर्तमानकालिक प्रयोग है। आजकल उत्तर में उगती हैं। शकपूर्व ३२०० वर्ष के पहिले दक्षिण में उगती थीं। इससे सिद्ध होता है कि शतपथब्राह्मण के जिस भाग में ये वाक्य आये हैं उसका रचनाकाल शकपूर्व ३१०० वर्ष के आसपास होगा।'[3]

शतपथब्राह्मण में महाभारतकाल के अनेक पुरुषों के नाम उल्लिखित हैं—

यथा—'तद्ध ह बह्लिकः प्रातिपीयः शुश्राव कौरव्यो राजा।'[4]

अथ ह स्माह स्वर्णजिन्नाग्नजितः नग्नजिद्वा गान्धारः।[5]

शतपथब्राह्मण में चरकाचार्य (वैशम्पायन) का बहुधा उल्लेख है, जो व्यास का शिष्य और याज्ञवल्क्य बाजसनेय का गुरु था, वैशम्पायन ने महाभारत का श्रावण जनमेजय पारीक्षित को कराया था और भी अनेक महाभारतकालीन पुरुषों के नाम शतपथब्राह्मण में हैं, हो क्यों नहीं, जब व्यासप्रशिष्य याज्ञवल्क्य ही तो शतपथब्राह्मण के रचियता थे, अतः ज्योतिष के प्रमाण से कृत्तिका द्वारा भी महाभारतयुद्धतिथि ३०८० वि०पू० सिद्ध होती हैं।

अर्वाचीनसंवत्

युधिष्ठिरसंवत्—

भारतोत्तरकाल में इस देश में अनेक संवत् प्रचलित हुये, जिनमें सर्वप्रथम युधिष्ठिरसंवत् था, जो युद्ध के पश्चात् ठीक युधिष्ठिर के राज्याभिषेक के

---

१. ब्रह्माण्डपुराण (२/३/७४/२२८)
२. श०ब्रा० (२/१/२/३)
३. भारतीय ज्योतिष, पृ० १८१।
४. श०ब्रा० (१२/९/३/३)
५. श०ब्रा० (८/१/४/१०)।

दिन से प्रारम्भ हुआ, इसका प्रसिद्ध उल्लेख वराहमिहिर ने किया है—

आसन् मघासु मुनयः शासित पृथ्वीं युधिष्ठिरे नृपतौ ।
षड्द्विकपंचद्वियुक्तः शककालस्तस्य राज्ञश्च ।।

युद्ध के अन्तिम अर्थात् १८वें दिन बलराम तीर्थयात्रा करके लौटे—

चत्वारिंशदहान्यत्र द्वे च मे निःसृतस्य वै ।
पुष्येण संप्रयातोस्मि श्रवणे पुनरागतः ।। (गदापर्व ५/६)

'गणितानुसार सायन और निरयन नक्षत्रों मे इतना अन्तर शकारम्भ के ५३०६ वर्ष पूर्व अर्थात् कलियुग का आरम्भ होने के २१२७ वर्ष पूर्व आता है ।"[१]

कलिसंवत् और युधिष्ठिर संवत् में ३६ वर्ष का अन्तर था, क्योंकि युधिष्ठिर का शासनकाल ३६ वर्ष था, अतः वर्तमान गणित के अनुसार यह समय ३०८० वि०पू० आता है। अभीतक के प्रमाणों के अनुसार युद्ध और युधिष्ठिर संवत् की यही तिथि है ।

कलिसंवत् पर पहिले ही विस्तार से विचार कर चुके हैं। प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरुनी के प्राचीनभारत के अनेक संवतों का वर्णन किया है, तदनुसार संक्षेप में उनका परिचय लिखेंगे ।

कालयवनसंवत्—

इसका संवत् द्वापरान्त में प्रचलित हुआ था। सम्भवतः, जब श्रीकृष्ण ने कालयवन या कशेरुमान् यवन का वध[२] किया था उसी दिन से यह संवत् चला होगा। इस यवन को किसी पश्चिमीदेश से बुलाने के लिए जरासंध ने सौभाधिपति शाल्व को विमान द्वारा भेजा था कि वह कृष्ण को मार सके—

अद्य तस्य रणे जेता यवनाधिपतिर्नृपः ।
स कालयवनो नाम अवध्यः केशवस्य ह ।।
मन्यध्वं यदि वा युक्तां नृपा वाचं मयेरिताम् ।
तत्र नृपं विसृजध्वं यवनेन्द्रपुरं प्रति ।।
श्रुत्वा सौभपतेर्वाक्यं सर्वे ते नृपसत्तमाः ।
कुर्म इत्थमब्रुवन् दृष्टा जरासंधं महाबलम् ।।

---

१. भारतीय ज्योतिष (पृ० १७०), बालकृष्णदीक्षित ।
२. इन्द्रद्युम्नो हतः कोपाद् यवनश्च कशेरुमान् (महाभारत वनपर्व) ।

यवनेन्द्रो यथा याति यथा कृष्णं विजेष्यति ।
यथा वयं च तुष्यामस्तथा नीतिर्विधीयताम् ।।[1]

इसी तथ्य का अनभिज्ञ अलबेरूनी लिखता है—The Hindus have an era Kalayavana, regarding which I have not been āble to obtain full information, they place itsepoch in the end of the last Dwapara yuga— here mentioned Yavan severally oppressed both their country and their religion.[2]

हरिवंशपुराण (२) अध्याय ५२-५८ पर्यन्त) में उपरोक्त कालयवन का विस्तार से वर्णन है। इसका वध श्रीकृष्ण के चातुर्य से भारतयुद्ध के प्रायः एक शती पूर्व हुआ, अतः कालयवनसंवत्, युधिष्ठिरसंवत् से भी लगभग सौ पूर्व प्रचलित हुआ था ।

श्रीहर्षसंवत्—

यह श्रीहर्ष भूमि उत्खनन करवाकर प्राचीनकोशों की खोज करता था अलबेरूनी इसको विक्रम से ४०० वर्ष पूर्व हुआ लिखता है—Between Shri Harsha and Vikramaditya their is interval of 400 years.' पं० भगवद्दत्त ने कल्हणादि के प्रमाण से लिखा है कि शूद्रक विक्रम का नाम ही श्रीहर्ष था ।[3] यह मत प्रमाणाभाव से त्याज्य है—

तत्रानेहस्युज्जयिन्यां श्रीमान्हर्षापराभिधः ।
एकच्छत्रश्चक्रवर्ती विक्रमादित्य इत्यभूत् ।।[4]

अतः हर्षसंवत् ४०० वि०पू० प्रचलित हुआ ।

विक्रमसंवत्—

यह प्रसिद्ध विक्रमसंवत् है, जो शकसंवत् से १३५ वर्ष पूर्व की ओर ई० सन् से ५७ वर्ष पूर्व प्रचलित हुआ । अलबेरूनी इस विक्रम का नाम भ्रान्ति से चन्द्रबीज लिखता है—In the book of Srudhava by Mahadeva, I find as his name Chandrabija.

---

१. हरिवंश (२/५२/२५, ३२, ४५) ।
2. Alberuni's India (p. 5).
३. वही, पृ० (१)
४. भा० वृ० इ० भाग-२, पृ० २६५ ।

यहां भ्रम से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य शकारि द्वितीय को ही 'चन्द्रबीज' कहा गया है जो शकसंवत् (१३५ विक्रम से) का प्रवर्तक था। विक्रम संवत् प्रवर्तक विक्रमादित्य और था, और शूद्रकवंश (जाति) था—इसके विषय में समुद्रगुप्त ने श्रीकृष्णचरित के आरम्भ में लिखा है—

वत्सरं स्वं शकान् जित्वा प्रावर्तयत वैक्रमम्।[3]

इसी विक्रम के विषय में प्रभावकचरित में लिखा है—

शकानां वंशमुच्छेद्य कालेन कियतापि ह।
राजा श्रीविक्रमादित्यः सार्वभौमपमोऽभवत्॥
मेदिनीमनृणां कृत्वा सोऽकरोद्वत्सरं निजम्॥[4]

'शूद्रक'पद का रहस्य और तज्जन्यभ्रान्तिनिराकरण—

"शूद्रक" पद अनेक राजाओं ने धारण किया। यह एक भ्रान्ति प्रतीत होती है कि यदि 'शूद्रक'पद 'शूद्र' का पर्यायवाची है तो ऐसे अपमानजनक शब्द को चक्रवर्ती सम्राटों ने क्यों धारण किया। इस रहस्य को न समझकर पं० भगवद्दत्त लिखते हैं—'श्रीनन्दलालदे का मत है कि क्षुद्रक ही शूद्रक थे। हमें इसके मानने में कठिनाई प्रतीत होती है। महाभारत आदिग्रन्थों में क्षुद्रक और मालव तथा शूद्र और आभीर साथ-साथ एक-एक समास में आते हैं। क्षुद्रक और आभीर का समास हमारे देखने में नहीं आया।'[5] इस अबोधगम्यता का कारण यह है कि पण्डितजी 'शूद्रक' शब्द को शूद्र का पर्याय समझते हैं। इससम्बन्ध में श्रीनन्दलालदे का मत बिलकुल सत्य है कि 'क्षुद्रक' ही शूद्रक थे।'[6] सत्यता यह है कि 'शूद्रक' शब्द 'शूद्र' का पर्याय नहीं है, यदि शूद्रक शब्द घृणित होता तो मालवा के सम्राट् इस पदवी को धारण नहीं करते। काशिका में (५/३/११३) ही लिखा है कि शूद्रकमालवगण ब्राह्मणराजन्यवर्जित आयुधजीवी थे। महाभारत, इस सम्बन्ध में प्रमाण है कि वे शाल्व असुरों के वंशज थे, जिनका राजा द्युमत्सेन था। वे सावित्रीपुत्र भी

---

१. राजतरंगिणी, २५१।
२. Alberuni's India (p. 6) वही।
३. कृष्णचरित (राजकविवर्णन, श्लोक ११)।
४. प्रभावकचरित, कालकाचार्य (कथा ६०, ६२)।
५. भा० बृ० इ० भाग (पृ० १६०)
६. भौगौलिककोश, 'शूद्रक' शब्द नन्दलालदे कृत।

कहे जाते थे, उत्तरकालीन परम्परा में क्षुद्रकमालव अपने को ब्राह्मण ही मानने लगे थे—यथा विक्रमादित्य शूद्रक के विषय में बताया गया है—

द्विजमुख्यतमः कविर्बभूव प्रथितः शूद्रक इत्यागधसत्वः ।[1]
पुरन्दरबलो विप्रः शूद्रकः शास्त्रशस्त्रवित् ।[2]

अतः 'शूद्रक' को 'शूद्र' का पर्याय मानने की आवश्यकता नहीं हैं, इससे पं० भगवद्दत्त की कठिनाई दूर हो जाती है कि 'शूद्रक' और आभीर का समास हमारे देखने में नहीं आया ।' अतः आभीर ही शूद्र माने जाते थे, शूद्रक नहीं। फिर क्षुद्रकों को शूद्रक क्यों कहा गया । इसका कारण है भाषाविकार । क्षुद्रकमालवों के देश मालव में प्राकृतभाषा का अधिक प्रसार और प्रचार था, रामिल सौमिल कवियों ने शूद्रकचरित प्राकृतभाषा में ही लिखा था—स्वयं शूद्रकरचित मृच्छकटिक में प्राकृतभाषाप्रयोगों का बाहुल्य उपलब्ध होता है । अतः संस्कृत शब्द 'क्षुद्रक' को प्राकृत में 'शूद्रक' कहा गया । यह 'शूद्रक' व्यक्तिगतनाम नहीं है, जातिगतनाम है, इसीलिए अनेक क्षुद्रक मालवनरेशों का विरुद (नाम) 'शूद्रक' हुआ । पण्डित राजवैद्य जीवराम कालिदास शास्त्री ने शंका व्यक्त की है कि क्या शुद्रक अनेक थे । निश्चय ही क्षुद्रक (शूद्रक) मालवजाति में 'शूद्रक' नाम के अनेक राजा हुए, जिस प्रकार अनेक हैहय राघव, आवन्त्य, या वसिष्ठ या भारद्वाज हुए । इसी प्रकार 'शूद्रक' जातिवाचक नाम था, इसीलिए भ्रान्ति उत्पन्न होती है कि 'शुद्रक' एक था या अनेक, निश्चय ही क्षुद्रकों का प्रत्येक शासक क्षुद्रक या शूद्रक कहलाता था । नामसाम्य से अनेक शूद्रक नरेशों का चरित एक प्रतीत होता है । कल्हण भी इस भ्रमपाश में बद्ध हो गया ।[3] अतः अनेक शूद्रकों (क्षुद्रकों) सम्राटों में दो शूद्रसम्राट् विख्यात हुए, दोनों ने शकों या म्लेच्छों को जीतकर विक्रमशक संवत् चलाया, क्षुद्रक और मालव एक ही जाति के थे, अतः मालव नाम क्षुद्रक की अपेक्षा अधिक प्रयुक्त हुआ है । शूद्रकसंवत् को ही मालवसंवत् कहा जाता था । इसी संवत् को मालवसंवत् या कृतसंवत् कहते हैं । मन्दसौर के प्रसिद्ध शिलालेख में इसी प्रथम श्रीशूद्रकसंवत् (मालवयाकृतसंवत्) का प्रयोग हुआ

---

१. मृच्छकटिक (प्रारम्भ), (२) श्रीकृष्णचरित, श्लोक-६

२. किं तर्हि बहवः शूद्रका राजानः कवयो वा बभूवुरेकस्यैव चरितं नानारूपं दरीदश्यत इति संशयं समाधातुं यथामति किमप्यत्र ब्रूमहे ।'
(कृष्णचरित पृ० ४१)

३. शकारिर्विक्रमादित्य इति स भ्रममाश्रितैः ।
अन्यैरेवमन्यथालेखि विसंवादि कदर्थितम् ।। (राजतरंगिणी)

है, मालवानां गणस्थित्या याते शतचतुष्टये। त्रिनवत्सरेऽब्दानामृतौ सेव्यघनस्वने। मंगलाचारविधिना प्रासादोऽयं निवेशितः। बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवैः। व्यशीर्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य ततोऽधुना। वत्सरशतेषु पंचसु विंशत्यधिकेषु नवसु चाब्देषु। यातेषु अभिरम्यतपस्यमासशुक्र द्वितीयायाम्।

मालवगणराज्य की स्थापना किसी मालवनाथ या क्षुद्रक या अवन्तिनाथ ने विक्रमादित्य से ३४३ वर्ष पूर्व की थी, न कि ४०० वर्ष पूर्व जैसाकि अलबेरूनी से लिखा है। इस सम्बन्ध में यह परम्परा अधिक विश्वसनीय प्रतीत होती है, जिसका उल्लेख कर्नल विल्फर्ड ने किया है—'From the first year of Sudraka to the first year of Vikramaditya...there are 343 years and only fifteen kings to fillup that Space.''[1]

इस परम्परा से ज्ञात होता है कि शूद्रकनामधारी १५ राजा हुए थे, जिनका अन्तर ३४३ वर्ष था, पन्द्रहवां राजा प्रसिद्ध विक्रमसम्वत्सरप्रवर्तक विक्रमादित्य था। प्रथम शूद्रक इससे ३४३ वर्ष पूर्व हुआ जिसने गणतन्त्र स्थापना की।[2] कुमारगुप्त के समकालिक बन्धुवर्मा का समय १५० वि० सं० में था, जब उसने उक्त भवन का निर्माण कराया, उसके ५२९ वर्ष व्यतीत होने पर ६७९ वि० सं० में इसका जीर्णोद्धार हुआ। अतः कृतसम्वत् या श्रीहर्ष सम्वत् या मालवसम्वत् को विक्रमसम्वत् मानना महती भ्रान्ति है, जैसाकि रैप्सन, जायसवाल आदि मानते हैं।

अतः शूद्रक-क्षुद्रक एवं विक्रमसम्वत्सम्बन्धी उपर्युक्त विवचेन से एतद् सम्बन्धी भ्रम समाप्त हो जाना चाहिए। निम्नलिखित गुप्तकाल और शकसम्बन्धी विवचेन से उक्त विषय का और स्पष्टीकरण होगा।

शकसम्वत् का गुप्तराजा विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त से सम्बन्ध और गुप्तों का राज्यकाल—

पं० भगवद्दत्त गुप्तराजाओं को ही विक्रमसम्वत् (५७ ई॰ पू०) का प्रवर्तक मानते हैं, उन्होंने इस सम्बन्ध में अपने प्रसिद्धग्रन्थ "भारतवर्ष का बृहद् इतिहास" में प्रभूत सामग्री एकत्र की है, उनका परिश्रम अभूतपूर्व

1. Asiatic Researches Vol IX. p. 210, 1809.A.D.;
२. शूद्रकों या क्षुद्रकों ने अनेक युद्ध जीते थे—
'एकाकिभिः क्षुद्रकैर्जितम् असहायैरित्यर्थः
यह परम्परा शूद्रकों ने दीर्घकाल तक जारी रखी।
(महाभाष्य १/१/२४)

स्तुल्य एवं अभिनन्दनीय है, लेकिन वे इस धारणा के साथ कि 'सम्भवतः गुप्त ही विक्रम थे' इस अनिश्चय के साथ गुप्तों के सम्बन्ध में निभ्रान्ति निर्णय नहीं कर सके। उन्होंने लिखा 'भारतीय इतिहास में गुप्तों का वंश विक्रमों का वंश है। समुद्रगुप्त को विक्रमांक, चन्द्रगुप्तद्वितीय को विक्रमांक अथवा विक्रमादित्य और स्कन्दगुप्त को विक्रमादित्य कहते हैं। अतः प्रसिद्ध विक्रमसम्वत् का सम्बन्ध इन्हीं विक्रमों से जुड़ता है।" कुछ विद्वान गुप्तों को सिकन्दर का समकालीन मानकर उनका समय ३२७ ई० पू० में रखते हैं, यथा श्रीकोटावेंकटाचमम् अपनी पुस्तक 'दी एज आफ बुद्ध' मिलिन्द एण्ड किंग अंतियोक एण्ड युगपुराण' के पृष्ठ २ पर लिखते हैं—सिकन्दर का आक्रमण ई० पू० ३२६ में हुआ वह चन्द्रगुप्त गुप्तवंश का है, जिसका सम्बन्ध ईसापूर्व ३२७-३२० वर्ष से है।' पुनवे लिखते हैं गुप्तवंशीयचन्द्रगुप्त को सिकन्दर का समकालीन मगधनरेश मान लेना, हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियों के प्राचीनकालीन पवित्र और धार्मिक साहित्य में वर्णित सभी प्राचीन तिथियों से मेल खाता है।' (वही पृ० ३)

उपर्युक्त दोनों विद्वानों (भगवद्दत्त और वेंकटाचलम्) के मत सर्वथा अयुक्त और पुराणगणना के सर्वथा विपरीत हैं। लेकिन आजकल प्रायः सर्वमान्य प्रचलित मत उपर्युक्त दोनों मतों से भी असत्य और घोर भ्रामक हैं, जिसका प्रवर्तन फ्लीट के आधार पर आधुनिक इतिहासकारों ने किया है। एक प्रसिद्ध लेखक हेमचन्द्रराय चौधरी, चन्द्रगुप्तप्रथम का समय ३२० ई० में मानते हैं।[२] फ्लीटादि गुप्तों का प्रारम्भ ३७५ विक्रम सम्वत् से मानते हैं। अब देखना है कि किन आधारों पर फ्लीटादि ने यह तिथि घड़ी। इसका मूल है प्रसिद्ध मुस्लिम इतिहासकार अलबेरूनी का यह प्रमाणवचन स्पष्ट है। अलबेरूनी से गुप्तकाल के अन्त और वलभीभंग की एक ही तिथि लिखी है—३७५ वि० सम्वत्। अलबेरूनी के आधार पर इस काल को गुप्तकाल का आरम्भ मानना बुद्धि का दिवाला निकालना है।

"As reqards the Gupta Kala, people say that the Guptas were wicked powerful people, and that when they ceased to exist, this date used as the epoch of an era. It seems that

१. भारतवर्ष का बृ० इ० भाग (पृ० १७१)

२. घटोत्कच के पुत्र चन्द्रगुप्त प्रथम इस वंश के प्रथम महाधिराज थे। वे सन् ३२० के आसपास सिंहासनरूढ़ हुए होंगे।' प्राचीन भारत का रा० इति०, (पृ० ३६३).

Valabha was the last of them, because the epoch of the era of the Guptas follow like of the Vallabhera 241 years later than the Sakakala."

शकसम्वत् चतुष्टयी

इस सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि प्राचीनभारत, में न्यूनतम चार शकसंज्ञक सम्वत् प्रचलित थे, दो शकसंवत् शकराज्यों के आरम्भ होने पर चले और दो शकसंवत् शकराज्यों के दो बार अन्त होने पर चले, इस शकाब्दचतुष्टयी पर यहां संक्षिप्त विचार करते हैं।

प्रथमशकसम्वत्—

प्राचीनतम ज्ञात शकसंवत् ५५४ वि० पू० से प्रारम्भ हुआ था, जिसका सर्वप्रथम उल्लेख शूद्रक विक्रम समकालिक प्रसिद्ध ज्योतिषी वराहमिहिरकृत बृहत्संहिता (१३/३) में मिलता है—

आसन् मघासु मुनयः शासति पृथिवीं युधिष्ठिरेनृपतौ ।
षड्द्विकद्वियुतः शककालस्तस्य राज्ञश्च ।।

युधिष्ठिर का राज्यारम्भ ठीक ३०८० वि० पू० हुआ, इसमें वराहमिहिरोक्त २५२६ वर्ष घटाने पर ५५४ वर्ष होते हैं, अतः ५५४ वि० पू० से शकसम्वत् का प्रारम्भ हुआ।

यद्यपि, इस प्रथम शकसम्वत् का प्रवर्तक कौन शकराज था, यह निश्चित एवं निर्णायक प्रमाण अभी तक अनुपलब्ध हैं, तथापि हमारा अनुमान है कि नहपान का पूर्वज और क्षहरातवंश का प्रतिष्ठाता शकराज आम्लाट ही होगा जिसका उल्लेख युगपुराण में प्रथम शकसम्राट् के रूप में है—

आम्लाटो लौहिताक्षेति पुष्पनाम गमिष्यति ।
ततः सम्लेच्छ आम्लाटो रक्ताक्षो रक्तवस्त्रभृत् ।
(युगपुराण, १३३, १३६)

युगपुराण से आभास होता है कि यह शकराजा कण्वों के अन्त और सातवाहनों के प्रारम्भकाल में हुआ।

पुराणों में १८ शकराजाओं का उल्लेख मिलता है। परन्तु बौद्धग्रन्थ मंजुश्रीमूलकल्प में ३० और १८ शकराजाओं का उल्लेख है—

शकवंशस्तदा त्रिशत् मनुजेशा निबोधत।
दशाष्ट भूपतयः ख्याताः सार्धभूतिकमध्यमाः।

(म० भू० क० श्लोक ६१२, ६१३)

पुराणोक्त १८ शकराजा उत्तरकालीन चष्टनवंश के थे, चष्टन के पिता का नाम भूतिक (भूमिक या धसमोतिक) था, जिसका शिलालेखों में उल्लेख मिलता है। चष्टनशकों से पूर्व १२ क्षहरात शक राजा हुए, जिनमें प्रथम आम्लाट और अन्तिम नहपान था। चष्टनशकों का राज्यकाल पुराणों में ३८० वर्ष लिखा है। अन्तिम शकराज का हन्ता चन्द्रगुप्त साहसांक विक्रमादित्य था, शकवध के कारण ही चन्द्रगुप्त को साहसांक और विक्रमादित्य उपाधि मिली थी, इसी शकवध के उपलक्ष में उसने १३५ विक्रमसम्वत् में अन्तिम शकसम्वत् चलाया, यह पूर्वपृष्ठों पर प्रमाणपूर्वक लिखा जा चुका है। अतः चष्टनशक का राज्यारम्भ २४५ वि० पू० और अन्त १३५ विक्रम सम्वत् में हुआ।

चष्टनशकों से पूर्व १२ क्षहरातशकों का राज्यकाल लगभग ३०० वर्ष था, गौतमीपुत्र शातकर्णी ने २६० वि० पू० के आसपास अन्तिम क्षहरात शकसम्राट् नहपान का वध किया था।[1] अतः क्षहरातशकवंश के प्रवर्तक आम्लाट का समय ५५४ वि० पू० निश्चित होता है, जो चष्टन से लगभग ३०० वर्ष पूर्व हुआ।

द्वितीय शकसम्वत्—२४५ वि० पू० से आरम्भ—

भूतिक और चष्टन सहित १८ शक राजाओं ने ३८० वर्ष राज्य किया—

शतानि त्रीणि अशीतिश्च।
शका अष्टादशैव तु।[2]

इस वंश के अठारह राजाओं में अधिकांश का उल्लेख शिलालेखों में मिलता है और इस शकराजसम्वत् ३१० का शिलालेख प्राप्त हो चुका है अतः पार्जीटर की यह कल्पना पूर्णतः ध्वस्त हो जाती है कि 'शतानित्रीणि अशीतिश्च' का अर्थ '१८३' है।[3] भ्रामक एवं षड्यन्त्रपूर्ण कल्पनाओं के कारण

---

१. खहरातवसनिरवसेसकरस (नासिकगुहालेख, पंक्ति ५,६)
२. पुराणपाठ, पृ० ४५.
३. पुराणपाठ, भूमिका (XXV—XV)

पाश्चात्य लेखकों की गणना में सामंजस्य नहीं बैठता, यह अन्यत्र भी स्पष्ट होगा ।

चष्टनशकराज्य का अन्त—अन्तिम शकराजा का वध करके चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने किया, यह प्राचीन भारत में सर्वविदित सर्वसामान्य तथ्य था, परन्तु गुप्तों के सम्बन्ध में भ्रामक कल्पना के कारण आज तक कोई सोच ही नहीं सका कि शकसम्वत् का प्रवर्तक चन्द्रगुप्त साहसांक था ।

तृतीयशकसम्वत् विक्रमसम्वत्—

इस "शक" सम्वत् को ५७ वर्ष ईसा पूर्व क्षुद्रकमालव नरेश शूद्रक विक्रमादित्य ने शकों पर अपनी विजय के उपलक्ष में चलाया था । इस पर विस्तृत विचार 'शूद्रकगर्दभिल' प्रकरण में किया जायेगा । परन्तु एक तथ्य ध्यातव्य है कि जैनवाङ्मय में शकसंवत् को बहुधा एक माना गया है ।[1]

चतुर्थ, प्रसिद्ध शक (शालिवाहन) सम्वत्—

यह अपने जन्मकाल (१३५ वि० श०) से आज तक सर्वाधिक प्रचलित सम्वत् था और इसको अब सरकार ने, राष्ट्रीय सम्वत् के रूप में मान्यता दी है । परन्तु इसके प्रारम्भ के सबंध में आज के इतिहासकारों को सर्वाधिक भ्रान्तियां हैं, इस असत्यता या भ्रान्ति का दिग्दर्शन श्री वासुदेव उपाध्याय के निम्न वाक्यों से होगा—'कुछ विद्वानों का मत है कि रुद्रदामन् (ई० सं० १५० ?) के पितामह चष्टन शकवंश का प्रथम महाक्षत्रप हुआ और सम्भवतः उसीने इस गणना का प्रारम्भ किया ।...यह माना जा सकता है कि कुषाण कनिष्क द्वारा ई० सं० ७८ में गद्दी पर बैठने के कारण इस गणना का प्रारम्भ हुआ हो ।...फ्लीट तथा कैनेडी कनिष्क को इसका संस्थापक नहीं मानते । फर्गुसन, ओलडेनवर्ग, वनर्जी तथा रायचौधरी का मत है कि कनिष्क ने ही सन् ७८ में शकसम्वत् का प्रारम्भ किया हो ।'[2] ...कोई इस सम्वत् का सम्बन्ध नहपान से जोड़ता है, कोई कनिष्क से, कोई चष्टन, से तो कोई सातवाहनों से, स्पष्ट है कि ये सभी मत निराधार कल्पना से अधिक कुछ नहीं हैं ।

सम्मतीत शककाल—

परन्तु आधुनिक इतिहासकार सभी साक्ष्यों को त्यागकर अपनी हठवादिता पर अड़कर, चालुक्यनरेश पुलकेशी, द्वितीय के अयहोल शिलालेख के

---

१. भा० बृ० इ० भा०-२, गुप्तकाल का प्रारम्भ, पृ० ३३२-३३४.

२. प्रा० भा० अ०, पृ० ३२०.

निम्न कथन के आधार पर, कनिष्क या चष्टन को, शकराज्यारम्भ से, इस चतुर्थ शकसम्वत् का प्रवर्तक मानते हैं—

पंचाशत्सु कलौ काले षट्सु पंचशतासु च।
समासु समतीतासु शकानामपि भूभुजाम् ॥[1]

हमें यह सन्देह है कि उक्त शिलालेख के उक्त वाक्य "समतीतासु" के स्थान पर 'समतीतानाम्' को परिवर्तित किया गया है, क्योंकि इतने प्राचीन-काल (६५३ शकसम्वत्) में इस सम्वत् के संबंध में शिलालेखकर्ता ऐसी भूल नहीं कर सकते थे। क्योंकि इस काल (६५३ शकसम्वत्) से भी २४० वर्ष पश्चात् शकसम्वत् ७९३ के अमोघवर्ष के संजान ताम्रपत्र लेख में इसको 'शकनृपकालातीतसम्वत्सर ही कहा है—

'शकनृपकालातीतसंवत्सरशतेषु नवतृतयाधिकेषु।'[2]

अतः पुलकेशी द्वितीय के शिलालेख का सही पाठ यह है—

'समासु समतीतानां शकानामपि भूभुजाम्'

षष्ठी विभक्ति (समतीतानां) को सप्तमी (समतीतासु) में बदलने के कारण यह महती भ्रान्ति हुई और जिन शकराजाओं का राज्यकाल २४५ वि० पू० प्रारम्भ हुआ, उनका आरम्भकाल उनके अन्तकाल १३५ वि० में माना जाने लगा।

प्राचीन शिलालेखकों और भट्टोत्पलसदृश प्राचीन ज्योतिषियों एवं अल-बेरूनी को भी भ्रान्ति नहीं थी कि चतुर्थ शकसंवत् शकराज्य की पूर्ण समाप्ति पर चला। इस सम्बन्ध में निम्न साक्ष्य द्रष्टव्य हैं—

१. नन्दाद्रीन्दुगुणस्तथा शकनृपस्यान्ते कलेर्वत्सराः।

२. शकान्ते शकावधौ काले।

३. कलेर्गोगैकगुणः शकान्तेऽब्दाः।

४. श्रीसत्यश्रवा ने आगे सुदृढ़ प्रमाणों से सिद्ध किया है कि 'शकनृप-काला-तीतसंवत्सरः' का अर्थ यही है कि यह संवत्सर शकनृप के काल के पश्चात् चला।'[3]

---

१. ए० इ० भा० ६, पृ० १.

२. प्रा० भा० अ० अ० द्वि० ख० मूल० पृ० १५०

३. भा० बृ० इ०, पृ० १७४-१७७.

इस सम्बन्ध में प्राचीन भारतीय ज्योतिषियों को कोई भ्रम नहीं था—'शका नाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्यदेवेन व्यापादिताः स शकसम्बन्धीकालः लोके शक इत्युच्यते ।'[1]

इस सम्बन्ध में अलबेरूनी का मत उसके ग्रन्थ के पृष्ठ ६ पर द्रष्टव्य है—'Vikramaditya from whom the era got its name is not identical with that one who killed Saka, but only a name-sake of his.' अतः अलबेरुनी और उसके समय भारतीय विद्वानों को कोई संदेह नहीं था कि उपर्युक्त शकसंवत् 'विक्रमादित्य' ने चलाया था और यह विक्रमादित्य सिवाय गुप्त सम्राट् साहसांक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के अतिरिक्त और कोई हो ही नहीं सकता। जिसका 'शक सम्राट् के वध' से घनिष्ठ सम्बन्ध प्राचीन-वाङ्मय में अति प्रसिद्ध है। अब यह देखना है कि शकसंवत् का प्रवर्तक कौन था, किस प्रकार प्रसिद्ध शालिवाहन शक का १३५ वि० सं० से प्रारम्भ हुआ। शकसंवत् के प्रारम्भ के विषय में आधुनिक पाश्चात्य और भारतीय लेखक 'अधेनैव नीयमाना यथान्धाः' उक्ति को चरितार्थ करते हुए भटकते रहे हैं। कुछ लोगों ने इसका सम्वत कुषाण सम्राट् कनिष्क से जोड़ा है तो कुछ लोग इसका सम्बन्ध चष्टनादिशकों से जोड़ते हैं। इस सम्बन्ध में विभिन्न मत दृष्टव्य हैं—कनिष्क की तिथि के सम्बन्ध के लिये—

१. डॉ० फ्लीट के मतानुसार काडफिसेस वंश के पूर्व कनिष्क राज्य करता था। ईसा पूर्व ५८ में उसने विक्रमसंवत् की स्थापना की।[2]

२. मार्शल, स्टेनकोनो, स्मिथ तथा अनेक दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क सन् १२५ ई० अथवा १४४ ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ।[3]

३. अभी हाल में ग्रिशमैन ने कनिष्क की तिथि १४४-१७२ ई० निर्धारित की है।[4]

४. डॉ० आर० सी० मजूमदार का मत है कि कनिष्क ने सन् २४८ के त्रैकूटक कलचुरिचेदिसंवत् की स्थापना की।[5]

५. फर्गुसन, ओल्डनवर्ग, थामस, बनर्जी, रैप्सन, जे० ई० वानलो हुइजेन डी ली उबैटनौफर तथा अन्य दूसरे विद्वानों के अनुसार कनिष्क ने ७८ ई० में शकसम्वत् की स्थापना की।[6]

---

१. खण्डखाद्यक, वासनाभाष्य आमराज, पृ० २,

२-६. प्रा० भा० रा० इ० (रायचौधरी पृ० ३४४-३४८)

रैप्सन आदि शकसंवत् का सम्बन्ध नहपान महाक्षत्रप शकराज से जोड़ते हैं—प्रा० रैप्सन इस मत से सहमत हैं कि नहपान की जो तिथियां दी गई हैं, वे सन् ७८ ई० से आरम्भ होने वाले शकसंवत् से सम्बन्धित हैं।[1]

तथाकथित कुछ विद्वान् शकसंवत् का सम्बन्ध शातकर्णि सातवाहन आन्ध्रों से जोड़ते हैं—गौतमीपुत्र शातकर्णि की तिथि के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि उसके लिए जो उपाधियां वरवारणविक्रम, चारुविक्रम...अर्थात् शकों का विनाश करने वाला दी गई हैं, उनसे विदित होता है कि पौराणिककथाओं में आने वाला राजा विक्रमादित्य वही था, जिसने ईसापूर्व ५८ वाला विक्रम संवत् चलाया।"[2]

कुछ लोग शालिवाहनशक के नाम पर सातवाहनों से शकसंवत् का सम्बन्ध जोड़ते हैं।

इस प्रकार शकसंवत् और विक्रमसम्वत् आधुनिक इतिहासकारों को ऐसी कामधेनु मिल गई, जिसमें सभी राजाओं की दुग्धरूपीतिथियां काढ़ते हैं। एक झूठ को मानने का जो परिणाम होता है, वह प्रत्यक्ष है कि सभी जानबूझकर भटक रहे हैं और सत्य को नहीं मानते; जो 'सत्य' प्राचीनग्रन्थों और परम्परा में कथित हैं, उसे मानने में कठिनाई आती है—'मोहाद् गृहीत्वासद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रता:। (गीता) इस प्रकार अज्ञान या मोहवश असन्मतों का प्रवर्तन और ग्रहण कर रखा है।

शकसंवत् के सम्बन्ध में सत्य मत क्या है? इस सम्बन्ध में अब प्राचीन ग्रन्थों के मूलवचन द्रष्टव्य हैं—

१. शकानाम म्लेच्छा राजानस्ते यस्मिन् काले विक्रमादित्येन व्यापादिता: स शकसम्बन्धीकाल: शक इत्युच्यते।[3]

२. शकान्ते शकावधीकाले।[4]

---

१. वही (पृ० ३५६)

२. वही, पृ० ३६६

३. खण्डकखाद्यवासनाभाष्य आमराजकृत, पृ० २, तथा बृहत्संहिता। (८/२०, भट्टोत्पलटीका)

४. श्रीपति की मक्किभटकृतटीका, ज० इ० हि० मद्रास, भाग—१६, पृष्ठ २५६

३. शकनृपकालातीतसंवत्सर: ।

(सत्यश्रवाकृत शकासहनइन्डिया पृ० ४४-४६)

४. अरिपुरे च परकलत्रकामुकं कामिनीवेषगुप्तश्चन्द्रगुप्त: शकपति मशातयत् ।" (बाणभट्टकृत हर्षचरित षष्ठ उच्छवास पृ० ६६६)

५. शकभूपरिपोरनन्तरं कवय: कुत्र पवित्रसंकथा: ।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

ख्यातिं कामपि कालिदासकृतयो नीता: शकारातिना ।

(अभिनन्दकृत रामचरित)

६. स्त्रीवेशनिह्नुततश्चन्द्रगुप्त: शत्रो: स्कन्धावारमरिपुरं शकपतिवधायागमत् । (भोजकृत शृंगार प्रकाश)

७. हत्वा भ्रातरमेव राज्यमहरद् देवीं च दीनस्ततो लक्षं ।
कोटिमलेखयन् किल कलौ दाता स गुप्तान्वय: ।।

(एपि० इण्डिया, भाग १८, पृ० २४८)

८. विक्रमादित्य: साहसांक: शकान्तक: ।

(अमरकोश क्षीरस्वामीटीका २/८१२)

९. व्याख्यात: किल कालिदासकविना श्रीविक्रमाङ्को नृप: ।

(सुभाषितावली)

१०. भ्रात्रादिवधेनफलेन ज्ञायते तदयमुन्मत्तश्छदमप्रचारी चन्द्रगुप्त इति

(चरकसंहिता, वि० स्था० चक्रपाणिटीका ४/८)

(11) The epoch of the era of Saka or Sakakala falls 135 years later than that of Vikramaditya. They have mentioned Saka tyrannised over their Country between the river Sindh and ocean······The Hindus had much suffer from him, till at last they received help from the east, when Vikramaditya marched against him, put him to plight and killed him······Now this date became famous, as people rejoiced in the news of the death of the tyrant, and was used as the epoch of an era, especially by the astronomers. They honour the conquerer by adding Shri to has name, so as to say Shri Vikramaditya."

(Alberuni's India p. 6)

12. In the book "Srudhava" by Mahadeva, I find as his name Chandrabija."

(चन्द्रबीज=चन्द्रवीर=चन्द्रगुप्त) वहीं पृ० ६.

१३. 'जब रासल (समुद्रगुप्त) की मृत्यु हो गई तो उसका ज्येष्ठपुत्र रव्वल (रामगुप्त) राजा बना। उस समय एक राजा की बड़ी बुद्धिमानी पुत्री (ध्रुवस्वामिनी) थी। बुद्धिमान् और विद्वान् लोगों ने कहा था कि जो पुरुष इस कन्या से विवाह करेगा...। परन्तु बरकमारीज के अतिरिक्त कोई उस कन्या को पसन्द नहीं आया।...जब उनके पिता रासल को निकाल देने वाले विद्रोही राजा ने इस लड़की की कहानी सुनी तो उसने कहा 'जो लोग ऐसा कर सकते हैं, क्या वे इस प्रतिष्ठा के अधिकारी हैं ? वह सेना लेकर आ गया और उसने रव्वाल को भगा दिया। रव्वाल अपने भाईयों और सामन्तों के साथ एक पर्वत शिविर पर चला गया जिसपर दृढ़ दुर्ग बना हुआ था।... जब दुर्ग छीनने वाला था तो रव्वाल ने संधिप्रस्ताव भेजा तो शत्रु ने कहा 'तुम लड़की मेरे पास भेज दो...बरकमारीस ने सोचा मैं स्त्री का वेश पहनूं। प्रत्येक युवक अपने केशों में खंजर छिपा लें।...योजना सफल हुई...शत्रु का एक भी सैनिक नहीं बचा...तदनन्तर ग्रीष्म में नंगे पैर नगर में घूमता बरकमारीस राजप्रसाद के द्वार पर पहुँचा...बरकमारीस ने (अपने ज्येष्ठ भ्राता) (रव्वाल) के पेट में चाकू घोंप दिया...वह राजसिंहासन पर बैठ गया। उस लड़की (ध्रुवस्वामिनी) से विवाह कर लिया। बरकमारीज और उसके राज की शक्ति बढ़ने लगी और सारा भारत उसके अधीन हो गया।' (भारत का इतिहास, प्रथम भा० पृ० ७६-७८, इलियट एवं डासन कृत-युनमलुक तवारीख से उद्धृत)।

उपर्युक्त तेरह उद्धरण आमराज, भट्टोत्पल, शिलालेख, मकिभट, भोज क्षीरपाणि, सुभाषितावली, चक्रपाणि, अलबेरूनी और युनमलुकतवारीख सभी एक ही तथ्य के बोलते हुए चित्र हैं कि जिस विक्रमादित्य चन्द्रगुप्त साहसांक ने अपने ज्येष्ठ भ्राता का वध किया, शकराज (नृपति) का विनाश किया, ध्रुवस्वामिनी से विवाह किया, वही शकसंवत्प्रवर्तक विक्रमादित्य था। इसके अतिरिक्त और कोई व्यक्ति भारतीय इतिहास में नहीं हुआ, जिसने ये सभी काम साथ-साथ किये हों, इसीलिए राष्ट्रकूट गोविन्द चतुर्थ ने भी उत्तरकाल (शकसंवत् ७९३) में साहसांक पदवी धारण की, परन्तु प्रथम साहसांक चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दोषों को ग्रहण नहीं किया—

सामर्थ्ये सति निन्दिता प्रविहिता नैवाग्रजेक्रूरता।
बंधुस्त्रीगमनादिभिः कुचरितैरावर्जितं नायशः।
शौचाशौचपराङमुखं न च भिया पैशाच्यमगीकृतं।

त्यागेनासमसाहसैश्च भुवने यः साहसांकोऽभवत् ।।[1]

उपर्युक्त विंशत्यधिक सभी प्राचीन देशी विदेशी विद्वान प्रमत्त नहीं थे, जो लिखते कि शकराज के वध के अनंतर विक्रमादित्य ने १३५ वि० सं० में शकसंवत् चलाया। यह तथ्य ऊपर के उद्धरणों से स्वयं सिद्ध हो जाता है, हमारी किसी कल्पना की आवश्यकता नहीं है। अलवेरुनी से कोई आधुनिक भारत का विद्वान् यह कहने नहीं गया था कि तुम लिख दो जब "शककाल के २४० वर्ष पश्चात् गुप्तों का अंत और बलभीभंग हुआ, तब बलभी सम्वत् चला।' अलबेरूनी ने स्पष्ट लिखा है कि ३७५ विक्रमसंवत् में गुप्त-राज्य का अंत हो गया था, तब कौन हतबुद्धि मानेगा कि इस समय (३७५ वि० में) गुप्तराज्य की स्थापना हुई। भारतीय ज्योतिषी एवं अलबेरूनी स्पष्ट लिखते हैं ? ३५ वि० सं० में शकराज का अंत करने वाला विक्रमादित्य ही था, तब शकसंवत् का संबंध चष्टनादिशकों या कनिष्क से जोड़ना विपरीत एवं मिथ्याबुद्धि का काम है।

पं० भगवद्दत्त गुप्तों का सम्बन्ध विक्रमसंवत् से जोड़ने का प्रयत्न करते रहे, परन्तु तथ्य को जानते हुए भी कि समुद्रगुप्त का राज्याभिषेक प्रसिद्ध विक्रमसंवत् (५७ ई० पू०) से ९३ वर्ष पश्चात् हुआ था, इस तथ्य को नहीं ग्रहण कर सके कि शकसम्वत् का प्रवर्तक समुन्द्रगुप्त का पुत्र चण्द्रगुप्त साहसांक था।[2]

अतः दो प्रधानगुप्त सम्राटों की तिथि निश्चित हो जाने पर शेष गुप्त राजाओं की तिथियां सरलता से निश्चित हो सकती हैं। जिस प्रकार भारत युद्ध की तिथि, (स्वायम्भुव से युधिष्ठिरपर्यन्त) सभी प्राचीन राजाओं की तिथि निर्णीत करने में परम सहायक हैं, उसी प्रकार चन्द्रगुप्त विक्रम (१३५ वि०) तिथि से युधिष्ठिर से हर्षपूर्व तक के राजाओं और घटनाओं की सभी

---

१. एपि० इण्डिया, भाग ५, पृ० ३८.

२. पुरातन वंशावलियों में समुद्रपाल अर्थात् समुद्रगुप्त का राज्यकाल अवन्ति के विक्रमादित्य के ९३ वर्ष पश्चात् माना जाता है। इससे एक बात सर्वथा निश्चित होती है कि समुद्रगुप्त का राज्य विक्रम से ३८० वर्ष पश्चात् कभी नहीं था। फलीट ने अलबेरूनी के मत को बिगाड़कर यह कल्पना की है। अलबेरूनी का गुप्तबलभी संवत् गुप्तों की समाप्ति पर आरम्भ होता है। अलबेरूनी के अनुसार गुप्तों के आरम्भ से चलने वाला गुप्त संवत् और शकसंवत् एक थे।' (भा० बृ० इ०, भाग १, पृ० १७२)।

तिथियां निश्चित हो जायेंगी। अब मालवगणस्थिति संवत् और मन्दसौर के प्रसिद्ध भवन की तिथि भी सरलता से निकाली जा सकती है। समुद्रगुप्त का समय ९३ वि० सं० था, उसका राज्यकाल ४१ वर्ष अर्थात् १३४ वि० सं० में समाप्त हुआ, कुछ मास के लिए उसका पुत्र रामगुप्त राजा बना। १३५ वि० सं० में रामगुप्त केकनिष्ठ भ्राता चन्द्रगुप्त ने शकवध और रामगुप्तवध करके उससे गद्दी छीन ली। उसने ३६ वर्ष राज्य किया, अतः उसके पुत्र कुमारगुप्त के समय १६१ वि० सं० में भवन बनाऔर उसके ५२९ वर्ष बीतने पर ६९० वि० सं० में उसका जीर्णोद्धार हुआ। अतः एतदनुसार ३३२ वि० पू० से मालवगणसम्वत् का आरम्भ हुआ न कि ५७ ई० पू०।

पार्श्व चिह्न—पार्श्व का चिह्न फणयुक्त नाग है जो उनकी मूर्तियों पर मिलता है। पार्श्वनाथ नागजाति के पुरुष थे, अतः नागगण उनकी विशेष पूजा करते थे।

पार्श्वनाथ का निर्वाण सम्मेदशिखर पर हुआ, तभी से इस पर्वत की महिमा अधिक बढ़ गई।

भगवान् पार्श्व चातुर्यामिधर्म के प्रवर्तक थे। महावीर ने इसमें एक और याम (ब्रह्मचर्य) जोड़ा। जैनदिगम्बरपरम्परा के अनुसार पार्श्व ने कुमारावस्था (अविवाहित) में ही प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

महावीर

समय—

महावीर का समय निर्धारण पूर्वापर की जैनपरम्परा का मूलाधार है अतः भगवान महावीर के समय निर्धारण के साथ पूर्वापर के प्रमाणों का सिंहावलोकन करते हैं।

भगवान् महावीर की तिथि का निर्धारण महाभारतयुद्धकाल की तिथि या कलिसंवत् एवं चन्द्रगुप्त मौर्य की तिथि पर निर्भर है।

पुराणों में भारतोत्तर (कल्योत्तर) तिथियां—

वायुपुराण (९९/४२८) में लिखा है कि १२०० वर्ष परिमाणवाला कलियुग ठीक उसी दिन प्रारम्भ हुआ जब कृष्णवासुदेव दिवंगत हुये—

यस्मिन् कृष्णो दिवं यातस्तस्मिन्नेव तदा दिने।
प्रतिपन्नः कलियुगस्तस्य संख्यां निबोधत॥

तदा प्रवृत्तश्च कलिर्द्वादशाब्दशतात्मकः (भागवत १२/२/३१) कलियुग के संध्याकाल में कलि के ठीक १००० बीतने पर कल्कि अवतीर्ण हुये—

अस्मिन्नेव युगे क्षीणे संध्याश्लिष्टे भविष्यति ।
कल्किर्विष्णुयशा नाम पाराशर्यः प्रतापवान् ।।

विष्णुयशाकल्कि जिस राजा के समय में अवतीर्ण हुये, इस तथ्य का उल्लेख केवल कल्किपुराण में अवशिष्ट है ।

अतः पूर्वपृष्ठों पर, मैंने महाभारतोत्तर भ्रामक तिथियों का निराकरण किया, अतः महावीर जन्म १८५३ वि० पू० के निकट और महावीरनिर्वाण १७८१ वि० पू० में हुआ, यह निश्चित हुआ ।

महावीर के अनुयायी और शिष्यपरम्परा—

पं० भगवद्दत्त ने एक ऐतिहासिक तथ्य लिखा—"अन्ततः विक्रम की चौथी और पांचवी शताब्दियों में जैनमतावलम्बियों ने पुनः अपनी सम्प्रदाय परंपरा एकत्र की और शास्त्रसंग्रह किया ।

जैनों का यह संग्रहकृत्य माथुरी और बालभी वाचनाओं के नाम से प्रसिद्ध है । इस संग्रह के काम में कई भूलें अनायास हो गई । इस कारण जैनपरम्परा में कहीं-कहीं बहुत भेद दिखाई देता है । एक कल्कि की गणना के विषय में जैनाचार्यों के निम्नलिखित मत हैं—

१. श्वेताम्बरग्रन्थ तित्थोगाली के अनुसार वीरनिर्वाण के १९२८ वर्ष बीतने पर कल्कि हुआ ।
२. कालसप्ततिका प्रकरण के अनुसार वीरनिर्वाण के १९१२ वर्ष और ५ मास बीतनेपरकल्कि हुआ ।
३. जिनसुन्दरसूरि के दीपमालाकल्प में यह काल १९१४ वर्ष माना है ।
४. क्षमाकल्याण के दीपमालकल्प में निर्वाणसम्वत् ५९९ में कल्कि का होना लिखा है ।
५. नेमिचन्द्र अपने तिलोकसारग्रन्थ में वीरनिर्वाण १००० में कल्की को मानता है ।

जैनग्रन्थों का पूर्वोक्त विवरणनागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग १० अंक ४ में मिलता है । यह विवरण श्रीमुनि कल्याणविजयजी का किया है ।

६. यतिवृषभकृत तिलोयपण्णति में कल्की का अस्तित्व वीरनिर्वाण ९५८ अथवा १००० में माना है ।

इस भेद का कारण परम्परा विच्छेद है । महाबीरजी का निर्वाण बहुत

पुराने काल की बात थी। जब जैनभिक्षु उस पुरातनकाल को भूल गये, तो विक्रम से लगभग ४७० वर्ष पहिले वीरनिर्वाण मान लिया। बस, इस भूल से कालगणना में भारी भेद पड़ गया। उन्हें शूद्रक विक्रम और चन्द्रगुप्तविक्रम का भेद भी भूला। जिससे जैनविद्वान दोनों विक्रमसम्वतों को एक ही मानने लगे।

ऐसी परिस्थिति में भी अनेक जैनग्रन्थ भारतीय इतिहास के लिए अत्यन्त उपादेय है। पर उनका उपयोग बड़ी सावधानी से होना चाहिये।" (भारत वर्ष का बृहद् इतिहास, भाग—१, पृष्ठ १२१-१२२)।

अतः महावीर की अनुयायीपरम्परा या शिष्यपरम्परा भी (जो वर्तमान वाङ्मय में मिलती है) पूर्णत निर्भ्रान्त नहीं हो सकती। यहां संक्षेप में उसका विवरण प्रस्तुत करने हैं—

जैनसाहित्य में यह सुप्रसिद्ध हैं महावीर के प्रथम प्रमुख शिष्य इन्द्रभूति गौतम थे। उनकी एकशिष्यपरम्परा इस प्रकार है—

(१) श्रीमहावीर	(१८) मंगु
(२) इन्द्रभूति गौतम	(१९) धर्म
(३) सुधर्मा	(२०) भद्रगुप्त
(४) जम्बूस्वामी	(२१) वज्र
(५) प्रभव	(२२) रक्षित
(६) शंयुभव	(२३) आनन्दिल
(७) यशोभद्र	(२४) नागहस्ती
(८) संभूतविजय	(२५) रेवतिनक्षत्र
(९) भद्रबाहु	(२६) ब्रह्मदीपसिंह
(१०) स्थूलभद्र	(२७) स्कन्दिलाचार्य
(११) महागिरि	(२८) हिमवन्त
(१२) सुहस्ती	(२९) नागार्जुन
(१३) बलिसह	(३०) गोविन्द (पाद ?)
(१४) स्वाति (सातवाहन)	(३१) भूतदिन्न
(१५) श्याम	(३२) लौहित्य
(१६) शाण्डिल्य	(३३) दूष्यगणि
(१७) समुद्र	(३४) देवर्द्धिगणि

एक अन्य आचार्यशिष्यपरम्परा में नामों में कुछ भेद है। प्रत्येक आचार्य की वर्षगणना भी बताई गई है, तथापि यह आचार्यशिष्यपरम्परा न तो पूर्ण है और नहीं वर्षगणना निर्भ्रान्त। वह पूर्ण या निर्भ्रान्त हो भी कैसे सकती है, जबकि महावीर का निर्वाण १७५० वि० पू० हुआ और उसे ४७० वि० पू० माना जाने लगा। ठीक १२८० वर्षों का अन्तर (भूल) :—

क्र०सं० आचार्य	वर्ष	वीरनिर्वाणसंवत्	विक्रमपूर्व
१. इन्द्रभूति गौतम	१२	१२	१७३८ वि०पू०
२. सुधर्मा	१२	२४	१७१४ " "
३. जम्बूस्वामी	३८	६२	१६५२ " "
४. विष्णु	१४	७६	
५. नन्दिमित्र	१६	८२	
६. अपराजित	२२	१०४	
७. गोवर्धन	१९	१२३	
८. भद्रबाहु	२९	१५२	
९. विशाख	१०	१६२	
१०. प्रोष्ठिल	१९	१८१	
११. क्षत्रिय	१७	१९८	
१२. जयसेन	२१	२१९	
१३. नागसेन	१८	२३७	
१४. सिद्धार्थ	१७	२५४	
१५. धृतिषेण	१८	२७२	
१६. विजय	१३		
१७. बुद्धिलिंग	२०		
१८. देव	१४		
१९. धर्मसेन	१४		
२०. नक्षत्र	१८		
२१. जयपाल	२०		
२२. पाण्डव	३९		
२३. ध्रुवसेन	१४		
२४. कंस	३२		
२५. सुद्र	६		

२६. यशोभद्र	१८
२७. भद्रबाहु (२)	२३
२८. लोहाचार्य	५२

क्र० सं० आचार्य	वर्ष	वीरनिर्वाणसम्वत्	विक्रमपूर्व
२९. अर्हद्बलि	५२		
३०. माघनन्दि	२८		
३१. धरसेन	१९		
३२. पुष्पदन्त	३०		
३३. भूतबलि	२०		
कुल योग =	६८३		

नन्दीसंघ की पट्टावली में कुन्दकुन्दाचार्य की गुरुपरम्परा निम्न रूप से दी है—

भद्रबाहु
गुप्तिगुप्त
माघनन्दि
जिनचन्द्र
कुन्दकुन्द

प्रमुख आचार्यों का ऐतिह्य एवं राजाश्रय

प्रमुख आचार्यों के कालक्रम पर विचार करने से पूर्व आचार्य श्रीहस्तीमल जीमहाराज (ले० जैनधर्म का इतिहास) की कुछ टिप्पणियां द्रष्टव्य हैं—

१. पहिली और सबसे जटिल समस्या हमारे समक्ष यह है कि आर्य जम्बू के पश्चात् श्वेताम्बर और जैन (दिगम्बर) परम्परा के आचार्यों की नामावली में भेद क्यों हैं (पृ० ९)।

२. श्रवणबेलगोल पार्श्वनाथवसति के कुछ शिलालेखों में विष्णु आदि आचार्यों के उल्लेख हैं, पर वह अपूर्ण और कतिपय अंशों में परस्पर विरोधी और पर्याप्त पश्चाद्वर्ती हैं। (पृ० १०)।

३. इन सब विवादास्पद प्रश्नों का कोई सर्वसम्मत हल आज उपलब्ध समस्त जैनवाङ्मय में कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। (पृ० १०)।

भगवान् महावीर का राजवंश—

अन्य सभी २३ पूर्व तीर्थंकरों के समान भगवान् भी क्षत्रिय कुल एवं राजवंश से सम्बन्धित थे। वैशाली प्राचीन भारत का प्रसिद्ध गणराज्य था, जहां पर महावीर के समय ७७०७ गणप्रमुख थे। उनमें महावीर के पिता सिद्धार्थ इक्ष्वाकुवंशी ज्ञातृशाखा के प्रमुख थे। "ज्ञातृ" शब्द का ही प्राकृत (अर्धमागधी) रूप "नाथ" (नात) प्रतीत होता है, क्योंकि उत्तरकालीन जैन पुराणों में महावीर को "नाथवंशी" बताया गया है। बौद्धग्रन्थों में महावीर को "निगंठ नातपुत्र" कहा गया है, जिसका संस्कृत रूप है "निग्रन्थ ज्ञातपुत्र"। उस समय वैशाली के प्रधान गणाध्यक्ष (राजा) चेटक थे—उस समय (१८०० वि० पू०) चार महानगरों में चार प्रसिद्ध राजा थे, जैसा कि विनयपिटक में लिखा है—"बोधिसत्वस्य जन्मकालसमये चतुर्महानगरेषु चत्वारो महाराजा अभूवन्। तद्यथा राजगृहे महापद्मस्य पुत्रः। श्रावस्त्यां ब्रह्मदत्तस्य पुत्रः। उज्जयिन्यां राज्ञोऽनन्तनेमेः पुत्रः। कौशाम्ब्यां राज्ञः शतानीकस्य पुत्रः।" (इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टर्ली, जून १९३८, पृ० ४१३)।

१. महापद्म (प्रथम)=शैशुनाग क्षत्रौजापुत्र=बिम्बसार=मगधपति
२. ब्रह्मदत्तपुत्र=प्रसेनजित् (अयोध्यापति)।
३. अनन्तनेमिपुत्र=चन्द्रप्रद्योत (अवन्तिनाथ)।
४. शतानीकपुत्र=उदयन (वत्सराज=कौशाम्बीराज)।

इन चारों महाराजों की पत्नियां महाराज चेटक की पुत्रियां थीं।

महावीर की माता त्रिशला भी चेटक की पुत्री थीं। अतः सिद्धार्थ उस समय वैशाली के प्रभावशाली गणाधिप थे। विदेहराज (वैशालीनरेश) चेटक की पुत्रियों को वैदेही कहा जाता था अतः त्रिशला भी एक वैदेही (विदेह राजपुत्री) थी।

वर्धमान महावीर के जीवनवृत्त एवं तपश्चर्या को हम दुहराना नहीं चाहते, क्योंकि समस्त विद्वद्गण—विशेषतः सामान्य जैन भी प्रायः इससे परिचित हैं।

इन्द्रभूति गौतम—

महावीरशिष्य बनने से पूर्व इन्द्रभूति गौतम प्रसिद्ध वेदाचार्य पंडित थे, जिनके ५०० शिष्य थे। गौतम महावीर से प्रभावशाली आत्मज्ञान का उपदेश सुनकर वे महावीर के प्रमुख एवं प्रथम शिष्य हो गये। महावीर का यह प्रथम उपदेश से ही तीर्थप्रवर्तन हुआ, इसे ही तीर्थस्थापना कहा जाता है।

सुधर्मा—

ये महावीर के प्रधान द्वितीय शिष्य थे, इन्द्रभूति के पश्चात् शिष्यपरम्परा में इनका स्थान है। इनकी आयु १०० वर्ष थी।

जम्बूस्वामी—

ये सुधर्मा के उत्तराधिकारी एवं महावीर के तृतीय शिष्य वे थे, संभवतः प्रथम वैश्य थे, जो महावीर के शिष्य बने। अन्य शिष्य प्रायः ब्राह्मण ही थे।

महावीर और श्रेणिक बिम्बसार—(शैशुनागवंश)—

पार्जीटर आदि आधुनिक लेखकोंने नामसाम्य के आधार पर मागध बालक प्रद्योतवंश और अवन्ती के चण्डप्रद्योत (राजा) को एक मानने की भारी भूल की है, जिसे वे अभी भी सुधारना नहीं चाहते। पं० भगवद्दत्त ने भारतवर्ष का बृहद् इतिहास, द्वितीय भाग, पृ० २३८-२३९ पर एवं तदनुसार मैंने पुराणों में वंशानुक्रमिक कालक्रम, पृष्ठ २१-२८ पर नवीनप्रमाणों के साथ दोनों की पृथक्ता सिद्ध की है।

इसी भ्रान्तिवंश श्रीबलभद्रजैन ने लिखा—'वायुपुराण में शिशुनाग को प्रद्योतों के पश्चात् बताया है, यह ठीक नहीं है। श्लोक संख्या १६८ के तृतीय पाद 'बृहद्रथेष्वतीतेषु के सन्दर्भं लें ही 'शिशुनागो भविष्यति, पढ़ना चाहिये। क्योंकि प्रद्योतवंश का संस्थापक चण्डप्रद्योत भगवान् महावीर, बुद्ध और श्रेणिक का समकालीन था।' (पृ० २५३)

शैशुनागवंश के १० राजाओं ने ३६२ वर्ष और उससे पूर्व प्राद्योत मागध वंश के ५ राजाओं ने राजगृह में १३८ वर्ष राज्य किया। चण्डप्रद्योत न तो वंशप्रवर्तक था और न मगध का राजा। प्राचीन जैन और बौद्धग्रन्थों में कहीं भी चण्डप्रद्योत को मगध का शासक नहीं बताया। जैन, बौद्ध और वैदिक पुराण समानरूप से केवल मगध के राजाओं की ही वर्षगणना प्रस्तुत करते हैं।

जैनपुराणों में, शैशुनाग श्रेणिकबिम्बसार को भगवान महावीर का प्रमुख अनुयायी एवं श्रावक बताया गया है। गौतमगणधर श्रेणिक को ही आदिपुराण आदि सुनाते हैं।

नन्द और उसके मन्त्री जैन—

जैनपुराणों एवं आचार्य हेमचन्द के परिशिष्टपर्वन् ग्रन्थ में नन्द और उसके मन्त्रियों को महावीर का अनुयायी बताया गया है, उसमें कपिल, कल्पक और शकटाल का आख्यान है, जिसकी ओर इतिहासज्ञों ने ध्यान नहीं

दिया। कपिल, कल्पक और शकटाल क्रमशः पितामह, पिता और पुत्र थे, जिनमें शकटाल नन्द का प्रसिद्ध मन्त्री था, जिसकी कथा मुद्राराक्षसनाटक में भी है।

२४ तीर्थंकरों का ऐतिहासिक क्रम

इस तुलनात्मक शोध अध्ययन से स्पष्ट है कि वर्तमान जैनवाङ्मय में तीर्थंकरों का क्रम पर्याप्त विपर्यस्त (अस्त-व्यस्त) है, मैंने आंशिकरूप से उसे क्रमबद्ध करने की चेष्टा की है, अधिक या पूर्ण सफलता के लिये अभी पर्याप्त एवं गहन शोध की आवश्यकता है और आशा करता हूँ कि भविष्य में यह कार्य सम्पन्न हो सकेगा।

अभी तक जितना भी मैं शोध कर पाया हूँ, तदनुसार २४ तीर्थंकरों का निम्न क्रम निश्चित होता है—

क्र० सं०	तीर्थंकर वर्तमान क्रम	परिवर्तितक्रम	वैदिकनाम	समय
१.	ऋषभदेव	ऋषभ		२७००० वि०पू०
२.	अजितनाथ	सुमति	सुमति (देवताजित)	२६००० "
३.	संभवनाथ	धर्म	धर्मप्रजापति	१४००० "
४.	अभिनन्दननाथ	वासु (वासुपूज्य)	वासु (वसु)	१०००० "
५.	सुमतिनाथ	संभव	संभूति (ऐक्ष्वाक)	८००० "
६.	पद्मप्रभ	श्रेयांसनाथ	विष्णुवृद्ध	७६०० वि०पू०
७.	सुपार्श्वनाथ	अभिनन्दन	—	—
८.	चन्द्रप्रभ	अनन्तनाथ	—	—
९.	पुष्पदन्त	विमलनाथ	—	—
१०.	शीतलनाथ	शान्तिनाथ	सुशान्ति	६००० वि०पू०
११.	श्रेयान्सनाथ	अरनाथ	अरिहपौरव	५७०० "
१२.	वासुपूज्य	अजितनाथ	अजितऐक्ष्वाक	५६०० "
१३.	विमलनाथ	मल्ली	मल्ली (वैदेही)	५४०० "
१४.	अनन्तनाथ	कुन्थुनाथ	विकुण्ठन (पौरव)	५३०० "
१५.	धर्मनाथ	सुपार्श्व	—	—
१६.	शान्तिनाथ	चन्द्रप्रभ	—	—
१७.	कुन्थुनाथ	पुष्पदन्त	विकुण्ठन	—
१८.	अरनाथ	शीतलनाथ	(द्वितीय)	—

१९. मल्लिनाथ	पद्मप्रभ	—	—
२०. मुनिसुव्रतनाथ	सुव्रत (मुनि)	सुव्रत	५००० वि०पू०
२१. नमिनाथ	नमियानिमि साप्य	निमिजनक	३३०० वि०पू०
२२. नेमिनाथ	नेमिनाथ	अरिष्टनेमि	३१५० वि०पू०
२३. पार्श्वनाथ	पार्श्व	पार्श्व	२१७५ वि०पू०
२४. महावीर वर्द्धमान	वर्द्धमान महावीर	महावीर (जन्म)	१८५३ वि०पू०
		निर्वाण	१७८१ वि०पू०

१

परिशिष्ट

(ऋषभ और भरत की तिथि और भारतसंज्ञा)

'भगवान् ऋषभदेव'

आदिनाव ऋषभदेव और आर्षभ भरत के इतिहास की विशेष परिचर्चा से पूर्व 'इतिहास' का यथार्थ जानना अनिवार्य है। प्राचीन आचार्यों का मत इस सम्बन्ध में सुस्पष्ट है—'इति हैवमासीदिति कथ्यते स इतिहास' 'यह घटनाक्रम निश्चितपूर्वक हुआ था, वही इतिहास है'। कल्पना, प्रकल्पना, दुष्कल्पना या मनमानी कल्पना को इतिहास नहीं माना जा सकता। इस दृष्टिप्रमाण से 'आर्य एक जाति थी, आर्यों ने भारत में १५०० ई०पू० प्रवेश किया, आर्यद्रविडसंघर्ष हुआ या 'सिकन्दर और चन्द्रगुप्त मौर्य समकालिक थे' विक्रमसंवत्, विक्रमादित्य ने नहीं चलाया' या 'भारतदेश' का नाम दौष्यन्ति भरत के नाम पर पड़ा, इस प्रकार की मिथ्या कल्पनायें 'इतिहास' नहीं है, ऐसी कल्पनायें, न अनुमान (शब्दप्रमाण) है, न अन्य प्रमाण, अतः, सत्य या वास्तविक घटायें ही इतिहास है, इसमें निष्पक्ष इतिहासकार को कोई सन्देह नहीं हो सकता।

इति+इ+आस=इन तीन पदों से 'इतिहास' शब्द बना है। 'आस' का अर्थ है 'था' अत भूतकालिक घटना ही इतिहास है। परिणामस्वरूप कालक्रम या भूतकाल का इतिहास से अनन्य सम्बन्ध है। कालक्रम के बिना इतिहास का कोई अर्थ ही नहीं। अतः प्राचीनकाल में इतिहासकालगण नाहेतु निम्न सात प्रकार के 'युग' प्रचलित थे, इन्हें 'वत्सर' या सवंतसर भी कहा जाता था :—

१. पंचसंवत्सरात्मक युग=पंचवत्सर=५ वर्ष का।
२. षष्टिवत्सर=बार्हस्पत्ययुग=६० वर्ष का।
३. मानुषयुग=मनुष्यायु=१०० वर्ष का।
४. परिवर्तयुग=दिव्यसंवत्सर=३६० वर्ष का
५. सप्तर्षियुग=सप्तर्षिवत्सर=२७०० वर्ष का
६. ध्रुवयुग=ध्रुवसंवत्सर=९०९० वर्ष का
७. चतुर्युगवत्सर=देवयुग=१२००० वर्ष का

ऐतिहासिक कालगणना में 'सप्तर्षिवत्सर' का बहुत कम प्रयोग होता था। पुराणों में केवल प्रतीप और आन्ध्रसावाहन का कालान्तर २७०० वर्ष बताया गया है। इस प्रसंग को छोड़कर सप्तर्षिसवत्सर की शेष धारणायें आधुनिक कल्पनामात्र है, जिनका इतिहास में कोई उल्लेख नहीं।

परिवर्तयुगकालगणना और ऋषभ का समय—

वर्तमान मानवीसृष्टि के प्रथम पुरुष स्वायम्भवमनु थे, जिनकी पांचवी पीढ़ी में भगवान् ऋषभदेव हुये। उस आदियुग में मनुष्य की न्यूनतम आयु ५०० वर्ष और अधिकतम आयु १००० वर्ष थी, जैसाकि वेद, पुराण, जैन शास्त्र, अवेस्ता और बाईबिल से प्रमाणित होता है। ऋषभदेव के समय राज्यसंस्था की स्थापना नहीं हुई थी, उस समय के प्रमुख पुरुषों को 'प्रजापति' 'कुलकर' 'मनु' या 'स्वयमभू' कहा जाता था। अतः पांच पीढ़ी का अर्थ है कि स्वायम्भुवमनु और ऋषभ में लगभग २००० वर्ष का अन्तर था।

समय—

स्वायम्भुवमनु को 'आदिपुरुष' पूर्वपुरुष या आदम कहा जाता है और उनको महाभारतकाल तक ७१ परिवर्तयुग (७१×३६०=२५५६०) या २६००० वर्ष व्यतीत हुए। महाभारतयुद्ध अबसे पांच सहस्रवर्षपूर्व हुआ अतः स्वायम्भुवमनु का समय आज से ३१००० वर्ष पूर्व था :—

स वै स्वायम्भुवः पूर्वपुरुषो मनुरुच्यते।
तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते।
क्रमेण परिवर्तास्तु मनोरन्तरमुच्यते। (वायु० ५७/११५)

अतः स्वायम्भुवमनु के वंशज ऋषभदेव का समय अबसे २९००० वर्ष पूर्व था। इससे अन्यथा कालगणना दुष्कल्पनामात्र है, जिसका इतिहास से कोई भी सम्बन्ध नहीं।

भारतनामकरण—ऋषभ के सौ पुत्र हुये, जिनमें भरत ज्येष्ठपुत्र थे, जिनके नाम से इस देश का नाम आज से न्यूनतम २८००० वर्ष पूर्व 'भारत-वर्ष' पड़ा। 'आर्षभ भरत के नाम से ही इस देश का नाम 'भारत' हुआ, यह प्राचीनशास्त्रों की सर्वसम्मत मान्यता है। वैदिकपुराण और जैनशास्त्र इसमें पूर्णतः एकमत है अतः इस सम्बन्ध में कल्पना के लिए कोई स्थान नहीं है। ऋषभ के पिता का नाभि या अजनाभ या नाभिराज (नाभिराय) था। भागवतपुराण (५।१७।१३) के अनुसार भारतवर्ष का और भी पुरातन नाम 'अजनामवर्ष' था— 'अजनाभनामैतद् वर्षं भारतमितियद् आरभ्य व्यप दिशन्ते। नाभि के पौत्र और ऋषभ के पुत्र 'भरत' के नाम पर इस देश का नाम 'भारतवर्ष' अधिक प्रख्यात हुआ। परन्तु अतिपुरातनकाल में 'भारतवर्ष' नाम के साथ 'नाभिवर्ष' भी प्रचलित था। पुराणों के अतिरिक्त 'बाइबिल' से भी इसकी पुष्टि होती है कि आदम (स्वायम्भुव मनु) के वंशज 'नौड' देश में रहते थे जो 'इडन' (उद्यान) के पूर्व में था।

यहां 'नौड' शब्द 'नाभि' का अपभ्रंश रूप ही है।

स्वायम्भुव मनु से वैवस्वतमनु पर्यन्त सैकड़ों प्रजापति हुए। पृथु से पूर्व अर्थात् १८००० वर्ष से पूर्व राजा थे ही नहीं। प्रजापति वस्तुतः प्रजाओं को उत्पन्न करते थे और समाज पर नियन्त्रण रखते थे। नाभि, ऋषभ और भरत आदि ऐसे ही आदिम प्रजापति थे। इन प्रजापतियों या ऋषियों की आयु प्राय ३०० वर्ष से एक सहस्र वर्ष पर्यन्त होती थी। वैदिकग्रन्थों और बाइ-बिल से यही तथ्य पुष्ट होता है। सुमेरिया से प्राप्त पुरातत्व से भी यही तथ्य सिद्ध होता है, तदनुसार प्रलयपूर्व और प्रलयपश्चात् के महापुरुषों या राजाओं की आयु और शासन १००० वर्ष तक या अधिक होता था। सुमेरिया में 'इसिन' शिलालेख के अनुसार आदिम मनु की वशांवली इस प्रकार थी :—

१.	अनु=मनु=	१. मनु (स्वायम्भुव)
२.	एमनोनन	उत्तानपाद
३.	उड्क	उत्तम
४.	दुमजी	ध्रुव
५.	शिबुजी	ऋषभ
६.	सुमति	सुमति
७.	भरतुत	भरत

इनमें से प्रत्येक की आयु बहुत लम्बी थी।

परिवर्तयुग गणना के अनुसार स्वायम्भुव मनु आज से लगभग ३२ सहस्र वर्ष पूर्व हुए, ऋषभ ३० सहस्र वर्ष पूर्व और शिवमहादेव पन्द्रह सहस्र पूर्व जन्में, अग्रिम विवेचन से भी यही सिद्ध होगा।

स्वायम्भुवमनुवंशवृक्ष में ऋषभ—

स्वायम्भुव मनु का समय प्राचेतस दक्ष से ४३ परिवर्तयुग ४३×३६०= १६००० वर्ष पूर्व था, अतः स्वायम्भुवमनु का समय न्यूनतम २६००० वि०पू० था, इस समय से पूर्व सूर्यदाह और तदनन्तर जलप्लावन हुआ। सूर्यदाह से पृथ्वी के पृष्ठ पर स्थित समस्त स्थावरजंगम (जीव, वनस्पति आदि) जलकर भस्म हो गये, ताप का केवल भूपृष्ठ के आवरण पर विशेष प्रभाव पड़ा, परन्तु पर्वतों की गुहाओं एवं पृथ्वीगर्भ में अनेक चिन्ह प्राप्त हुए हैं, जिससे सिद्ध होता है कुछ किलोमीटर, ३ या ४ कि० पर्यन्त ही सूर्यताप का अधिक प्रभाव पड़ा। योरोप और अफ्रीका और अफ्रीका की पर्वतकन्दराओं में विशालकाय डायनासौर जीवों के भित्तिचित्र मिले हैं, जो पांच से सात करोड़ वर्ष पूर्व तक के अनुमानित किये गये हैं, पौलेंड की एक कोयले की खान में पांच करोड़ वर्षपूर्व का एक पाइप मिला है और भी ऐसे अनेक चिन्ह प्राप्त हुये हैं, जिनसे प्रतीत होता है कि अनेक बार सूर्यताप एवं अनेक जलप्रलयों से पूर्व पृथ्वी पर अनेक बार मानवीसृष्टि हुई थी। सूर्यदाह एवं जलप्रलय कितने समय पर्यन्त रही, इसका अनुमान लगाना कठिन है परन्तु एक उत्सर्पिणीकाल (२१००० वर्ष) अवश्य रही होगी, जैसा जैनग्रन्थों में संकेत है :—

ततः प्रलीने सर्वस्मिन् स्थावरेजङ्गमे तथा।
अकाष्ठा निस्तृणाभूमिदृश्यते कूर्मपृष्ठवत् ।। (महा २१२३६१४)
ददाह भगवान् वह्निर्भूतानीव युगक्षये। द्रोणपर्व १५७११३४

प्रियव्रतपुत्रों द्वारा पृथवीनिवेशन

कर्दम प्रजापति की पुत्री काम्या का विवाह प्रियव्रत के साथ हुआ जिनसे दो पुत्रियां और दश पुत्र उत्पन्न हुए। पुत्रियों के नाम थे—सम्राट् और कुक्षि। पुत्रों के नाम थे—आग्नीध्र, अग्निवाहु, मेध, मेधातिथि, वसु, ज्योतिष्मान् द्युतिमान् हव्य, सवन। मन्वन्तरवर्णन में पुराणकार इन्हें स्वायम्भुव के पुत्र कहते हैं। वस्तुतः ये मनु के पौत्र ही थे, पुत्र नहीं।

प्रियव्रतस्य पुत्रैस्तैः पौत्रैः स्वायम्भुवस्च ।। (ब्रह्माण्ड० ११२११४१६)
ससमुद्रावसुमती प्रतिवर्ष निवेशिता ।। (ब्रह्माण्ड० ११२११४१६)

प्रियव्रत ने अपने सात पुत्रों को सात महाद्वीपों का अधिपति नियुक्त किया, वे थे (१) आग्नीध्र, (२) मेधातिथि, (३) वपुष्मान्, (४) ज्योतिष्मान्, (५) धतिमान् (६) भव्य, (७) सवन, जिन्होंने क्रमशः

(१) जम्बूद्वीप (२) प्लक्षद्वीप (३) शाल्मलिद्वीप (४) कुशद्वीप (५) क्रौंचद्वीप

(६) शाकद्वीप और (७) पुष्करद्वीप, बसाये ।

इस समय उपर्युक्त जम्बूद्वीपादि सप्त महाद्वीपों की ठीक-ठीक पहिचान एक कठिन समस्या है, यद्यपि कुछ महाद्वीपों की पहिचान सही बताई जा सकती है, यथा जम्बूद्वीप दक्षिणी पूर्वी एशिया का प्राचीननाम था, जिसमें जम्बूवृक्ष की प्रधानता थी, कुशद्वीप अफ्रीका का प्राचीन नाम था, पुराणों में नीलनदी एवं अन्य ऐतिहासिक चिह्नों से इसकी पहिचान हो चुकी है, शाल्मलिद्वीप पश्चिमी एशिया के इराक आदि देशों की संज्ञा थी । कुछ लोग शाकद्वीप शकगण जातियां के आधार पर ईरान और मध्य एशिया को मानते हैं तो कुछ विद्वान् पूर्वीद्वीपसमूह को, क्योंकि वहीं पर साखू (शाक) के पेड़ अधिक पाये जाते हैं ।

सभी द्वीपों की पहिचान आज हो भी नहीं सकती, क्योंकि स्वायम्भुवमनु के समय भूलोक पर महाद्वीपों और समुद्रों की जो स्थिति थी, वह आज नहीं है, क्योंकि पृथ्वीतलपर अनेक द्वीप, पर्वत, नदी आदि समुद्र में डूब चुके हैं और अनेक नये द्वीपादि बन गये हैं । किसी युग में अन्तार्कतिकद्वीप (दक्षिणी ध्रुव) में पेड़ पौधे उगते थे, पशु और मानव विचरण करते थे, वहां डायनासौर के चित्र गुफाओं में मिले हैं, वहां कोयले की खानें भी विद्यमान हैं, पृथ्वी के प्राचीन मानचित्र (जो पीरीईस के पुस्तकालय से प्राप्त हुआ) से सिद्ध होता है कि उस समय अंतार्कटिक महाद्वीप पर हिम नहीं था । इस मानचित्र के निर्माता मयजाति के अन्तरिक्ष यात्री माने जाते हैं, इसका संकेत डैनीकेन ने अपनी पुस्तक चरियट्स आफगाडस् में किया है ।

पुराणों के सप्तपातालों में एक अतल (महाद्वीप) पाताल का उल्लेख है, जहां नमुचि, महानाद, शंकुकर्ण, कबन्ध, निष्कुलाद, धनंजय आदि असुरों के नगर (पुर) बसे हुए थे । इसी अतल को प्राचीन यूरोपवासी (यूनानी आदि)

अटलांटिक महाद्वीप कहते थे यह वणिक् पणियों के नेता मय ने बसाया था। अटलांटिक (अतल) महाद्वीप के समुद्र में डूबने का वर्णन प्लेटोने किया है, यह घटना वैवस्वतमनु के समय (१२००० वि०पु०) जलप्रलयकाल में संभव है या उसके बाद की हो सकती है, परन्तु उससे पूर्व अतल महाद्वीप, जो योरोप और अमेरिका के मध्य में (जहां आज अटलांटिक महासागर है) था और यद्यपि असुरों की नगरियां वहां थीं, अतः आज उपर्युक्त सात महाद्वीपों (प्लक्षादि) की ठीक-ठीक पहिचान एक दुःस्वप्नमात्र है। प्रियव्रतपुत्रहव्य या भव्य के सात पुत्रों के नाम पर शाकद्वीप के सात वर्ष (देश) प्रथित हुए— जलदवर्ष, कुमारवर्ष, सुकुमारवर्ष, मणीवकवर्ष, कुमुदवर्ष कौमौदकवर्ष और महाद्रुमवर्ष।

जम्बूद्वीप के नौ भाग हुए और उनके दो-दो नाम होने के कारण हैं कि देश, पर्वत के नाम पर भी प्रसिद्ध हुआ, जैसे हिमालय के नाम पर हिमवर्ष और आग्नीध्र-पुत्र नाभि के नाम पर नाभिवर्ष, पुत्र नाभि के पौत्र पर इस वर्ष का नाम भारतवर्ष प्रथित हुआ, जो आज भी इसी नाम से जगत्प्रसिद्ध है। हरिवर्ष को तुर्किस्तान, इलावर्त को पामीर (मेरुपर्वत) रम्यक को चीनी-तातार, हिरण्यवान् को।

अतः नाभिवर्ष और 'भारतवर्ष' नाम क्रमशः नाभि और आर्षभ भरत के नाम पर पड़ा, इस सम्बन्ध में किसी प्रकार का शास्त्रीय, साम्प्रदायिक या ऐतिहासिक मतभेद नहीं हैं। परन्तु अभी कुछ दिन पूर्व टी० वी० सीरियल पर भारतवर्ष के नामकरण का सम्बन्ध दौष्यन्ति भरत से जोड़ा, जिसका समर्थन किसी भी प्राचीनग्रन्थ से नहीं होता है।

वैदिकसंहिताओं, रामायण, महाभारत और पुराणों में अनेक उत्तर-कालीन भरतों की चर्चा है जिनमें सर्वाधिक प्रसिद्धि दौष्यन्ति भरत और रामानुज भरत की है। भारतदेश का नाम 'दौष्यन्ति भरत के साथ जोड़ने की कुछ आधुनिकलोगों की प्रवृत्ति भ्रान्त एवं अज्ञानमूलक है, जो भारत भारती और 'भारतवर्ष' आदि शब्दों से उत्पन्न होती है। कुछ लोग 'इति-हासज्ञानशून्यता के कारण शाकुन्तलभरत को आदितीर्थंकर ऋषभ या आर्षभ भरत से पूर्ववर्ती मानते हैं, इसका समर्थन किसी भी परम्परा से नहीं होता, यह और भी बड़ी बिड़म्बना या दुष्कल्पना उस कल्पना से भी बुरी है कि कुछ तथाकथित पुरातत्ववेता महाभारत इतिहास को रामायण इतिहास से पूर्ववर्ती मानते हैं।

ब्रिटेन नाम शाकुन्तल भरत से—हमारे देश का नाम शाकुन्तलभरत के नाम से नहीं पड़ा, परन्तु एक विश्व प्रसिद्ध योरोपीयन देश का नाम अवश्य दौष्यन्ति भरत के नाम पर पड़ा, जिसने हमको दो सौवर्ष तक गुलाम बनाया और जिसकी म्लेच्छ सभ्यता और संस्कृति तथा भाषा सम्पूर्ण भारत पर छाई हुई है। जिससे अछूता आज कोई भी वर्ग-हिन्दू, जैन और ईसाई-नहीं है। ब्रिटेन नाम भरत के नाम पर पड़ा, यह मेरी खोज नहीं, एक अंग्रेज पुरातत्व-वेत्ता एल०ए० वाड्डेल की खोज है, जिसने सुमेरियन सभ्यता पर बहुत काम किया—

"The Indo-Aryans proudly call their country Bharata Country (Bharatavarsha) and themselves Bharatas, just the leading western branch of Aryans call themselves Britains" (The Makers of civilisation p. 107 by L.A. Waddell)

निश्चय ही शाकुन्तलभरत एक महाप्रतापी सम्राट् था, जिसका सम्पूर्ण भूमण्डल पर शासन था, यह 'ब्रिटेन' के भरत या भारतनामकरण से सिद्ध है।

भरतर्षभ, भारत, भारती तथा महाभारत—इन चारों शब्दों का शाकुन्तल भरत से सम्बन्ध है, परन्तु भारतवर्षनामकरण से रत्तीभर भी सम्बन्ध नहीं। इन चारों शब्दों की संक्षेप में व्याख्या करेंगे। 'भरतर्षभ' का सन्धिविच्छेद है भरत ऋषभ, कोई अज्ञानवश इन दोनों शब्दों का सम्बन्ध तीर्थंकर ऋषभ और तत्सुत भरत से जोड़ने की चेष्टा करे तो उसे क्या कहा जाये। 'भरतर्षभ' का अर्थ है—भरतवंश का श्रेष्ठपुरुष, इसके अतिरिक्त अन्य अर्थ करना पूर्णत भ्रान्ति होगी। इसी प्रकार महाभारत शब्द का अर्थ है भारता योद्धारोयस्मिन् युद्धे तद् महाभारतम्, जिस महायुद्ध के प्रमुख योद्धा भरत (शाकुन्तल) के वंशज थे, अतः उसका नाम महाभारत हुआ और इसी कारण महाग्रन्थ का नाम भी—

ऋग्वेद में एक मन्त्र है—
'विश्वामित्रस्य ब्रह्मेदं रक्षति भारतं जनम्'
महाभारत, (१/१७४/१३१) में एक श्लोक प्रसिद्ध है—
'भरताद् भारती कीर्तिः येनेदं भारतं कुलम्।
अपरे ये च पूर्वे वै भारता इति विश्रुताः।।

इसका सरल और सीधा अर्थ है—'शाकुन्तल भरत से भारती अर्थात् भरतवंशियों की कीर्ति और भारतकुल प्रथित हुआ और इसी नाम से पाण्डवों से उत्तरवर्ती और पूर्ववर्ती भारत या भरतवंशीय राजागण विश्रुत हुये।' अतः

इस श्लोक के अर्थ का 'भारतवर्ष' नामकरण से लेशमात्र भी सम्बन्ध नहीं। यही स्पष्ट अर्थ ऋग्वेदोल्लिखित 'भारतं जनम्' का है भारतं जनम् या 'भारत' या भारतकुल का भारतवर्ष के नामकरण से कोई भी सम्बन्ध नहीं, यदि किसी असंस्कृतज्ञ को भ्रान्ति हो जाये तो क्षम्य है परन्तु किसी संस्कृतज्ञ की भ्रान्ति अक्षम्य और आश्चर्यजनक है।

आदिम प्रजापतिगण विश्वसंस्कृति के प्रवर्तक—ऋषभ, स्वायम्भुव मनु मरीचि भृगु, कर्दम, दक्ष कश्यप, वैवस्वतमनु आदि एवं सम्राट्गण-पृथुवैन्य, ययाति, मान्धाता, शिबि, दौष्यन्ति भरत, दाशरथिराम आदि विश्वमानव संस्कृति के प्रवर्तक थे। उदाहरणार्थ, यह प्रसिद्ध है आदि भगवान् ऋषभ ने असि मसि और कृषि का प्रवर्तन किया, ऋषभ और भ त ने श्रमणधर्म का प्रवर्तन किया, आदिसम्राट पृथु वैन्य ने पृथ्वी पर सर्वप्रथम नगर बसाये। परन्तु उपर्युक्त महापुरुषों का 'भारतवर्ष' से विशेषसम्बन्ध था। ऋषभ, भरत, पृथुवैन्य, कश्यपादि मूलत: भारतीय महापुरुष थे, जिन्होंने विश्व संस्कृति का प्रवर्तन किया। ऋषभ और आर्षभ भरत से लगभग १४००० वर्ष पश्चात्, आज से १५००० वर्ष पूर्व परमेष्ठी प्रजापति कश्यप की सन्तति पंचजनों:—(असुरों, देवों. नागों, सुपर्णों, और गन्धर्वो) ने सम्पूर्ण पृथिवी पर प्रसार करके उपनिवेशन किया और विभिन्न देश बसाये।

मंगोलिया, उत्तरकुरु की साइबेरिया, भद्राश्व को चीन औरंकेतुमाल को वंक्षुप्रदेश (ईरान) कहते हैं।

प्रियव्रतवंशवृक्ष

१. स्वायम्भुव मनु वैराजपुरुष	१७. विभु
२. प्रियव्रत	१८. पृथु
३. आग्नीध्र	१९. नक्त
४. नाभि	२०. गय
५. ऋषभ	२१. नर
६. भरत	२२. विराट्
७. सुमति	२३. महावीर्य
८. तेजस	२४. श्रीमान्
९. इन्द्रद्युम्न	२५. महान्
१०. परमेष्ठी	२६. भौवन
११. प्रतीहार	२७. त्वष्टा

१२. प्रतिहर्ता
१३. उन्नेता
१४. उद्गीथ
१५. भूमा
१६. प्रस्तावि
२८. विरजा
२९. रजा
३०. शतजित्
३१. विश्वज्योति आदि शतपुत्र या सैंकड़ों वंशज ।

उपर्युक्त वंशावली में नाभि, ऋषभ, भरत और सुमति के अतिरिक्त अन्य किसी राजा के विषय में किसी घटनाक्रम का संकेत नहीं प्राप्त होता ।

नाभि (या अजनाभ) की पत्नी मेरुदेवी से ऋषभदेव की उत्पत्ति हुई । अजनाभनाम से ही पूर्वकाल में भारतवर्ष का नाम अजनाभवर्ष था । भागवतपुराण (पंचम स्कन्ध) में विस्तार से ऋषभ का इतिहास वर्णित है, तदनुसार उनके सौ पुत्र हुए ।[2] ऋषभ को सर्वक्षत्रियों का पूर्वज और आदिदेव कहा गया है ।[3] ऋषभ की पत्नी का नाम जयन्ती था ।[4] भागवतपुराण (५/४) में उनके सौ पुत्रों में से केवल १९ के नाम लिखे मिलते हैं—(१) भरत, (२) कुशावर्त, (३) इलावर्त, (४) ब्रह्मावर्त, (५) मलय, (६) केतु, (७) भद्रसेन, (८) इन्द्रस्पृक्, (९) विदर्भ, (१०) कीकट, (११) कवि, (१२) हरि, (१३) अन्तरिक्ष, (१४) प्रबुद्ध, (१५) पिप्पलायन, (१६) आविहोत्र, (१७) द्रमिल, (१८) चमस, और (१९) करभाजन ।

भरत और अन्तिम नौ (कुल दश) पुत्र श्रमणधर्म के अनुयायी और प्रचारक हुए, शेष ८१ पुत्र महाशालीन, महाश्रोत्रिय, यज्ञशील विद्वान् हुए ।

भगवान् ऋषभदेव स्वयं श्रमणधर्म के आदिप्रवर्तक थे, अतः उन्हें जैनी प्रथमतीर्थंकर और आदिदेव मानते हैं । ऋग्वेद (१०/१३६।२) में वातरशना पिशंग मुनियों का उल्लेख मिलता है—

---

१. "अजनाभनामैतद् वर्षं भारतमिति यद् आरभ्य व्यपदिशन्ति" । (भागवत० ५/७/३)

२. ऋषभं पार्थिवश्रेष्ठं सर्वक्षत्रस्य पूर्वजम् । ऋषभाद्भरतो जज्ञे वीरः पुत्र-शतात्मजः । (ब्रह्माण्ड० १/२/१४/६०)

३. क्षात्रोधर्मो ह्यादिदेवात् प्रवृतः पश्चादन्ये शेषभूताश्चधर्माः । (महा० शा० ६५/२०)

४. भाग० (५/४/८), वहां पुराणाकार को इन्द्रपुत्री जयन्ती का भ्रम हुआ है ।

"मुनयो वातरशना : पिशंगा वसते मला: ।"

यही बात भागवत (५/३/२०) में ऋषभपुत्रों और उनके अनुयायियों के सम्बन्ध में कहा है—'मेरुदेव्यां धर्मान् दर्शयितुकामो वातरशनानां श्रमणानामृषीणामूर्ध्वरेतसां शुक्लयातन्वावततार ।'

जैनग्रन्थों के अनुसार मरीचिऋषि ने ऋषभ से विद्रोह किया, वहां मरीचि को तपोभ्रष्ट मुनिवेशी बताया गया है । इससे प्रतीत होता है कि ऋषभ के मरीच्यादि ऋषियों से मतभेद एवं तज्जन्य संघर्ष हुआ । जैनग्रन्थों में ऋषभपुत्र भरतानुज बाहुबली की विशेष महिमा और भरत से संघर्ष से भी उक्त तथ्य की पुष्टि होती है । पुराणों में बाहुबली का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु जैनग्रन्थों में भरत के ऊपर बाहुबली की महान् विजय एवं उत्कर्ष दिखाया गया है । बाहुबली की गोमटेश्वर में विशाल मूर्ति उनकी ऐतिहासिकता को पुष्टि करती है । विष्णुपुराण में एक हरिणी के गर्भपातजन्य ममता से भरत को संसार से विरक्ति हो गई और मुनिधर्म का पालन करने लगे । यहां पर भरत को सौवीरनरेश और परमर्षि कपिल का समकालिक बताया गया है । इसमें भरत की सौवीरनरेश से समकालिकता तो भ्रामक है, परन्तु कपिल से समकालिकता उचित एवं ऐतिहासिक है । भरत और कपिल का समय स्वायम्भुवमनु से छः पीढ़ी पश्चात् और लगभग डेढ़ दो सहस्राब्दी पश्चात् अर्थात् २९००० वि०पू० से २८००० वि०पू० था । आदिम प्रजापति दीर्घजीवी होते थे, बाइबिल के अनुसार स्वायम्भुवमनु (आदम) की आयु ही ९३० वर्ष थी, अन्य ऋषभादि पांच पुरुष भी दीर्घजीवी होंगे । परन्तु हमने उनकी अवधि ६०० वर्ष ही मानी है, यद्यपि कुछ अधिक होनी चाहिए ।

भरत के पुत्र सुमति जैनियों द्वारा द्वितीय तीर्थंकर माने जाते हैं । पुराणों में प्रियव्रत की उपरोक्त वंशावली पूर्ण है, ऐसा समझाना महती भ्रान्ति होगी, क्योंकि स्वयं पुराणकारों ने कहा कि पूर्णवंशों का वर्णन करना असम्भव-

---

१. जैन ग्रन्थों में ऋषभ के इन पुत्रों के नाम मिलते हैं—भरत, बाहुबली, वृषभसेन, अनन्तविजय, अनन्तवीर्य, अच्युतवीर, और वरवीर । (अभिधान राजेन्द्रकोष, पृ० ११२९)

२. विष्णु० (२/१३ अध्याय)

३. तस्यैकसप्ततियुगं मन्वन्तरमिहोच्यते । (हरि० १/२/४)

सा है। हमारा अनुमान है केवल आधे से भी कम नाम ही उल्लेखित हैं, पूर्ण नाम १०० से अधिक होने चाहिए।

---

१. भरतस्यात्मजः सुमतिर्नामाभिहितो यमु ह वाव केचित् पाखण्डिन ऋषभपदवीमुनुवर्तमानं चानार्या अवेदसमाम्नातां देवतां स्वमनीषया पापीयस्याकलौ कल्पयिष्यन्ति।

(भाग० ५/१५/१)

२

पणियों का वाणिज्य और विज्ञान

वणिक्जाति—

वैदिक वाङ्मय में पणियों का बहुधा उल्लेख मिलता है। पणि एक सर्वोच्च सभ्यता वाली विश्वव्यापी जाति थी। यास्काचार्य के अनुसार वणिक् वृत्तिवाली जाति थी—"पणिर्वणिग्भवति"। अतः पणियों की मुख्यवृत्ति या कार्य वाणिज्य था। परन्तु उन्होंने आधुनिक अंग्रेजों की भांति व्यापार करते हुये सैन्यशक्ति, नौशक्ति एवं अद्भुत विज्ञान का विकास भी अति प्राचीनकाल में कर लिया था, जिसका संकेत अग्रिम पृष्ठों पर करेंगे।

व्यापार करते हुये पणियों ने विशालकाय जलपोतों का निर्माण किया था, जिससे वे महासमुद्रों में यात्रायें करते थे—"शतारित्रा" नावों का उल्लेख ऋग्वेद में है।

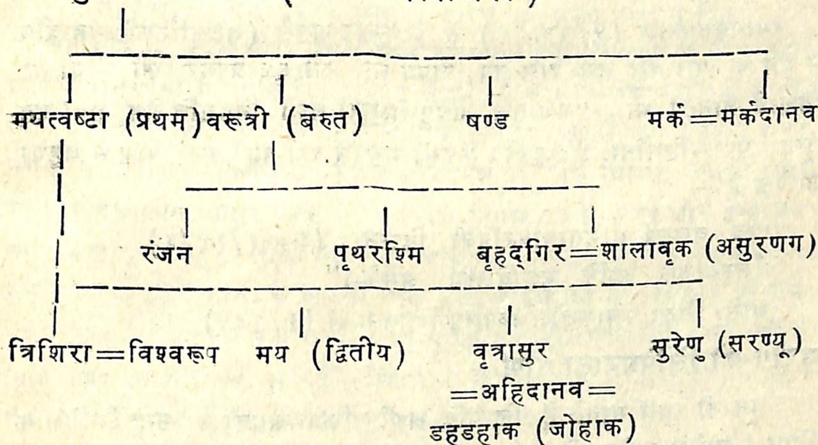
गोपालक या गोरक्षकपणि—

बहुत समयतक व्यापार (वाणिज्य) के साथ कृषि और पशुपालन पणियों या बनियों का मुख्यकार्य था, जैसाकि जैमिनीय ब्राह्मण (३१४४०) में उल्लेख है—"अथ ह वै पणयो नामासुरा देवानां गोरक्षा आसुः"। पणियो के अनेक पक्ष हो सकते हैं, क्योंकि यह विश्वव्यापी एवं बहुकर्मी जाति या वर्ग था। यूरोप में पणियों को ही फिनिशियन कहते थे और प्रसिद्ध यूनानी इतिहासकार हैरोडोटस ने लिखा है कि यूरोप के पणिगण विष्णु या देवों के उपासक बन गये थे, उन्होंने अपने नगरों में विष्णु के मन्दिर बनवाये। स्वयं हैरोडोटस (६०० वि० पू०) ने तारानगर में विष्णु का एक मन्दिर देखा था, जैसाकि उसने लिखा है—

"I made a voyage to Tyre in Phoenicia, hearing, there was a temple of Hercules at that place, very highly venerated, I visited the temple, and found it. (Herodotus Vol. I, p. 136).

ऋग्वेद में जिन पणि असुरों का इन्द्र के शत्रुओं के रूप में वर्णन है, वे न्यूनतम १२,००० वर्ष पूर्व के जन थे और वरुण के प्रपौत्र मय या त्वष्टा के वंशज थे। वरुण की वंशावली द्रष्टव्य है—

वरुण=ताज=यादसांपति=अहुरमज्दा=असुरमहान्
भृगु=अथर्वा (आथर्वण ईरानी ब्राह्मण)
शुक्र=उशना कवि (कैकोस=काबा-अरबी)



भागवतपुराण में साररूप से बताया गया है कि तलातल में दानवेन्द्र (५/२४/२८) मय असुर त्रिपुर का अधिपति (और निर्माता) था। इस त्रिपुर का विनाश महादेव रुद्र ने किया था। मय के वंशज असुर पणियों को निवातकवच और कालकेय या कालेय कहा जाता था। कालेय के नाम से काल्ड़िया देश और कैल्ट (युरोपियन) जाति प्रथित हुई। महाभारतकाल तक ये पणिगण "हिरण्यपुर" में रहते थे, जो रसातल की राजधानी थी। निवातकवच पणियों से अर्जुन का युद्ध हुआ था तथा देवयुग में इन्द्र से पणियों का युद्ध हुआ था, जिसका संकेत सरमापणिसंवादसूक्त (१०/१०६) में है तथा इस इतिहास का सार शौनककृत बृहद्देवता (८/२४/३६) ग्रन्थ में इस प्रकार मिलता है—

असुराः पणयो नाम रसापारनिवासिनः।
गास्तेऽपजह्रुरिन्द्रस्य न्यगूहंश्च प्रयत्नतः॥

प्राहिणोत्तत्र दूत्येऽथ सरमां पाकशासनः ।
अथाब्रवीत्तान्सरमा दूत्यैन्द्री विचराम्यहम् ।।
शतयोजनविस्ताराम् अतरत्तां रसां पुनः ।
यस्याः पारे परे तेषां पुरमासीत्सुदुर्जयम् ।।
पदानुसारपद्धत्या रथेन हरिवाहनः ।
गत्वा जघान च पणीन् गाश्च ताः पुनराहरत् ।।

इस आख्यान से भी पणि गोपालक सिद्ध होते हैं तथा रसा (रंहा) नदी के कारण उस प्रदेश को रसातल कहा जाता था । यह नदी ईरान-ईराक में बहती थी ।

भागवतपुराण (५/२४/१६) के अनुसार अतल (अटलांटिक) महाद्वीप में मय के पुत्र बल असुरराज का राज्य था, जो ९६ प्रकार की माया या विद्यायें जानता था—"अथातले मयपुत्रोऽसुरो बलो निवसति येन हवा इह सृष्टाः पण्णवतिर्मायाः ।" ऋग्वेद में इसी मयपुत्र बल का "वल" नाम से बहुधा उल्लेख है—

"त्व वलस्य गोमतापावरद्रिवो बिलम् । (ऋ० १/११/५)
वैलस्थानके अर्मके महावैलस्य अर्मके ।"
यासां तिस्रः पंचाशतोऽभिव्यलङ्गैखावपः ।। (१/१३३)

यूरोप को लिपिप्रदाता पणि—

यूनानी स्वयं मानते हैं कि पणि अर्थात् फिनिशियनों ने उन्हें लिपिज्ञान दिया । उसीसे यूरोप की सभी लिपियां निकली ।

पणिनगरी सूषा—

फारसी इतिहास में ऐलम की राजधानी "सूषा" प्रसिद्ध है । प्रसिद्ध अनुसंधाता पद्मनाभैया ने सर्वप्रथम खोज की कि इसी नगरी का मत्स्यपुराण में वरुण की नगरी या राजधानी के रूप में उल्लेख है ।

सूषा नाम पुरी रम्या वरुणास्यापि धीमतः ।।

वरुण के वंश में ही पणि और मय हुये ।

"माया" और "मय" शब्द—

प्राचीनकाल में 'माया' शब्द 'विज्ञान' विशेषतः 'प्रविधि', 'शिल्प' या 'प्रोद्यौगिकी' (टेक्नोलोजी) का पर्याय था, और विज्ञान, शिल्प या प्रोद्यौगिकी के विशेषज्ञ को 'मय' 'शिल्पी', 'विश्वकर्मा' 'त्वष्टा', 'तक्षा', 'तक्षक' एवं

'शिल्पी' इत्यादि परिभाषिक शब्दों से सम्बोधित किया जाता था। असुरों में ६६ प्रकार के विज्ञान (शिल्पकला) प्रसिद्ध थे, जिनका पुराणों में संकेत मिलता है। अंग्रेजी के 'टेक्नोलोजी', 'टेक्नीशियन', 'टेक्नीकल' आदि शब्द 'तक्ष' या 'तक्षन्' शब्द से विकृत हुये हैं।

अब, इस लघु लेख में 'आसुरीमाया' (विज्ञान), विशेषतः अन्तरिक्ष विज्ञान और आकाशयुद्ध का सिंहावलोकन किया जायेगा। इससे पूर्व 'मय' आदि शब्दों को स्पष्ट करते हैं। मय वणिक् पणियों का महान् नेता था। यह पहले ही बताया जा चुका है।

'विश्वकर्मा, 'मय', 'त्वष्टा', 'तक्षा', 'शिल्पी'—इत्यादि शब्द मूलतः किसी के नाम नहीं थे, प्रत्येक युग में असुरों के एक या अनेक महान् शिल्पी हुये, उनको 'मय' या 'त्वष्टा' या 'विश्वकर्मा' कहा जाता था। देवयुग में 'विश्वरूप' और वृत्रासुर का पिता 'त्वष्टा' महान् वैज्ञानिक था; रामायणकाल में मन्दोदरी का पिता और रावण का श्वसुर 'मय' अनुपम शिल्पी था, जिसने लंका नगरी में विशिष्ट स्वर्णयुक्त भवन और 'पुष्पक' जैसे विमान बनाये तथा **महाभारतकालीन असुर 'मय' ने धर्मराज युधिष्ठर की सभा और इन्द्रप्रस्थ** नगर बनाये। उपर्युक्त तीनों मय (वैज्ञानिक) पृथक्-पृथक् युगों के पृथक्-पृथक् महापुरुष थे। इन तीनों के असली नाम हजारों वर्ष पूर्व ही विस्मृत हो गये थे, परन्तु यह ज्ञातव्य उपाधि थी, जो युगप्रवर्तक वैज्ञानिक को मिली थी। 'मय' शब्द का सीधा-सा अर्थ है—'निर्माता' या यान्त्रिक (इंजीनियर)। यही अर्थ 'त्वष्टा', 'तक्षा', विश्वकर्मा, आदि शब्दों का है।

आकाश में तीन नगर = त्रिपुर

ऋग्वेद, अथर्ववेद इत्यादि में आसुरी माया अर्थात् उच्चकोटि के शिल्पविज्ञान के स्पष्ट संकेत मिलते हैं। यजुर्वेद की काठकसंहिता (२४.१०.२४) में असुरों के तीन नगरों का स्पष्ट उल्लेख है कि ये नगर क्रमशः आकाश, अन्तरिक्ष और पृथ्वी पर बने हुये थे तथा क्रमशः सुवर्ण, चाँदी (रजत) और लोहे के बने हुये थे, महाभारत (कर्णपर्व ३३/१८) तथा पुराणादि में इनका विस्तार से वर्णन है। तदनुसार हिरण्यपुरवासी निवातकवच नाम असुरों के नेता 'मय' और 'तारक' असुरों ने त्रिपुर बनाये थे। इससे प्रकट और सिद्ध होता है कि आज से १५ सहस्रवर्षों पूर्व असुरों की माया (विज्ञान) आज के अंतरिक्षविज्ञान से कितना अधिक उन्नत था। आज केवल मानवरहित या दो-तीन यात्रियों से युक्त उपग्रह ही कुछ समय के लिए छोड़ा जा सकता है,

परन्तु आज से १४,००० वर्ष पूर्व, असुरों को आकाश या अन्तरिक्ष में बड़े नगर बनाने का विज्ञान ज्ञात था। ये तीनों नगर घूमनेवाले थे, महाभारत में इनको 'चक्रस्थ' कहा गया है। 'तार' या 'तारक' नाम से सिद्ध होता है कि यह असुर 'तारानगर' में रहता था, इसलिए इसका नाम 'तारक' पड़ा। इससे पूर्व एक 'तारकासुर' का वध कार्तिकेय ने किया था। इसके भी पूर्व कार्तिकेय के पिता शिव ने त्रिपुरों का नाश किया था। एक 'त्रिपुर' (तीनों नगरों) का विनाश देवराज इन्द्र ने किया था। अतः प्रतीत होता है कि असुरों ने अनेक बार आकाश में भ्रमणशील (चक्रस्थ) त्रिपुर बनाये थे। ये नगर व्यापार के भी महान् केन्द्र थे।

आकाशयुद्ध—

आज अमेरिका आदि में 'आकाशयुद्ध' या तारायुद्ध केवल कल्पना में ही है, परन्तु अबसे तेरह या चौदह हजार वर्ष पूर्व देवासुरयुग में अनेक बार तारायुद्ध लड़े जा चुके थे।

और्व और पार्वतीमाया—

(जल और पहाड़ पर युद्ध करने का विज्ञान) हरिवंशपुराण (१/२१५-४६ अध्याय) में इन दो प्रकार के विशिष्ट विज्ञानों का उल्लेख है, और देवोंने असुरों से युद्ध किया तथा वरुण ने और्वाग्नि से असुरों को जलाया। ईंधनरहित और्वाग्नि अग्निमयी माया का स्पर्श करना अग्नि के लिए भी कठिन था। स्पष्ट है यह वैद्युत या आणविक शक्ति थी, साधारण अग्नि नहीं। इस माया के प्रभाव से आकाश से देवताओं के विचित्र विमान प्रभावहीन होकर गिरने और गिरकर उछलने लगे, तब मायासुर ने अपने पुत्र क्रौंच (असुर) द्वारा निर्मित पार्वतीमाया को उत्पन्न किया। वह माया (विज्ञान) आकाश में शिलाओं का जाल बिछा देती थी; भारी-भारी चट्टानों को गिराकर उनके धमाके की ध्वनि से घोर आवाज होती थी। उस पार्वतीमाया से वनप्रदेश एवं गुफाओं में सिंह, व्याघ्र और हाथी भरे हुए थे। उस 'पार्वतीमाया' ने चट्टानों के टकराने की आवाज से, पत्थरों की वर्षा से, और गिरते हुए वृक्षसमूहों से देवों को मारना शुरू किया; इससे देवताओं का साहस बढ़ा।

(हरिवंश० १/४६/२२-२६)।

इस तारकामय महायुद्ध में असुरराज कालनेमि ने भी भारी विज्ञान= (माया) का प्रयोग किया। कालनेमि की भुजायें आकाश में तिरछी और ऊपर की दिशा में बढ़ने लगी, वे ऐसी जान पड़ती थीं कि मानो पांच मुख

वाले काले सर्प, अपनी जीभ लपलपा रहे हों। (हरिवंश० ४८/४०-४१)।

'उसने आकाश और पृथ्वी तथा जल को अपने वश में करके उसके ऊपर पर्वतों द्वारा सुरक्षित पृथ्वी को स्थापित किया। वह महान् दैत्यराज समहाभूतपति स्वयम्भू के समान सर्वलोकभयावह और सर्वलोकमयसदृश, अपनी माया से दिखाई पड़ता था' (श्लोक ५६-५७)।

मृतसंजीवनीविद्या :

किसी सीमा तक असुरों ने अपने विज्ञान के बल पर मृत्यु को भी जीत लिया था। जिस प्रकार आजकल कहा जाता है कि विज्ञान के द्वारा मनुष्य लम्बी आयु प्राप्त कर सकता है, उसी प्रकार असुरगण, विशेषतः उनके पुरोहित उशना काव्य (शुक्राचार्य), जो महान वैद्य भी थे, युद्ध में मृत असुरों को जीवित कर देते थे। मयासुर ने एक ऐसी 'वापी' का निर्माण किया था, जिसमें डालने पर (स्नान कराने पर) मृत असुर जीवित हो जाता था।

(दृष्टव्य, महाभारत १/७६/८-१०)।

रामायण में राक्षसीमाया :

परम्परा से राक्षस भी असुर ही थे; उन्होंने आसुरीमाया अपने पूर्वज दैत्यदानवों से सीखी थी। दिग्विजय के समय रावण विद्युज्जिह्व, मारीच और इन्द्रजित् (मेघनाद) विशेष मायावी (वैज्ञानिक) थे। विद्युज्जिह्व, ने रावण के कहने पर सीता को बहकाने के लिए राम का धनुष और मायामय शिर बनाया था (रामायण ६/३/७-८). मेघनाद ने युद्ध में हनुमान के सामने मायावती सीता का वध किया था। मारीच द्वारा मायाविद्या से मृग बनना सभी जानते हैं। रावण और मेघनाद मायाविज्ञान के विशेषज्ञ थे। रावण आधुनिक रोबोट मानव की भांति युद्ध में राक्षसों को उत्पन्न कर देता था। रावण और मेघनाद दोनों ही आकाशयुद्ध के विशेषज्ञ थे। मेघनाद ने ही युद्ध में मायामय नागों द्वारा राम-लक्ष्मण को मृतकतुल्य कर दिया था, जो कुबेर की औषधि से जीवित हुये।

अतः पणियों के नेता असुरमय की महामाया या विज्ञान, महाभारतकाल से पूर्व और पश्चात् भी प्रचलित रहा।

—०—

(पुस्तकसूची)

डा० कुँवरलाल जैन (लेखक)
कृत ग्रन्थ

(१) पुराणों में प्राङ्महाभारतकालीन इतिहास

स्वतन्त्रता के पश्चात्, स्वतन्त्र भारत में प्रथम बार स्वायम्भुव मनु से महाभारतकाल तक का समग्र इतिहास आदिकाल, देवासुरयुग की वंशावलियों एवं घटनाक्रम का सारग्राही वर्णन। तिथिक्रमनिर्धारण ग्रन्थ की विशेषता। महाभारतकाल से पूर्व की जातियों और महापुरुषों का इतिहास। प्रारम्भिक विश्व इतिहास के आदि पुरुष-स्वायम्भुव मनु, कर्दम कश्यप, दक्ष, रुद्र, वरुण, इन्द्र, विष्णु, प्रह्लाद, बलि, ययाति, मान्धाता आदि का इतिहास

पृष्ठ ६६०; रैक्सीन जिल्द, प्लास्टिककवर मू० ३०० रु०

(२) पुराणों में आदिभारत का इतिहास

ग्रन्थ के पांच अध्यायों में भारतीय इतिहास की विकृति के प्राचीन और आधुनिक कारण, भारतीय कालमान और कालक्रम-चतुर्युग, परिवर्तयुग, रामायण-महाभारत की तिथियां (काल), प्राचीन मानवजातियां-पंचजन-दशजन (वानर, नागादि) का विवेचन। महाभारततिथि एवं भारतोत्तर तिथियां, चन्द्रगुप्तमौर्य और सिकन्दर की समकालिकता की कहानी का खण्डन। महावीर बुद्ध-शूद्रक, साहसांक की मूलतिथियों का निर्धारण, दीर्घजीवी महापुरुष, दीर्घजीवन पर पृथक् अध्याय।

पृष्ठ २२६, रैक्सीन जिल्द, प्लास्टिककवर, मू० १०० रु०

(३) पुराणों में इतिहास

(हिन्दी अकादमी दिल्ली द्वारा पुरस्कृत ग्रन्थ)

सजिल्द, पृष्ठ २२६, मूल्य ७५ रुपया

(४) पुराणों में ऐतिहासिक परिवर्तयुग

(व्यासशिष्य) लेखक की सर्वथा मौलिक खोज, पिछले २००० बिस्मृत ऐतिहासिक युग (कालगणना) का उद्धार परिवर्तयुग कालगणना द्वारा महाभारत से पूर्व के महापुरुषों का कालनिर्धारण, पुराणगत भ्रान्तियों का निराकरण, सर्वथा मौलिक खोज।

सजिल्दपुस्तक, पृष्ठ १२०, मूल्य ७५ रुपया

(५) Indian Asuras Colonized Europe

लेखक ने अंग्रेजों द्वारा बहाई उल्टीगंगा को सीधा किया। वामन विष्णु के समय में भारत से जाकर असुरों ने योरोप बसाया। वर्तमान दैत्यनामों के अवशेषों की खोज, भारतीयगरिमा की स्थापना।

रैक्सीनजिल्द, पृष्ठ ६८, मूल्य ८० रुपया

(६) **पुराणों में भारतोत्तरवंश**

पाण्डवों से लेकर गुप्तकाल तक की तिथियों का पुनर्निर्धारण, सजिल्द, पृष्ठ १२८ मूल्य ५० रुपया

(७) **चतुर्दश मनुओं का इतिहास**

३१ सहस्रवर्षपूर्व से १४ सहस्रवर्षपूर्व होनेवाले १४ मनुओं का संक्षिप्त इतिहास प्रथम बार प्रकाशित।

सजिल्द, पृष्ठ ५६, मूल्य ३० रुपया

सद्यः प्रकाशितग्रन्थ (१९९१)

(८) **वैदिकीयज्ञविद्या**

वेदसंहिताओं, ब्राह्मणग्रन्थों और कल्पसूत्रों (श्रौतसूत्रों) के माध्यम से संस्कृत में संभवतः प्रथमबार समस्त प्रकार के यज्ञों का शोधपरक महत्त्वपूर्ण अध्ययन। वेद के प्रत्येक शोधार्थी एवं प्राध्यापक व विद्यार्थी के लिए पठनीय। साथ में हिन्दी भावार्थ।

ग्रन्थ के तीन संस्करण प्राप्य हैं—

(क) मूलसंस्कृत में—रैक्सीन जिल्द, प्लास्टिककवर पृष्ठ ४००, मूल्य ३०० रुपया

(ख) संस्कृत हिन्दी में-रैक्सीन जिल्द, प्लास्टिककवर, पृष्ठ ६००, मूल्य ४०० रुपया

(ग) केवल हिन्दी में—रैक्सीन जिल्द, प्लास्टिककवर, पृष्ठ २००, मूल्य १०० रुपया

(पूर्व संस्करण आर्षयज्ञविद्या पर बिहारसरकार का अखिलभारतीय पुरस्कार प्राप्त)

मूल्य ११३ रुपया

(९) **वेदपुराणेष्वैतिह्यसंदर्भाः**

(भारत सरकार के अनुदान से प्रकाशित)

पृष्ठ ६५०, प्लास्टिककवर, रैक्सीन जिल्द,

प्रत्येक शोधार्थी, जिज्ञासु, इतिहासकार, संस्कृत विद्वान् के लिए संग्रहणीय एवं पठनीयग्रन्थ। ऋग्वेद से लेकर बृहद्देवता तक २५ महाग्रन्थों के समस्त ऐतिहासिक अंशों का अभूतपूर्व संकलन तथा पुराणों के वंशानुचरित का हिन्दी अनुवादसहितसंग्रह। केवल लागत मूल्य में।

(१) इतिहासनिदर्शनम् मूल्य १६० रुपया

(सानुवादः) पृष्ठ २४४, रैक्सीन जिल्द, प्लास्टिककवर

इतिहासजिज्ञासु एवं शोधार्थियों के लिए पांच ऐतिहासिक आख्यानों का संकलन एवं भुवनकोश (प्राचीनभूगोल) का संग्रह।

(११) भारतीय संस्कृति के मूलप्रवर्तक मूल्य १०० रुपया

(प्रकाशनीय) प्लास्टिककवर, रैक्सीन जिल्द,

आद्यऋषि प्रजापति कश्यप से आचार्य शौनक पर्यन्त के वेदाचार्यों का ऐतिह्य, प्रथमबार प्रकाशित, जिन्होंने प्राचीन भारतीयसंस्कृति की मूल-स्थापना की।

(१२) तीर्थंकरों का इतिहास मूल्य १०० रुपया

(पृष्ठ १८०), रैक्सीन जिल्द, प्लास्टिककवर,

जैन इतिहास के विद्वानों के लिए खुशखबरी, प्रथम बार २४ तीर्थंकरों का ऐतिहासिक कालनिर्णय; ऋषभ से महावीर एवं महावीरोत्तर काल की ऐतिहासिक गुत्थियों का समाधान, प्रत्येक इतिहासकार एवं जैनपुस्तकालय के लिए संग्रहणीय।

व्यवस्थापक :
इतिहासविद्याप्रकाशन
बी-२६—धर्मकालोनी
नांगलोई, दिल्ली-४१

डा० कुंवरलाल व्यासशिष्य का संक्षिप्त परिचय

अभी हाल में हिन्दी अकादमी, दिल्ली ने १९८८-८९ में २८ साहित्यिक पुरस्कारों की घोषणा की है। डा० जैन को ११,१०१ रुपये का पुरस्कार दिया गया। इनमें डा० कुंवरलाल जैन व्यासशिष्य को उनकी विशेष मौलिक एवं क्रांतिकारी विचारों से परिपूर्ण "पुराणों में इतिहास" कृति का चयन हुआ है। लेखक पिछले २९ वर्षों से सच्चे भारतीय इतिहास के अनुसंधान में संलग्न है और इस विषय में उसकी लगभग २१ कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इन कृतियों में भारतीय वाङ्मय के आधार पर विशेषतः संस्कृतवाङ्मयसागर का मन्थन करके अनेक रत्नों की रचना की है, इनमें उक्त कृति का विशिष्ट स्थान है। वेद और पुराण भारतीय-संस्कृति के दो प्रधान स्तम्भ हैं, जिन पर सम्पूर्ण भारतीय-संस्कृति टिकी हुई है। वेद, इतिहास के ग्रन्थ नहीं हैं, परन्तु पुराण-ग्रन्थ आदिकाल, स्वायम्भुवमनु से गुप्तकाल तक के इतिहास के मूल स्रोत हैं, बल्कि आदिम विश्वसंस्कृति का मूल इतिहासपुराणों से ही लिखा जा सकता है। डा० व्यासशिष्य ने "इण्डियन असुराज् कोलोनोइज्ड योरोप" पुस्तक में आदिकालीन विश्वइतिहास पर किंचित् प्रकाश डाला है कि यहाँ से जाकर ही असुरों ने योरोप बसाया। अंग्रेजों ने पुराणों के प्रति ऐसी घृणा उत्पन्न की कि प्रायः पढ़ा-लिखा भारतीय 'पुराण' नाम सुनते ही भौं सिकोड़ने लगता है। डा० व्यासशिष्य ने मौलिक अनुसंधान करके पुराणों के मौलिक सत्य-पक्ष को उजागर किया है। पुराणों में वंशानुक्रमिक—कालक्रम और 'पुराणों में ऐतिहासिक परिवर्तयुग' में यह क्रम जारी है अतः राष्ट्रीय एकता का प्रमुख सूत्रधार है—'सच्चा इतिहास।' हिन्दी अकादमी ने डा० व्यासशिष्य को पुरस्कृत करके विषय के महत्त्व को बढ़ाया है। यहाँ लेखक का संक्षिप्त जीवनवृत्त दिया जारहा है।

जीवनवृत्त

१. नाम	—	डा० कुंवरलाल व्यासशिष्य
२. जन्मतिथि	—	२२-१-१९३६
३. जन्मस्थान	—	सिकन्दरा, आगरा (उत्तरप्रदेश)
४. वर्तमान निवास	—	बी. २६, धर्मकालोनी, नांगलोई दिल्ली—४१
५. शिक्षा	—	१. सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सन् १९६२ में प्रथमश्रेणी में पूर्वमध्यमा (संस्कृत) उत्तीर्ण की।
		२. वहीं से १९६३ में उत्तरमध्यमा परीक्षा द्वितीय-श्रेणी में उत्तीर्ण की।
		३. वहीं से सन् १९६५ में शास्त्री परीक्षा प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण की।
		४. वहीं से १९६८ में आचार्य परीक्षा (पुराणेतिहास) प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण की।
		५. आगरा विश्वविद्यालय से १९७० में एम० ए० (संस्कृत) परीक्षा प्रथमश्रेणी में उत्तीर्ण की।
		६. दिल्ली विश्वविद्यालय से १९७७ में पी०एच०डी० उपाधि प्राप्त की। शोध-प्रबन्ध संस्कृतभाषा में लिखा गया—'कात्यायनापस्तम्बश्रौतसूत्रयोस्तुलनात्मकमध्ययनम्।'
		७. डी० लिट्० आगरा विश्वविद्यालय पंजीकृत १९८५ में (डायनेस्टिक क्रालोनोलोजी ऑफ इण्डिया इन पुराणाज्)